कषाय-मुक्ति

(सुगम मोक्ष मार्ग)

लेखक

स्व. प्रतापचन्दजी भूरा

:: प्रकाशक ::

चैन रूप भूरा

ललवाणी मौहल्ला, नई लेन

गंगाशहर (बीकानेर)

पुस्तक : कषाय-मुक्ति
(सुगम मोक्ष मार्ग)

लेखक स्व प्रतापचन्दजी भूरा

प्रकाशक चैन रूप भूरा

प्रथम अनावरण अगस्त, 2006

मुद्रक सुराणा उद्योग, बीकानेर
0151-3092536, 2541207

प्राप्ति स्थान
चैनरूप भूरा
ललवाणी मौहल्ला, नई लेन
गंगाशहर (बीकानेर)
फोन 0151-2272964

प्राक्कथन

भारतीय सस्कृति के विविध आयामो मे कषाय मुक्ति के आयाम पर प्रवलतम वल दिया गया है। अनन्त की यात्रा मे सायन्त्रिक को प्रेरित किया हे कि अगर तुम्हे जीवन को सर्वोपरि वनाना है तो सर्व प्रथम तू कषाय से विमुक्त वन। जव तक कषाय की शृखला से आबद्ध है तव तक अपने मुख्य मुकाम अर्थात् लक्ष्य को साध नही सकता।

रामचरित्र मानस के प्रणेता गोस्वामी तुलसी ने भी क्या सटीक कहा है कि–

तुलसी मीठे वचन से, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरण इक मत्र है, परिहर वचन कठोर।।

ससार एक अजायवघर है जिसमे भिन्न-भिन्न प्रकृति के लोग रहते है। वे अपनी वृत्ति/व्यवहार के द्वारा सुख-दु ख की परिणति को प्राप्त करते है। यदि इन काषायिक वृत्तियो का परिहार करदे तो व्यक्ति स्वर्गिक छटा से अनुप्राणित होकर अपने गन्तव्य तक पहुँचने मे सफल हो सकता है।

आगम मे कषाय के विषय मे विश्लेषण करते हुए बताया है कि देशोन कोटि (करोड वर्ष) पर्यन्त की गई तपश्चरण रूप क्रिया व चरित्र का जिस रूप मे उपार्जन किया वह एक मुहूर्त काल तक की गई कषाय से नष्ट हो जाती है। इसलिए वेयक्तिक जीवन मे काषायिक परिणति से दूर रहना चाहिए।

सदा समभाव की अवस्था मे विचरण करते हुए लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयास करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा गया है कि–

प्रथमे य शान्त, ते शान्त मे मति।
धातुक्षीयमानेषु शान्त को न जायते।।

इन पुस्तको मे इन अवगुणो को छोडने के लिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से साधना करने की विधियो पर प्रकाश डाला गया है। जैनागमो मे स्वाध्याय-तप मे विविधता को बहुत महत्त्व दिया गया है। अत पुस्तक मे कुछ बातो की विविधता दृष्टिगोचर हो रही है जो कि साधना का एक अग है।

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्दजी सा भूरा ने इन पुस्त [illegible] स्वय जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर [illegible] है, अत ये आत्मा को छूती है। इनको पढना, इनका स्वाध्याय करना [illegible] जीवन की प्रवृत्तियो मे इनका समायोजन करना कर्मों के नाश मे [illegible] सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीडित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तको [illegible] महती आवश्यकता भी है जो अवगुणो को दूर करने एव मानसिक तनाव [illegible] हटाने मे अपनी अह भूमिका अदा कर सकती है।

इन पुस्तको की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि [illegible] से "समता-जीवन", "ध्यान एक अनुशीलन", 'कपाय मुक्ति' पहला भाग और "कषाय मुक्ति" दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा [illegible] पाठ्यक्रम मे समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणो से मुक्त होने के लिए क्षमा, [illegible] सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति [illegible] पुस्तको को केवल पढना ही काफी नही है, किन्तु इन पुस्तको [illegible] कुछ महीनो तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। [illegible] की सुविधा के लिए समग्र पुस्तको की सामग्री इसी एक पुस्तक मे [illegible] करदी गई है।

विश्वास है कि पाठको को यह पुस्तक "समता आचरण [illegible] शिखर की ओर बढाने के लिए स्फटिक-सोपानो की भाँति [illegible] का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी मे भी कहा है-

कसिणा कसाया सिचन्ति, जीवस्स पुणब्भवस्स।--उत्तराध्ययन [illegible]

कषाय ही हमारे पूर्व भवो के आधार पर आगामी [illegible] तैयार करते हैं। अत इनका परित्याग कर हम सिद्धि [illegible] को प्राप्त [illegible] यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुज्ञ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

[illegible]

दिनाक · 05-08-2006

बोथरा चौक, गंगाशहर

प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक ओर साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक/पजीयक स्व प्रतापचन्दजी भूरा की इन कृतियो/पुस्तको का सग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुबोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एव चोथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पॉचवॉ भाग (स्वाध्याय-सग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवॉ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवॉ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवॉ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि मे), दसवॉ भाग (अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा) ग्यारहवॉ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवॉ भाग (कषाय व मोह छोडने के उपाय) एव ध्यान एक अनुशीलन।

पुस्तके सर्वसाधारण पाठको द्वारा उपयोगी समझी गई है व इनकी मॉग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावको तथा श्री साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम सस्करण, मई 1984, प्रति 2100, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, 1986, प्रति 2000, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, तीसरा भाग, प्रथम सस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000, चौथा भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500, पॉचवॉ भाग, प्रथम सस्करण, जून 1989 प्रति 2500, छठा भाग, प्रथम सस्करण, सातवॉ भाग, प्रथम सस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000, आठवॉ भाग, प्रथम सस्करण, सयुक्त 4 से 8 भाग, सवत् 2049, नौवॉ भाग, प्रथम सस्करण, दसवॉ भाग, प्रथम सस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000, ग्यारहवॉ भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500, बारहवॉ भाग, सयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100, ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम सस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एव मातुश्री की पुण्य स्मृति मे कराया जा रहा है।

—चैनरूप भूरा

धर्म कोविद, तत्त्वज्ञ श्रीमान् प्रतापचन्दजी सा भूरा ने इन पुस्तको क स्वय जीवनपर्यन्त साधना करके अपने मौलिक अनुभव के आधार पर लि है, अत ये आत्मा को छूती है। इनको पढना, इनका स्वाध्याय करना अ जीवन की प्रवृत्तियो मे इनका समायोजन करना कर्मो के नाश मे प्र सहायक है।

आज मानसिक तनाव से पीडित समाज के लिये ऐसी ही पुस्तको क महती आवश्यकता भी है जो अवगुणो को दूर करने एव मानसिक तनाव क हटाने मे अपनी अह भूमिका अदा कर सकती है।

इन पुस्तको की उपयोगिता इस बात से प्रमाणित होती है कि इनमे से "समता-जीवन", "ध्यान एक अनुशीलन", "कषाय मुक्ति" पहला भाग और "कषाय मुक्ति" दूसरा भाग धार्मिक परीक्षा बोर्ड के भूषण परीक्षा के पाठ्यक्रम मे समता विभूति आचार्यश्री नानेश की कृपा से रखी गई।

कषाय और अन्य अवगुणो से मुक्त होने के लिए क्षमा, विन सत्याचरण, लोभ-मुक्ति आदि गुण प्राप्त करने के लिए कषाय-मुक्ति की पुस्तको को केवल पढना ही काफी नही है, किन्तु इन पुस्तको का क्रमश कुछ महीनो तक प्रतिदिन निरन्तर स्वाध्याय करना आवश्यक है। पाठको की सुविधा के लिए समग्र पुस्तको की सामग्री इसी एक पुस्तक मे समाहित करदी गई है।

विश्वास है कि पाठको को यह पुस्तक "समता आचरण" के उ शिखर की ओर बढाने के लिए स्फटिक-सोपानो की भाँति "कषाय-मुक्ति" का मार्ग सुझाएगी।

भगवान महावीर ने अपनी मूलवाणी मे भी कहा है-

कसिणा कसाया सिंचन्ति, जीवस्स पुणब्भवस्स।—उत्तराध्ययन चूर्णी

कषाय ही हमारे पूर्व भवो के आधार पर आगामी जन्मो की भूमिका तैयार करते हैं। अत इनका परित्याग कर हम सिद्धि सौध को प्राप्त कर यही पुस्तक का लक्ष्य है। सुज्ञ पाठक इससे लाभान्वित होंगे।

मानमल [illegible]

दिनाक : 05-08-2006
बोथरा चौक, गगाशहर

प्रकाशकीय

उक्त प्रकाशन वरिष्ठ लेखक निष्ठावान प्राध्यापक और साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक/पजीयक स्व प्रतापचन्दजी भूरा की इन कृतियो/पुस्तको का सग्रह है—कषाय मुक्ति प्रथम भाग (समता आचरण, सुबोध मोक्ष-मार्ग), द्वितीय भाग (कषाय-मुक्ति एक विवेचन), तीसरा भाग एव चोथा भाग (धर्म कथा द्वारा स्वाध्याय व तप), पॉचवॉ भाग (स्वाध्याय-सग्रह मोक्ष-मार्ग), छठा भाग (धर्म विचार सार), सातवॉ भाग (दोष मत दो निमित्त को), आठवॉ भाग (सिद्ध पद प्राप्ति की साधना), नौवॉ भाग ('समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि मे), दसवॉ भाग (अभय बनूँगा, सिद्ध बनूँगा) ग्यारहवॉ भाग (मोक्ष मार्ग का पथिक), बारहवॉ भाग (कषाय व मोह छोडने के उपाय) एव ध्यान एक अनुशीलन।

पुस्तके सर्वसाधारण पाठको द्वारा उपयोगी समझी गई है व इनकी मॉग भी काफी रही इसलिए समय-समय पर धर्मनिष्ठ सुश्रावको तथा श्री साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर द्वारा इनका प्रकाशन कराया जाता रहा, जिनका विवरण इस प्रकार है—प्रथम भाग, प्रथम सस्करण, मई 1984, प्रति 2100, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, द्वितीय भाग, प्रथम सस्करण, 1986, प्रति 2000, द्वितीय सस्करण, अगस्त 1987, प्रति 2200, तीसरा भाग, प्रथम सस्करण, फरवरी 1988, प्रति 3000, चौथा भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1988, प्रति 2500, पॉचवॉ भाग, प्रथम सस्करण, जून 1989 प्रति 2500, छठा भाग, प्रथम सस्करण, सातवॉ भाग, प्रथम सस्करण, अक्टूबर 1990, प्रति 4000, आठवॉ भाग, प्रथम सस्करण, सयुक्त 4 से 8 भाग, सवत् 2049, नौवॉ भाग, प्रथम सस्करण, दसवॉ भाग, प्रथम सस्करण, सितम्बर 1993, प्रति 3000, ग्यारहवॉ भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1995, प्रति 1500, बारहवॉ भाग, सयुक्त 9 से 12 भाग, प्रथम सस्करण, जुलाई 1996, प्रति 1100, ध्यान एक अनुशीलन, प्रथम सस्करण, जनवरी 1986, प्रति 2500।

यह प्रकाशन पूज्य पिताश्री एव मातुश्री की पुण्य स्मृति मे कराया जा रहा है।

—चेनरूप भूरा

धर्मनिष्ठ सुश्रावक श्री प्रतापचंदजी भूरा
परिचय

जन्म स्थान	:	देशनोक
जन्म		विक्रम सवत् 1962
पिता		श्री सदासुखजी भूरा
माता	.	वृद्धिदेवी
दादा		श्री चौथमलजी भूरा
श्वसुर	.	श्री सेसमलजी कोचर (मेहता), सोजत सिटी
धर्म पत्नी		स्व नेमकवर
शैक्षणिक योग्यता		Intermediate from Board of High School & Intermediate Education, United Provinces, Allahabad in 1928
	:	B.A from Agra.
	:	B.T from Banaras Hindu University, Banarsa
स्कूल काल की उपलब्धियॉ	.	करणी हाई स्कूल, देशनोक छात्र सघ के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया।
धार्मिक एव सामाजिक उपलब्धियॉ	·	अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन सघ द्वारा सम्मानित। साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के सयोजक/पजीयक के पद पर लम्बे समय तक अपनी सेवाएँ दी।
		श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर-गगाशहर के मत्री/उपमत्री 1970 से 1986 तक।
		21-10-1984 से 06-09-1986 तक साधुमार्गी जैन सघ गगाशहर-भीनासर के अ... 2019 से 2038 तक
		स्थानीय साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर गगाशहर भीनासर द्वारा सम्मानित।

:: क्रमश-पृ ...

कषाय मुक्ति : समता आचरण

सुबोध मोक्ष – मार्ग

प्रथम भाग

1. अहंकार

आचार्यश्री नानालालजी म सा का श्रमणोपासक 10 जनवरी 1984 पृष्ठ नव पर कथन है–"समता भावना पाने के लिये सर्व प्रथम अहमत्व और ममत्व विसर्जन करना आवश्यक है।"

प्राणी के भौतिक और आध्यात्मिक दोनो प्रकार के उत्थान मे अहकार सबसे बाधक तत्त्व है। 1 अहकार शराब की तरह मनुष्य को पागल जैसा बना देता है। शराब पीने से नशा आता है किन्तु अहकार से तो वैसे ही चौबीसो घटे नशा रहता है। अहकार से मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। उसे अच्छे और बुरे का भेद दीखना बद हो जाता है। वह गलत निर्णय पर पहुँच जाता है और गलत काम कर डालता हे। ऐसे कामो के लिये उसे बाद मे बहुत पछताना पडता है। 2 अहकार से मित्रो की सख्या घट जाती है और शत्रुओ की सख्या बढ जाती है। दूसरे लोग उससे भीतर ही भीतर घृणा करने लगते है और उसे नीचा दिखाने की ताक मे रहते है। मौका मिलने पर लोग अभिमानी का आर्थिक नुकसान भी करते है। 3 अहकारी सभी को अप्रिय लगता है। उसे कोई मन से सहयोग देना नही चाहता। 4 अहंकार से अशुभ कर्मो का आगमन और बधन होता है। 5 अहकार से दान, शील, तप आदि अच्छी करणी का फल भी प्राय निरर्थक-सा बन जाता है।

दूसरो को मूर्ख समझने वाला और स्वय की बुद्धि का अभिमान करने वाला तन्दुल मत्स्य सातवे नरक मे जाता है। वह सोचता है–"यदि मै इस बडे मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को बाहर नही जाने देता। सभी को निगल जाता।" अभिमान मे की हुई भाव हिसा से वह महा भयकर अशुभ कर्मो का बध करके सातवे नरक जाता है। अहकार सभी बुराइयो की जड है।

बोध धर्म मे अस्मिता-अभिनिवेश अर्थात् अहकार को कर्मो के बध का कारण माना गया है। जब भारत से धर्मबोधि नामक बौद्ध भिक्षु चीन गये तब

वहाँ के सम्राट बु ने उनका बडा सम्मान किया और पूछा–"मैने भगवान बु के हजारो मंदिर बनवाये है उनकी लाखो मूर्तियाँ बनवाई है। मैने बौद्ध के हजारो ग्रथ लिखवाये है। मैने घर-घर प्रचारक भेजकर बौद्धधर्म का बहुत प्रचार कराया है। मैंने हजारो बौद्ध भिक्षुओ को भोजन कराया है। मुझे इसका क्या फल मिलेगा ?" सम्राट बु सोचता था कि मुझे महान फल की प्राप्ति होगी। किन्तु उत्तर सुनकर उसे बहुत निराशा हुई।

बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने कहा–"सम्राट ! इससे तुम्हारा कुछ भी आत्म कल्याण नही होगा।" इससे तुम्हारे अहकार की पुष्टि और तुष्टि हुई है ससार मे अहकार ही सब से बडा पाप है और अहकार-शून्यता ही सब से बडा धर्म है।"

अहकार करने वाला प्राय सोचा करता है–1 मै जो सोचता हूँ वह ठीक है। 2 मै जो कहता हूँ वह सही है। 3 मै जो करता हूँ वह अच्छा है। 4 मै बुद्धिमान हूँ। 5 मै दूसरो से अच्छा हूँ। 6 मै बडा आदमी हूँ। 7 लोग मेरे जैसे बने। ऐसे लोग तलवार के बल पर भी दूसरो को अपने जैसा धार्मिक बनाने की कोशिश करते है।

अहकार कई रूपो मे प्रकट होता है। कुछ लोग छोटी-छोटी बातो को अपनी इज्जत का प्रश्न बना कर अकड जाते है और घर की शांति को अशांत बना कर तनावग्रस्त हो जाते है। कुछ लोग शाहजहाँ की तरह अकड जाते है। चाहे वे सामने वाले लोगो के विरोध मे टूट जाय लेकिन वे झुकते नही। कुछ लोग कूप मे रहने वाले घमडी मेढक की तरह अपने को बैल से भी बडा दिखाने के लिये फूल-फूलकर फट जाते है। कुछ लोग मूर्ख कौवे की भाँति चालाक लोमडी जैसे लोगो की बातो मे आकर अपने मुँह की रोटी भी खो देते है। अपनी बडाई सुनने का इच्छुक प्राणी प्राय दूसरो से ठगा जाता है।

कुछ अपवादो को छोडकर धनिको को धन का, सत्ताधारियो को अपनी सत्ता का, विद्वानो को अपनी विद्या का, वक्ताओ को अपने भाषण का लेखको को अपने लेखो का, गायको को अपने गाने का और धार्मिक पुरुषो को अपनी धार्मिक क्रिया का अहकार प्राय हो ही जाया करता है। किन्तु जिन त्यागी महात्माओ ने अपनी आत्म-साधना के लिये अपना धन, परिवार सुख और सब कुछ छोड दिया है उन्हे तो अहकार के प्रति सतत जागरूक रहना चाहिये। ऐसा नहीं हो कि अहकार के कारण अपनी साधना के मूल उद्देश्य से वे भटक जावे। संत चाहे कितना ही बडा, ज्ञानी और तपस्वी हो

उनकी क्रिया भी कितनी ही कठिन और उच्च हो, किन्तु जरासी असावधानी होने पर अहकार से उनका सारा तप और धार्मिक क्रियाएँ मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्राय निरर्थक-सी बन जाती है।

मनुष्य को सबसे बडा अहकार अपनी बुद्धि का होता है। मूर्ख, अशिक्षित, अज्ञानी, दीन और भिखारी भी अपनी बुद्धि को सबसे बडी मानता है। किसी प्राणी को अपनी बुद्धि का अत नही दीखता। यह मनुष्य का स्वभाव-सा वन गया है कि वह प्राय दूसरो के कार्यो मे त्रुटियॉ देखता रहता हे। इससे उसके अहकार की वृद्धि होती रहती है। जो प्राणी दूसरो मे गुण देखने की कोशिश करता है वह अहकार से बच जाता है और विनय गुण को प्राप्त करता है।

अहकार जब उग्ररूप धारण करता है तो वह क्रोध के रूप मे प्रकट होता हे। वह लडाई-भगडे और विनाश का कारण बन जाता है। बडे-बडे विश्व युद्ध भी अहकार की प्रेरणा से होते है।

अहकार मनुष्य की ऑखो मे, चेहरे पर, चाल मे, बोली मे, भाषण मे, कामो मे, पोशाक मे और प्राय प्रत्येक क्रिया मे प्रकट होता रहता है। अहकारी प्राय सबसे आगे ऊँचे आसन पर बैठता है। भीड मे वह सवके वीच मे मुखिया बनता है। उसके मुँह से प्राय अपनी प्रशसा की वाते निकला करती हे। उसके वाक्यो मे 'मै, मैने, मुझे, मेरे द्वारा' आदि शब्द निकलते रहते है।

निरभिमानी व्यक्ति किनारे दूर कोने मे रहता है। वह बहुत कम बोलता है। वह स्वय को बडा नही बताता किन्तु हर काम का श्रेय दूसरो को देता हे। उसकी बोली मधुर और प्रिय लगती है। उसकी बात सुनने से सुनने वालो को प्रसन्नता और शाति मिलती है।

अहकार सब दुर्गुणो का मूल है। अहकार छूटने से बाहुबलीजी को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। अहकार छूटने के ये उपाय हैं–

अहकार से होने वाली हानि का बार-बार प्रतिदिन अध्ययन ओर चितन किया जाय।

अपने अवगुणो की सूची बनावे, उनके लिये मन मे पश्चात्ताप करे, उन्हे छोडने का सकल्प और प्रयास करे।

अपने से ऊपर बडो के गुण देखे जावे और उनसे अपनी तुलना की जावे। क्या मेरे पास शालिभद्रजी के बराबर धन, अभयकुमारजी के बराबर बुद्धि, गौतम स्वामी के बराबर ज्ञान है ? क्या मै राजा हरिशचन्द्र जैसा दानी

या धन्ना मुनि जैसा तपस्वी या मुनि गजसुकुमाल जैसा समतामय हूँ। यदि नहीं हूँ तो फिर अहंकार किस बात का ?

सतत जागरूकता रखी जाय। मिनट-मिनट मे सोचिये कि मेरे विचारो, बोली या कामो मे कही अहकार तो नही आ गया है ?

2. ममत्व

अहकार के समान ही प्राणी का दूसरा प्रबल शत्रु है—ममत्व। ममत्व से कर्मो का बधन होता है और समता से उनका क्षय होता है। प्राणी ममत्व भाव के कारण ही ससार मे बधा हुआ है। चवदह पूर्व के ज्ञान को धारण करने वाले, केवली तुल्य माने जाने वाले श्री गौतम स्वामी के केवलज्ञान की प्राप्ति मे बाधक था केवल भगवान महावीर के देह के प्रति उनका प्रशस्त राग। वह राग भी अप्रशस्त नही था, फिर भी बाधक बना रहा। उसके दूर होते ही उन्हे कैवल्य की प्राप्ति हो गई। प्रात स्मरणीय मरुदेवी माता ने कोई व्रत धारण नही किया था। उन्होने कुछ भी त्याग प्रत्याख्यान नही किये थे, सामायिक या नवकारसी भी नही की थी, फिर भी हाथी के ऊपर ही गृहस्थ वेश मे बैठे हुए भी पुत्र-मोह के समाप्त होते ही उन्हे केवलज्ञान और परमात्म-पद की प्राप्ति हो गई थी।

परिवार या सम्पत्ति के मोह मे बंधा हुआ प्राणी अनेक बार मरने के बाद वही सर्प, बिच्छु, भैसा, बैल, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, मेढक छिपकली, मोर आदि बनकर चक्कर काटता हैं और दुर्गति मे जाता है।

ममत्व या राग से मुक्त होने के लिये तीन प्रकार की विचार-धारा मे गहराई से उतरना चाहिये। प्रथम—सब प्राणी अलग-अलग है एक दूसरे से पूर्णत स्वतंत्र है। दूसरी—परिवार किसी को कर्म-दल से बचा नही सकता। तीसरी—परिवार वालो से जैसा लेना-देना बाकी है वैसा ही मन, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बनता है।

जीवन भर ममत्व-त्याग का उपदेश देने वाले सत महात्मा और चवदह पूर्व के ज्ञान के धारक गणधर गौतम जैसे ज्ञानी पुरुष भी समय पर राग मे प्रवाहित हो जाते हैं। अत ममत्व त्याग के लिये उपर्युक्त विचार-धाराओ का अधिक चौबीसो घटे चितन-मनन करना आवश्यक है।

प्रथम विचार-धारा—निगोद के जीव इतने नजदीक-नजदीक है कि उनके एक-एक शरीर मे अनन्त-अनन्त जीव हैं जो एक साथ श्वास लेते है, एक साथ भोजन ग्रहण करते हैं, एक साथ जन्म लेते है और एक साथ मरते है। फिर भी उन सभी के परिणमन अलग-अलग है, उनका मन भी

परिणाम भी अलग-अलग हैं। वे मरने के बाद सब साथ नही रहते। कुछ वही रह जाते है, कुछ तिर्यच वन जाते है, कुछ मनुष्य बन जाते हैं। वे सब अलग-अलग हो जाते है। वास्तव मे सभी जीव अलग-अलग है, सब स्वतत्र है, एक दूसरे से पृथक् है। कोई किसी का हमेशा का साथी नही है।

हम मानव तो बहुत विकसित प्राणी है। हमारे सबके पौद्गलिक शरीर भी अलग-अलग है, कार्मण शरीर भी अलग-अलग है, हमारे विचार, हमारे स्वार्थ, जीवन पथ, करणी, मन के परिणाम, हमारे पिछले जन्मो के स्थान जहॉ से हम आये है और भविष्य के जन्मो के स्थान जहॉ हमे इस देह को छोड कर जाना है वे सभी अलग-अलग है, हर दृष्टि से हम लोग अलग-अलग है। कोई किसी का आश्रित नही है, किसी का स्थायी साथी नही है।

परिवार मे कोई किसी का 'अपना' नही है। भाई-भाई, पिता-पुत्र, यहॉ तक कि पति-पत्नी मे भी अनेक बार अपने-अपने विचारो और स्वार्थ भेद के कारण भयकर झगडे और अलगाब पैदा हो जाते है। सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पाडव, सुन्द-उपसुन्द भाई-भाई ही तो थे। उग्रसेन-कस, श्रेणिक-कोणिक, हिरण्यकश्यप-प्रह्लाद, शाहजहा-औरगजेब पिता पुत्र ही तो थे। राजा प्रदेशी और सूरिकता पति-पत्नी ही तो थे। व्यवहार मे परिवार परिवार दीखता है किन्तु निश्चय मे कोई किसी का नही है। आप हमेशा चितन करते रहिये–

सब अलग अलग, सब अलग अलग।

सब अलग-अलग की भावना को दोहराने के साथ-साथ स्वय को दूसरो से और दूसरो को स्वय से अलग होने की स्थिति मे देखने और अनुभव करने का अभ्यास भी करना आवश्यक है। इस सिद्धात को अपने जीवन की सत्य घटनाओ मे घटित हुए रूप मे देखिये। सोचिये कि अमुक-अमुक व्यक्ति मेरे सबधी है। मैने उनके साथ अनेक बार अलग-अलग होने का व्यवहार किया है। मैने उनका 'अपना' होकर कभी उनको सहयोग नही दिया। हम निश्चय दृष्टि से तो अलग-अलग ही है किन्तु व्यवहार मे भी अलग-अलग है। इस प्रकार की सत्य घटनाओ के चितन से ममत्व तोडने की साधना मे सफलता मिलेगी।

दूसरी विचार-धारा–कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग है। सब अपने-अपने कर्मो का फल स्वय ही अलग-अलग भोगते है। हमारे कष्ट के समय दूसरे प्राणी–माता, पिता, बहन, भाई, पुत्र, पुत्री, पत्नी–सब

असहाय होकर केवल देखते रहते है। कर्मो के कठोर फल को भोगते हुए प्राणी को परिवार कर्म-दड से नही बचा सकता। वह उसके अशुभ कर्मो को शुभ कर्मो मे नही बदल सकता, उसके दु ख दर्द को दूर नही कर सकता, उसका नाथ नही बन सकता, उसको शरण नही दे सकता, शरीर छोड कर जाते हुए को रोक नही सकता। प्राणी के अशुभ कर्मोदय के समय उसका परिवार उसे अधिकतम सहयोग देने की उत्कट भावना रखते हुए भी उसको नही दे सकता। कर्मो की प्रेरणा वश सभी उससे अलग हो जाते। अत. कर्म-फल-भोग-दृष्टि से सब प्राणी अलग-अलग है। अत निजन सूत्र है–

परिवार किसी को कर्म-दड से नही बचा सकता।

तीसरी विचार-धारा कहती है–'कर्ज पुराना पडा हुआ है, इसी हेतु परिवार बना है। कुछ लेने कुछ देने आये, किन्तु मोह मे सब भरमाये।

परिवार प्राणियो के अस्थायी मिलाप की एक ऐसी सस्था है जहा प्राणी अपने पूर्व जन्मो के अपने हित या अहित मे निमित्त बनने वाले के साथ, राग या द्वेष के सम्बन्ध मे जुडकर उनके हित या अहित मे निमित्त बनने के लिए, व्यवहार मे अपने साथ किये गये उपकारो या अपकारो का बदला देने या लेने के लिए, मित्र या शत्रु भाव से पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी भाई-बहन, माता-पिता, स्वामी-सेवक या अन्य किसी का रूप लेकर अपने कर्मो से नियत समय पर, नियत समय (आयु) के लिए, परिवार मे आते है और अपने-अपने कर्मो का फल भोगते हुए, परिवार के हित या अहित मे निमित्त बनते हुए, राग या द्वेष से नवीन कर्मो का बध करते हुए अथवा निस्वार्थ, निष्काम समता भाव एव आत्म-भाव से सबकी सम्यक् आत्म-सेवा को अपनी ऋण-मुक्ति का कार्य मानकर उसे करते हुए, अपने कर्मो का क्षय करते हुए चले जाते है। सक्षेप मे परिवार मे अपना-अपना पुराना लेना-देना लिया दिया जाता है। वहाँ एक दूसरे के प्रति राग-द्वेष करने का कोई कारण नही है।

परिवार के या बाहर के अपने सपर्क मे आने वाले किसी प्राणी के साथ हमारा उपकार या अपकार का बदला या सुख दु ख का पुराना लेना या देना जैसा बाकी है उसे लेने या देने के लिये कर्मो की प्रेरणा से वैसा ही कर्मो का बध, वैसा ही सम्बन्ध और वैसा ही योग बन जाता है। यदि पूर्व जन्मो का राग और प्रेम पूर्वक कुछ लेना बाकी है तो लेने वाला पुत्र पुत्री, जंवाई या मित्र बनकर या गोद आकर या अन्य किसी रूप मे आता

अपना लेना ले लेता है। यदि द्वेष से या दु ख देकर लेना बाकी है तो वह चोरी करके, डाका डालकर, या व्यापार मे धोखा देकर या रिश्वत से अपना लेना ले लेता है और जिससे लेता है उसे दु खी भी बना देता है। इसी प्रकार देने वाला भैसा या बैल बनकर या नौकर बनकर भी अपना देना चुकाता है। यह लेना देना कर्मोदय के अनुसार सुख या दु ख के रूप मे लेना-देना पडता है। यह छूटता नही है। इस लेन-देन मे समता रखने वाला कर्मो की निर्जरा कर लेता है और राग-द्वेष और आर्तध्यान, रौद्रध्यान करने वाला नवीन कर्मो का बधन कर लेता है।

जैसा लेना वैसा योग।
वैसा बधन वैसा भोग।

चितन का सूत्र—परिवार मे कर्ज चुकाया जाता है। वहाँ कोई किसी का 'अपना' नही है। सब अलग-अलग है।

आत्मोन्नति चाहने वाले प्राणी को निश्चय के साथ-साथ व्यवहार दृष्टि पर भी ध्यान देना चाहिये।

निश्चय दृष्टि चित्त धरी, पाले जे व्यवहार।
पुण्यवत ते पामशे, भव सागर नो पार।

निश्चय दृष्टि से कोई किसी का अपना नही है। सब प्राणी अलग-अलग है किन्तु व्यवहार दृष्टि कहती है कि जब तक हम गृहस्थ है, परिवार मे साथ-साथ रहते है, तब तक एक दूसरे के हित मे निमित्त बनना हमारा कर्तव्य है। यह व्यवहार है, यह नीति है और यह आत्म-धर्म भी है। परिवार मे साथ-साथ रह कर भी ममत्व-शून्यता का बहाना करके अपने परिवार वालो की उचित सेवा नही करना, उनको सम्यक् सहयोग नही देना, उन्हे निराश करना, धोखा हैं, हिसा है, पाप है।

ममत्व-शून्यता का यह अर्थ नही है कि हम परिवार मे रहकर परिवार की सेवा नही करे। परिवार पर मोह नही रख कर सबको आत्मा, मात्र आत्मा मान कर उनकी आवश्यक उचित सेवा करना प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है और गृह त्याग के बाद सारे समाज और प्राणी मात्र की आत्म-सेवा करना प्रत्येक त्यागी सत महात्मा का कर्तव्य है। तीर्थकरो ने भी समाज की आत्म-सेवा हित साधु, साध्वी, श्रावक श्राविका—इन चार तीर्थो की स्थापना की है और उन्हे दिव्य आत्मोपदेश देकर अपने कर्तव्य का पालन किया है।

दूसरो की सेवा करने वाला व्यवहार मे तो दूसरो की सेवा करता हुआ दीखता है किन्तु निश्चय दृष्टि मे तो वह दूसरो की सेवा नही किन्तु

स्वय की ही सेवा कर रहा है। अपने लिये ही अच्छी करणी कर रहा है। उसका अच्छा फल उसे ही मिलेगा। किसी को 'अपना' मत समझो किन्तु आत्मा समझकर उसकी सम्यक् सेवा करो।

साधना का तरीका—साधनाएँ अनेक प्रकार की होती है और अनेक प्रकार से की जाती है। किन्तु इसमे मूल रूप मे दो ही बाते है। प्रथम है—चित्त की अधिक से अधिक एकाग्रता और दूसरी है—साधना मे अधिक से अधिक समय लगाना। चित्त की एकाग्रता बनती हे कुछ दिनों के अभ्यास करने से, प्रतिदिन नियमित समय पर साधना करने से, एकान्त स्थान मे शात वातावरण में बैठकर चितन करने से। कमजोर या बीमार पुरुष लेट कर भी चितन-मनन और ध्यान कर सकता है। समय की दृष्टि से सभी समय इस कार्य के लिये उपयुक्त है किन्तु रात्रि को सोते समय और प्रात उठते ही उषाकाल में चित्त अधिक शात रहता है अत ये दोनो समय अधिक उपयुक्त है।

कुछ लोग आधी रात का समय भी उपयुक्त बताते है। कुछ साधक दिन रात्रि का सधि-काल अर्थात् सूर्यास्त और सूर्योदय को साधना करने का अच्छा समय बताते है। किन्तु ममत्व शून्यता की स्थिति प्राप्त करने के लिये नियमित समय के अलावा दूसरा समय भी इस कार्य मे लगाना आवश्यक है। अत इस चितन के लिये तो सभी समय उपयुक्त है। यह चितन-मनन, ध्यान, जप चौबीसो घटे चलते रहना चाहिये। चितन घर मे, दुकान मे, बिस्तर पर लेटे समय भी किया जा सकता है।

कहा जाता है—"सौ बार दोहराने से ज्ञान आता है। हजार बार दोहराने से वह स्थिर होता है। हजार गुणा हजार अर्थात् दस लाख बार दोहराने से वह जन्म-जन्मातर के लिये स्थायी बन जाता है।" जितना अधिक चितन-मनन होगा उतनी ही शीघ्र सफलता मिलेगी। बार-बार दोहराने से वह अचेतन मन मे उतर कर स्थायी भाव बन कर आचरण का अग बन सकेगा।

3. शत्रुत्व—

किसी प्राणी को अपना शत्रु समझना भूल हे। कोई भी प्राणी आपके कर्मो मे हस्तक्षेप नही कर सकता। आपके अशुभ कर्मोदय के बिना कोई अन्य प्राणी आपके दु ख मे निमित्त नहीं बन सकता। आपको यदि दुःख मिल रहा है तो वह आपके स्वयकृत अशुभ कर्मो का फल हे। दूसरा प्राणी तो मात्र निमित्त बन सकता है, उसे शत्रु मानना भूल हैं।

अशुभ कर्मोदय से एक प्राणी पत्थर के ऊपर गिर जाता है, उसका पैर टूट जाता है। वह किसे शत्रु माने ? कैसर होने से किस पर क्रोध किया जावे ? व्यापार मे धन चला जावे या आग मे सारी सम्पत्ति जल जावे तो किसे शत्रु माना जावे ? वास्तव मे कोई किसी का शत्रु नही है। यह तो स्वयकृत अशुभ कर्मो का दड है जिसके फल-भोग से तीर्थकर भी नही बच पाते।

भगवान महावीर ने अपने कानो मे कील ठोकने वाले को शत्रु नही माना। मुनि गजसुकुमाल ने सोमिल को उपकारी माना। व्यवहार से शत्रु दीखने वाले पर हमे क्षमा भाव रखना चाहिये। कहा जाता है "66 क्रोड मास खमण के तप से भी क्षमा बडी है।" किसी ने कहा है–"क्षमा मर्त्यलोक से मोक्ष जाने का पुल है।"

शत्रुत्व का, द्वेष भावना का क्षय करने के लिये कुछ महीनो तक मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कन्दक, मुनि अर्जुनमाली आदि की अद्भुत क्षमा एव समता का गुण-गान और ध्यान कीजिये। इससे आपको अपूर्व शाति मिलेगी और आप स्वय किसी दिन मुनि गजसुकुमाल बन सकेगे। बार-बार चितन-मनन कीजिये–

शत्रु नही कोई शत्रु नही है।
शत्रु नही है, शत्रु नही है।।

4 मुनि गजसुकुमाल का चितन

मुनि गजसुकुमाल अपने बडे भाई महाराज श्रीकृष्ण के साथ हाथी पर बैठकर भगवान नेमिनाथ के दर्शन करने गये। राह मे सोमिल ब्राह्मण की पुत्री, अद्वितीय सुन्दरी, रमणिरत्न सोमा को देखकर, गजसुकुमाल के सर्वथा योग्य समझकर महाराज श्रीकृष्ण ने उसे सोमिल की स्वीकृति से कुआरे अन्त पुर मे भिजवा दिया, किन्तु कर्मो का विधान कुछ और ही था। गजसुकुमाल दीक्षित होकर श्मशान भूमि मे जाकर ध्यानस्थ खडे हो गये। सोमिल ने जब उन्हे इस साधु स्थिति मे देखा तो पूर्व जन्म के वैर के कारण, बदला लेने के लिए क्रोध मे आकर उसने मुनि गजसुकुमाल के सिर पर गीली मिट्टी की पाल बनाकर उनके सिर पर जलते अगारे रख दिये। मुनि गजसुकुमाल का सिर जलने लगा। उनके शरीर मे अथाह वेदना होने लगी, किन्तु वे शात भाव से ध्यान मे स्थिर होकर चितन करने लगे। उन्होने कुछ-कुछ इस प्रकार का चितन किया होगा–

सोमिल मेरा शत्रु नही है। ससार मे कोई किसी का शत्रु नही होता।

अच्छी करणी करता हुआ आत्मा ही अपना मित्र होता है और बुरी [illegible] करता हुआ आत्मा ही अपना शत्रु होता है। व्यवहार मे ही हमारा [illegible] करता हुआ प्राणी हमे हमारा शत्रु दीखता है किन्तु सर्वज्ञ की दृष्टि [illegible] शत्रु नहीं माना जाता, वह तो मित्र, निर्जरा-सहायक, कर्म-राग [illegible] परम उपकारी माना जाता है।

प्राणी अपनी करणी का फल पाता है। वह चाहे संसार के किसी कोने मे जाकर रह जावे किन्तु वह कर्म-फल पाने से बच नहीं सकता। [illegible] किसी शक्तिशाली प्राणी के पास चला जावे, किन्तु कोई उसे [illegible] नहीं सकता। कर्म प्राणी के संस्कार बन कर, कार्मण शरीर के रूप में सदा सर्वदा उसके साथ उसके अन्दर ही रहते है। वे दूर जाते ही नहीं। उन्हें [illegible] क्षय करने के सिवाय उनसे बचने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। [illegible] मे आये हुआ और निकाचित कर्मो से तो किसी भाँति बचा ही नहीं जा सकता। हजारो लाखो वर्षो के बाद भी समय पर अपना फल देकर ही [illegible] होते हैं।

कर्म अपने कर्त्ता को फल देने मे कभी भूल नहीं करते। सरकार अपराधी को या किसी को दण्ड देने मे भूल कर सकता है किन्तु कर्म भूल नही करते। वे कभी धोखा भी नही खाते। चतुर या बुद्धिमान प्राणी अपने तर्क एव प्रयास से सरकार से उचित दण्ड पाने से बच सकता है और कम बुद्धिवाला व्यक्ति निर्दोष होते हुए भी दण्ड पा सकता है किन्तु कर्म [illegible] में ऐसा नही होता। मैंने कभी कोई ऐसा अपराध किया होगा, किसी के [illegible] दिया होगा, किसी के सिर पर अगारे रखे होगे, तभी आज मेरे सिर पर ये अगारे रखे गये हैं।

व्यवहार मे तो सोमिल ने मेरे सिर पर अगारे रखे है किन्तु निश्चय दृष्टि से तो मैंने स्वयं ही अपने सिर पर अंगारे रखे है। मैंने कभी [illegible] मजाक में या स्वार्थवश ऐसा नाटक रचा होगा, उसीकी यह प्रतिक्रिया है। यह मेरे निज कर्म का ही फल है।

अकृत से दुःख या सुख की प्राप्ति नहीं होती। ऐसा नहीं हो सकता कि मैंने कुछ अपराध नही किया हो, फिर भी ये अगारे अकारण ही मुझ पर रखे जावें। यदि बुरी करणी किये बिना ही दुःख मिलता तो अच्छी करणी किये बिना ही सुख भी मिलता। फिर लोग सुख के लिए दान-शील-तप-भावना का मार्ग क्यो अपनाते ? यह निश्चित है कि ये अंगारे मेरी ही बुरी करणी का फल है। इन्हें अपने सिर पर रखने वाला मैं ही हूँ, सोमिल नहीं।

"सोमिल मेरा शत्रु नही, सहायक है, उपकारी है। वह आज मेरी कर्म निर्जरा मे सहायक बना है। आज नही तो कभी-न-कभी तो इस कार्य के फल को मुझे भोगना ही पडता। यह अच्छा हुआ कि आज मेरी सद्बुद्धि की अवस्था मे, समता भावना की स्थिति मे, इस कर्म-फल को समता भाव से भोगने का शुभ अवसर सोमिल ने मुझे दिया है। मै उसका कृतज्ञ हूॅ। आज मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। कर्मो की निर्जरा हो रही है, आत्मा की शुद्धि हो रही है और सभवत मोक्ष की प्राप्ति भी हो सकती है। सोमिल ने मेरा अहित नही किया है, मेरा हित ही किया है। अहित तो उसने अपना ही किया है। उसने मेरे निमित्त से भारी कर्मो का बध किया है, जिसका दड भोगना उसके लिए बहुत कठिन होगा। परमात्मा उसे सद्बुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे और इस कर्म के फल को समता पूर्वक भोगने की शक्ति दे।"

कुछ लोग अपने दु ख मे निमित्त बनने वाले को अपना शत्रु मानकर उससे बदला लेते है और कुछ लोग उसे क्षमा भी कर देते है किन्तु क्या कोई किसी को क्षमा प्रदान कर सकता है ? क्या पीडित के द्वारा क्षमा प्रदान किये जाने से पीडक उस पाप के फल-भोग से छूट जाता है ? यदि ऐसा होता हो तो मै एक बार नही, किन्तु हजार बार सोमिल को क्षमा प्रदान करता हूॅ। मेरी ओर से वह पाप और पाप के दड से मुक्त बने।

अपराधी सोमिल नही है। अपराधी तो मै हूॅ। मैने पूर्व मे भी पाप किया और निमित्त बनकर सोमिल के विचारो को विकृत एव दूषित बनाकर उसमे बदला लेने की भावना उत्पन्न की और आज भी उसके लिए नवीन भयकर कर्म बध का निमित्त बना। क्षमा मुझे मॉगनी चाहिए। वह तो आज मेरा उपकारी बना है। कर्म निर्जरा मे सहायक बना है। मित्र सोमिल ! मेरे अपराध के लिए मै क्षमा की भीख मॉगता हूॅ।

मेरे सिर पर जो रखे गये है वे अगारे नही है। वे तो मेरे कर्म रोग काटने की गोलियॉ है। मेरे रोग को मिटाने की अचूक दवा है। मुझे इस दवा को समतापूर्वक पीना है। दवा तो दवा ही होती है। वह कभी मीठी और कभी कॅडवी भी हो सकती है। ज्ञानी ऐसी दवा को ही कर्म-रोग काटने की दवा मानते है। उसका आनन्दपूर्वक सेवन करते है। वे चिकित्सक को शत्रु नही किन्तु अपना मित्र और एव उपकारी मानते है। आज मै इस दवा को पीकर रोग मुक्त बन सकूगा। यह अमृत है, इसे पीकर अमर बन सकूगा।

भगवान नेमिनाथ ने मुझ पर असीम कृपा की है। उन्होने मुझे मेरे

कर्म काटने का सरल, सुगम, शीघ्र लाभदायक और अचूक मार्ग बता [illegible]
उनकी कृपा से मै समतापूर्वक इस कर्म-रोग से मुक्त हो सकूंगा। [illegible]
तो हमेशा दूसरो पर दया ही करते हैं।

"मै आत्मा हूँ। देह से भिन्न हूँ। मै अमूर्त हूँ, चेतन हूँ। मे अजर-अ[illegible]
और शाश्वत हूँ। आग मुझे जला नही सकती। शस्त्र काट नही स[illegible]
पानी गला नही सकता। हवा सुखा नही सकती। मैं अछेद्य हूँ अभेद्य [illegible]
मै आत्मा हूँ, आत्मा का आत्मा के सिवाय अपना कुछ भी नही होता। [illegible]
शरीर मेरा नही है। मैं शरीर नही हूँ। शरीर के जाने से मेरा कुछ भी न[illegible]
जाता। मै निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ"

मुनि गजसुकुमाल की भावना उच्च से उच्चतर और उच्चतम भूमि[illegible]
पर पहुँच गई। उन्होने इस नश्वर देह को त्याग कर परमात्म-पद प्राप्त क[illegible]
लिया।

धन्य है मुनि गजसुकुमाल, धन्य है उनकी समता। उन्हे बार-[illegible]
वंदन है, वदन है, वदन है। यह निश्चित है कि मुनि गजसुकुमाल की [illegible]
और समता की अनुमोदना मे भाव विभोर होने वाले प्राणी के अशुभ कर्मो [illegible]
महान निर्जरा होगी।

5. आत्म-भावना

श्रीमद् रायचन्द्रजी ने कहा है—"आत्म भावना भावता जीव [illegible]
केवलज्ञान रे।" देहात्म-भेद-ज्ञान को जैन दर्शन ने सम्यक्त्व का [illegible]
बताया है। जब तक प्राणी को अपने आत्मा के अस्तित्व और साथ ही उस[illegible]
नित्यत्व, कर्त्तृत्व, भोक्तृत्व एव मुक्तत्व मे पूर्ण विश्वास और दृढ श्रद्धा [illegible]
नही हो जाती तब तक वह मिथ्यात्व से घिरा रहता है। आत्म-भावना [illegible]
वाले प्राणी अहमत्व, ममत्व, शत्रुत्व दु खानुभूति और सुखानुभूति इन [illegible]
बच सकता है और परमात्म-पद का अधिकारी बन सकता है।

"आत्मा हूँ मै, देह भिन्न हूँ, मै अमूर्त हूँ, चेतन हूँ। मे अछेद्य हूँ, [illegible]
अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ। ज्योति पुज हूँ, ज्ञान रूप हूँ, आनन्द
घन हूँ, चेतन हूँ। निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा [illegible]
आत्मा हूँ—मै आत्मा हूँ, मात्र आत्मा हूँ। मैं शरीर नही हूँ। शरीर [illegible]
से मेरा कुछ भी नही आता। मै (आत्मा) और शरीर दोनो से भिन्न-भिन्न [illegible]
मै चेतन हूँ, सूक्ष्म हूँ, अमूर्त हूँ, शाश्वत हूँ। शरीर जड है, स्थूल [illegible]
और नाश्वान है। दोनो मे महान अतर है और वे अलग-अलग [illegible]
हूँ—अमूर्त होने के कारण मैं (आत्मा) शरीर की इन्द्रियों [illegible]

इन भौतिक ऑखो से देखा नही जा सकता। कान, नाक, जीभ और त्वचा से मै जाना नही जा सकता। इन्द्रियो के द्वारा प्रत्यक्ष रूप मे मुझे नही जान सकने के कारण लोग सरलता से मेरे अस्तित्व का ज्ञान नही कर पाते। मेरे अस्तित्व मे लोगो को शीघ्र ही श्रद्धा भी नही हो पाती।

मै शरीर नही हूॅ। मै न स्त्री हूॅ, न पुरुष हूॅ। न बाल हूॅ, न वृद्ध हूॅ। न जैन हूॅ, न अजैन हूॅ। न शैव हूॅ, न वैष्णव हूॅ। न हिन्दू हूॅ, न मुसलमान हूॅ। न छूत हूॅ, न अछूत हूॅ। न बडा हूॅ, न छोटा हूॅ। न बुद्धिमान हूॅ, न मुर्ख हूॅ। न अच्छा हूॅ, न बुरा हूॅ। मै तो मात्र आत्मा हूॅ। आत्मा के सिवाय और कुछ भी नही हूॅ।

मै चेतन हूॅ—मेरे अस्तित्व का ज्ञान मेरी चैतन्यता के माध्यम से ही पाया जा सकता है। यह शरीर चेतना के सहारे ही खाता-पिता है, चलता-फिरता है, सुनता-बोलता है और देखता-जानता है। मेरे द्वारा इस शरीर को छोड दिये जाने के बाद यह शरीर कुछ भी नही कर सकता, बेकार हो जाता है, मिट्टी बन जाता है। लोग इसे क्षण भर भी घर मे नही रखते। घर से बाहर श्मशान मे ले जाकर इसे जलाकर इसकी भस्म बना देते है। मेरे अस्तित्व का सबसे प्रबल प्रमाण मेरी चेतना है, जो इस शरीर को चलायमान रखती है और जिसके निकल जाने पर जड देह जलाने योग्य बन जाती है।

मै अवद्य हूॅ—शस्त्रो द्वारा मेरा छेदन, भेदन या वध नही हो सकता। आग मुझे जला नही सकती। पानी मुझे गला नही सकता। हवा सुखा नही सकती। मै अजर-अमर हूॅ, मै शाश्वत हूॅ।

मै ज्योति पुज हूॅ, मै ज्योति हूॅ, अद्‌भुत ज्योति हूॅ। ससार की सभी ज्योतियो से भिन्न हूॅ। अत मेरी कल्पना करना भी कठिन है।

मै ज्ञान रूप हूॅ—मै (आत्मा) ज्ञानरूप हूॅ, ज्ञान का भडार हूॅ। ज्ञान की न्यूनाधिकता का कारण मेरे ऊपर आया हुआ ज्ञानावरणीय कर्म का आवरण है, उसके हटते ही मै सर्वज्ञ, सर्वदर्शी बन जाता हूॅ।

मै आनन्द घन हूॅ—मै आनदमय हूॅ। बाहरी मूर्त पदार्थो मे सुख नही है, वहॉ तो सुखाभास है जिसका परिणाम कभी-न-कभी दु ख की प्राप्ति मे मिलता है। मै (आत्मा) स्वय मे स्थिर होकर स्वय के द्वारा स्वय की अनुभूति से, अकथनीय आनन्द पा सकता हूॅ। वहॉ चिन्ता, भय, दु ख का नाम निशान भी नही है। आनन्द के लिए बाहर झॉकने की जरूरत नही है।

मै निराकार हूॅ—मेरा कोई आकार नही है। शरीर अवस्था मे मैं शरीर

प्रमाण बडा या छोटा हो जाता हूँ।

मै निर्विकार हूँ–शुद्ध रूप मे मै काम, क्रोध, मान, माया, लोभ मद मोह इन सबसे रहित हूँ।

मै विमल ज्योति हूँ–मै निर्मल ज्योति हूँ, मै शुद्ध चेतना हूँ। मै आत्मा हूँ। आत्मा के सिवाय मै और कुछ भी नही हूँ। आत्मा का आत्मा के सिवाय कुछ भी नही होता। मेरे सिवाय मेरा यहाँ कुछ भी नही है। मेरे बाबत कुछ कहा नही जा सकता। मुझे इन चर्म चक्षुओ से देखा नही जा सकता। मेरा न कोई रूप है, न कोई रेखा है।

"आत्म-ज्ञान ही परम ज्ञान है, स्वानुभूति सम्यक् दर्शन है। आत्म-रमण सयम है, तप है, आत्म-ध्यान ही परम धर्म है।" आत्म दर्शन के उपाय–आत्मा अमूर्त है। उसे इन चर्म चक्षुओ से देखा नही जा सकता। उसकी अनुभूति और उसके साक्षात्कार के लिये आध्यात्मिक ग्रथो के अध्ययन एव सत महात्माओ के मुखारविद से ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ नीचे लिखी विधि से ध्यान भी किया जा सकता है–

प्रथम चितन–शरीर की प्रत्येक क्रिया आत्मा की चैतन्य शक्ति के कारण ही सभव है। जैसे दूध मे घी मिला हुआ हे वेसे ही शरीर के कण-कण मे आत्मा रमा हुआ है। इसका गहरा और बार-बार चितन किया जावे।

दूसरा चितन–शरीर से भिन्न किन्तु शरीर मे ही आत्मा की स्थिति की कल्पना करना, कल्पना द्वारा ध्यान करना, ध्यान द्वारा आत्मा की अनुभूति करना और उसका दर्शन करना चाहिये। यह काम आसान तो नही है किन्तु अभ्यास करने से सफलता मिलेगी।

तीसरा उपाय–अपने शरीर से आत्म-प्रदेशो को ऊपर उठाने की कल्पना की जावे और इस साधना मे ध्यान द्वारा आत्म-दर्शन का अभ्यास किया जावे।

चौथा उपाय–अपनी आत्मा को लोक के अग्र भाग मे पुरुषाकार मे सिद्ध स्वरूप मे, अटल अवगाहना मे देखने का ध्यान किया जावे।

पॉचवा उपाय–अपने आत्मा को शरीर से ऊपर उठाकर निर्जीव शरीर का दाह-सस्कार देखा जावे। इससे देह की आसक्ति हटेगी।

छठा–सिद्धो का अटल अवगाहना की स्थिति मे ध्यान किया जावे।

सातवां–दूसरे प्राणियो के शरीर मे आत्मा की स्थिति की कल्पना की जावे।

आठवा—मुनि गजसुकुमाल, मुनि स्कदक आदि के जीवन के अतिम समय मे उनके शरीर से निकलकर ऊपर उठते हुए आत्मा का कल्पना द्वारा ध्यान किया जावे।

आत्म-भावना या आत्म ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति भी सभव हो सकती है।

6 समता आचरण

समता आचरण का अर्थ है कि मनुष्य दु खद और सुखद दोनो प्रकार की परिस्थितियो मे अशुभ विचार और अशुभ काम नही करे। वह कुविचारो और कुकर्मो से दूर रहे। वह अच्छे विचारो और अच्छे कामो मे ही लगा रहे। वह ऐसे विचार और ऐसे काम करे जिससे उसका अपना भला होवे और दूसरो का भी अहित नही होकर आत्म-हित होवे। समता आचरण समता विचारो से ही बना है। समता भावना के बिना समता आचरण नही बनता।

समता आचरण के लिये चार बातो से बचना आवश्यक है। 1 दु ख चेतना से बचना, 2 दु ख चेतना मे अशुभ सकल्प-विकल्प से बचना, 3 सुख चेतना से बचना और 4 सुख चेतना मे अशुभ सकल्प-विकल्प से बचना।

दु ख चेतना का अर्थ है—दु खद परिस्थिति मे दु खी होना, व्याकुल होना, दु ख की अनुभूति करना। दु ख-चेतना से बचने का अर्थ है कि बाहर चाहे दु खद स्थिति बन जावे किन्तु प्राणी के भीतर मन मे दु ख नही आवे। वह आर्तध्यान नही करे, उसकी शाति भग नही हो। मन मे चिता, भय, शोक, उदासी नही आने पावे।

मन मे दु ख की चेतना आने पर प्राणी अनेक प्रकार के अशुभ विचारो मे उलझ जाता है। वह अनेक प्रकार के अशुभ सकल्प-विकल्प करता है— यह काम करू ? वह काम करू ? क्या करू ? क्या नही करू ? दु ख से कैसे बचू ? ऐसे विकल्पो से बहुत से बुरे काम भी हो जाते है। जो प्राणी दु ख चेतना से बचेगा, उसके विचार और उसका आचरण समता विचार और समता आचरण बने रहेगे।

मुनि अर्जुनमाली का साधु जीवन पूर्ण समता आचरण का सर्वोत्तम उदाहरण है। दीक्षा लेने के बाद जब वे गोचरी जाते तब कुछ लोग उन्हे गालियॉ देते। कोई उन्हे पीट भी देता। कही अन्न मिलता तो जल नही मिलता। कही जल मिलता तो अन्न नही मिलता।

मुनि अर्जुनमाली चिन्तन करते—मैने पूर्व जन्मो मे और इस जन्म मे लोगो को अन्तराय दी है। उस अन्तराय कर्म का फल मुझे अन्न-जल के

अन्तराय रूप मे भोगना पडेगा। मैने अनेक प्राणियो की हत्या की है और ... को अनाथ बनाया है, उन्हे असाता पहुँचायी है। उसका फल भी मुझे ... और कष्ट के रूप मे भोगना पडेगा। मुझे जो कष्ट मिल रहा है उससे अधिक दंड पाने का मै पात्र हूँ।

महापुरुषो ने दु ख और कर्म काटने का उपाय बताया है—समता आचरण। समता रखने से दु ख दवा बन जाता है। वह दु ख को मिटाती है और कर्मो को भी काटती है। उससे नये कर्मो का आना भी रुक जाता है।

मेरी समता भावना के कारण मेरा दु ख अब औषध बन चुका है। ... मेरे दु ख को मिटा रहा है। वह मेरे कर्मो को काट रहा हे, मेरे कर्म ... आत्मा से झड रहे है। मेरी आत्मा शुद्ध हो रही है। वे अपनी आत्मा से कर्मो को झडते हुए देखने की कल्पना करते हुए अनेक बार ध्यानस्थ हो जाते थे।

इस प्रकार अपने गृहस्थ जीवन मे 1141 स्त्री-पुरुषो की हत्या करने वाले मुनि अर्जुनमाली ने अपने पापो के लिये पश्चात्ताप किया और ... समता आचरण द्वारा उसी भव मे कर्मो को काट कर मोक्ष प्राप्त किया। "धन्य है मुनि अर्जुनमाली, धन्य है उनका साधु जीवन, धन्य है उनकी पश्चात्ताप भावना, धन्य है उनका समता आचरण, धन्य हे उनका ध्यान। उनके आचरण का अनुमोदन और अनुसरण करने वाला परमात्म-पद का अधिकारी बन जाता है।

इस दृष्टि से प्राणी तीन प्रकार के होते है। प्रथम वे जो दु ख को दु ख मान कर दु खी होते है और आर्तध्यान से भारी कर्मो का उपार्जन कर अपनी आत्मा का पतन कर लेते है। जैसे चक्रवर्ती की रानी श्रीदेवी अपने पति की मृत्यु पर छ मास तक विलाप करती हे और छठे नरक मे जाती है।

दूसरे वे जो मुनि अर्जुनमाली की भाँति अपने पापो का प्रायश्चित करते है, समता आचरण का पालन करते हे, समता के कारण अपनी कल्पना मे दु ख को दवा मान कर उससे अपने कर्मो को झडता हुआ देखने का ध्यान करते है और कर्म-बधन से मुक्त हो जाते है। यह मुक्ति दु ख-चेतना-मुक्ति से ही सभव होती है।

तीसरे वे जो अपने आत्म-ध्यान मे, अपने ज्ञान-ध्यान मे इतने ... है कि उनके कानो मे चाहे कीले ठोकी जावे, उनके शरीर से ... उतारी जावे, उनके मुँह से आह तक नहीं निकलती, उनके ... दु खानुभूति का कोई चिन्ह दिखाई नहीं देता। संभव है कि उन्हे ...

मे दु ख की अनुभूति ही नही होती होगी। वे दु ख-चेतना-मुक्त समता-आचरण के साक्षात मूर्त रूप है।

भौतिक-सुख-चेतना भी प्राणी को समता विचार और समता आचरण से बहुत दूर ले जाती है। भौतिक-सुख-चेतना वाले प्राणी का अर्थ है– विषय-भोगो मे मस्त, इन्द्रिय-सुखो मे डूबा हुआ, सासारिक-सुखो मे आसक्त, मास-मदिरा-कुशील-सेवन मे लिप्त, सुख प्राप्ति हेतु आर्त-रौद्र-ध्यान करता हुआ और अनेक प्रकार के बुरे सकल्प-विकल्प करता हुआ, दूसरो के हित-अहित का ध्यान नही करने वाला, समता विचार और समता आचरण से शून्य प्राणी। जो मनुष्य भौतिक-सुख-चेतना मे डूबा हुआ है और सासारिक सुख-भोगो की इच्छा करता रहता है वह समता से बहुत दूर चला जाता है। समता आचरण के लिये आवश्यक है भौतिक-सुख-चेतना से मुक्ति और इन विषय-भोगो के सकल्पो-विकल्पो से भी मुक्ति, इन सभी बातो से उदासीनता।

कुछ अपवादो को छोडकर प्राणी के अधिकाश अशुभ विचार और अशुभ काम प्राय किसी-न-किसी प्रकार की अशुभ या अशुद्ध सुख-चेतना से ही होते है। आत्म-हत्या करने वाला भी शायद अपनी आत्म-हत्या से दूसरो को दु खी बना कर स्वय सुख पाने की कल्पना करता होगा। युद्ध मे लडते हुए मरने वालो को अपनी वीरता दिखाने और वीर कहलाने के विचारो से उनके मन मे सुख की अनुभूति होती होगी। कठोर अग्नितापस भी स्वय को भयकर ताप देकर महान तपस्वी कहलाने की भावना से या स्वर्ग-सुख पाने की आशा से सुख अनुभव करते होगे। सुख की अनुभूति शरीर से कम और मन से अधिक होती है। यही कारण है कि लोग प्राय मानसिक सुखानुभूति के लिये बडे-बडे कष्ट और खतरे उठाने के लिये तैयार हो जाते है।

सुख बाहरी पदार्थो मे नही है। वह तो मन के भीतर विचारो से मिलता है। शत्रु के मुँह से गाली सुनने से क्रोध आता है किन्तु ससुराल मे महिलाओ के मुँह से गीतो मे गाली सुनने से क्रोध नही आता, क्रोध की जगह प्रसन्नता होती है। जिन कामो से एक समय मे लोगो को सुख होता है उन्ही कामो से दूसरे समय मे उन्ही लोगो को दु ख होता है।

मनोविज्ञान कहता है कि प्राणी यदि विषय-सुख-भोगो से होने वाले भावी दु खो का चिन्तन करे, भौतिक सुखो को सुखाभास मानने लगे, उनसे अन्त मे दु ख पाने वाले यादवो और कौरवो के ऐतिहासिक उदाहरणो का

चितन-मनन करने लगे, तो उनकी विचारधारा बदल सकती है। भौतिक-सुख-चेतना और उससे संबंधित अशुभ सकल्पो-विकल्पो से बच सकते है। उनके विचार समता-विचार और उनके आचरण समता आचरण बन सकते है।

मास-मदिरा-कुशील-कुव्यसन आदि सुख भोगो से बहुत हानि होती है। 1. भोगो से शरीर मे रोग आने का भय हमेशा बना रहता है। वे प्राय: रोग से घिरे रहते है। 2 उनका धन भोगो मे खर्च हो जाता है और वे गरीब बनकर बहुत दु ख पाते है। 3 उनका आत्म-पतन हो जाता है। 4 वे अनेक प्रकार के कुव्यसनो मे फस जाते है। 5 कुव्यसनो के कारण कुसगति मे फस कर दु ख पाते है। 6 कुव्यसनो और कुसगति के कारण वे अनेक शत्रुओ से घिरे रहते है और बार-बार सकट मे फस जाते है। 7 भोगी इस जन्म मे भी दु ख पाते है और भविष्य के जन्मो मे भी दुर्गति में जाकर दु ख ही पाते है।

दु:ख और भौतिक-सुख दोनो की चेतना से मुक्त प्राणी हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से प्राय बच जाता है। वह क्रोध, मान, माया, लोभ से भी काफी बच जाता है। उसे किसी प्राणी से राग-द्वेष करने का कोई कारण नही बनता। उसे कोई प्राणी या पदार्थ या घटना प्रिय या अप्रिय नही लगती। वह आर्तध्यान और रौद्र ध्यान से भी प्राय बचा रहता है। सातो कुव्यसन भी उससे दूर ही रहते है।

जो प्राणी अपनी समता भावना के कारण अपनी कल्पना मे आये दु ख को कर्म-रोग काटने की दवा मानकर अपने कर्मो को अपनी आत्मा से झाड रहा है, जो भौतिक सुखो को सुखाभास मान कर उनमे आसक्त नही होता, उसके मन मे अशुभ सकल्पो-विकल्पो को स्थान ही नही मिलता। ऐसा समता आचरण वाला वीतराग प्राणी परमात्म-पद का अधिकारी बनता है।

दु.ख चेतना और उससे पैदा होने वाले सकल्पो-विकल्पो से बचने के लिये चितन-सूत्र है-"समता के कारण दु ख दवा बन जाता है और कर्म-रोग को मिटा देता है। मुनि अर्जुनमाली के सभी कर्म परमात्म समता भावना और शुभ ध्यान से कट गये।" स्वय पर दु ख आने पर बार-बार दोहराइये "समता के कारण मेरा दु.ख कर्म-काटने की दवा बन रहा है। मेरे कर्म कट रहे है।"

भौतिक सुख-चेतना और उससे पैदा होने वाले अशुभ सकल्पो-विकल्पो से बचने के लिये चितन सूत्र है-सुख चेतना का फल है भोगासक्ति

हानि, आत्म-पतन, कुव्यसन, कुसगति, सकट, इस जन्म मे दु ख और अगले जन्म मे दुर्गति।"

अन्य प्रकार की साधना के साथ-साथ उपर्युक्त सूत्रो को दोहराइये, मन की एकाग्रता से जप कीजिये। जप से पैदा होने वाली ध्वनि तरगो की अजीब और अदृश्य शक्ति किसी भी गुण को स्थायी भाव बना कर प्राणी के आचरण मे उतारने मे समर्थ है। शुभ भावना से किया गया जप स्वाध्याय तप का अग है।

7. राग-द्वेष

किसी प्राणी को अपना मानना या उसे अकारण ही बडा या अच्छा या धनवान आदि समझना राग है और किसी को शत्रु मानना या अकारण ही गरीब भिखारी आदि समझना द्वेष है। सद्भावना से किसी को अनिष्ट एव पतन से बचाने के लिए आवश्यक कारणवश वस्तुस्थिति का निष्पक्ष भाव से अपनी जानकारी के अनुसार कथन करना राग द्वेष नही होता किन्तु अकारण किसी के सबध मे उसके अच्छा या बुरा होने का कथन करना राग द्वेष ही है।

प्राणी के बुद्धिमान या मूर्ख, बडा या छोटा, रक या राव, भला या बुरा, सज्जन या दुर्जन, अपना या पराया, मित्र या शत्रु होने का विचार करना पर-द्रव्य का चितन है और राग-द्वेष है। प्राणी को मात्र प्राणी समझना, उसको मूलरूप मे विशुद्ध आत्मा के रूप मे देखना, उसे मात्र आत्मा मानना, वीतराग भाव है।

दु ख मे दु खी होना या सुख मे फूलना राग-द्वेष है किन्तु दु ख मे समता रखना, उसे समभाव से भोग लेना और सुख मे आसक्त नही होना, उदासीन रहना, उससे होने वाले भावी दु खो पर विचार शुरू कर देना राग-द्वेष-मुक्ति है।

8 कर्म बंध और क्षय

कर्म है प्राणी के द्वारा किये गये पुरुषार्थ के बदले मे उसे मिलने वाला फल जिसे लोग दैव भाग्य या होनहार भी कहते है। ससार मे एक प्रकार के अति सूक्ष्म कर्म-वर्गणा के पुद्गल भरे हुए है। जब-जब प्राणी के मन या वचन या काया या तीनो योगो से जरा भी हलन-चलन होती है तो ये पुद्गल प्राणी की ओर आकर्षित होते है, मन के अच्छे या बुरे विचारो के अनुसार अच्छे या बुरे सस्कार बनकर कर्म के रूप मे आत्मा के साथ जुड

8 पश्चात्ताप से चन्दडरुद्राचार्य को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
9 पश्चात्ताप से कूरगडुक मुनि को कैवल्य प्राप्त हुआ।
10 पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ।
11 अनुमोदना–मुनि गजसुकुमाल आदि की समता की अनुमोद[illegible] विजय सेठ और विजया सेठानी के आजीवन अखडित शील [illegible] की अनुमोदना, सुमुख गाथापति के दान की अनुमोदना और [illegible] सेठ के दान भावना की अनुमोदना तिराने वाली हैं।
12 "आत्म-भावना भावता, जीव लहे केवलज्ञान रे"–ऐसा श्रीमद् रायच[illegible] ने कहा है।

9. सत्य की शक्ति

"सच्चं खु भगव" सत्य ही भगवान है। सत्यवादी को ईश्वर के [illegible] ससार की सभी शक्तियो के आशीर्वाद प्राप्त होते है। सत्यवादी स्वय [illegible] परमात्मा तुल्य है। सत्यवादी मे देवताओ से भी अधिक शक्ति होती [illegible]

आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का "हरिशचन्द्र तारा" पृष्ठ 78 [illegible] कथन है–"विश्वामित्र के तपबल से बधी हुई अप्सराओ को [illegible] हरिशचन्द्र ने अपनी सत्य बल की शक्ति द्वारा बधन मुक्त कर दिया। [illegible] कहने लगी–"ऋषि का वह तप-बल जिसका प्रभाव मेटने मे हम देविया [illegible] असफल रही, वह तप-बल हरिश्चन्द्र के सत्यबल से परास्त हो [illegible] सत्य मे देवताओ और तपस्वियो से भी अधिक बल होता है।"

आनन्द प्रवचन भाग नव पृष्ठ चार पर आचार्यश्री आनन्दऋ[illegible] सा का कथन है–"सत्य से समुद्र मे जहाज डूबता नही। सत्यवादी [illegible] मे जलते नही, पहाड पर गिरने से मरते नही, युद्ध मे बच जाते है, [illegible] अभियोग शत्रुता से भी मुक्ति पा लेते है। सत्य से आकृष्ट होकर [illegible] सत्यवादी की सेवा करते है। सत्य मे हजार हाथियो का बल है।"

धर्मशास्त्रो मे कहा गया है–"सत्य चेत्तपसा च किं" अर्थात् [illegible] तप से अधिक सत्य है। "नास्ति सत्यात्परो धर्म" अर्थात् सत्य से [illegible] धर्म नही।

साच बराबर तप नही, झूठ बरावर पाप,
जाके हृदय सांच है, वाके हृदय आप।।

10 शील की महिमा

"धन्य है, धन्य हैं आप दोनो। आपकी भक्ति करने से और [illegible] पारणा कराने से चौरासी हजार मुनियो की भक्ति करने और पार[illegible]

के बराबर फल होता है, ऐसा केवलज्ञानी मुनि विमल ने हमे बताया है। आप दोनो विवाहित होकर भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे है। धन्य है आप, धन्य है आपका अखडित ब्रह्मचर्य, धन्य है आप दोनो का जीवन।" विजय सेठ और विजया सेठानी की विनयपूर्वक स्तुति और भक्ति करते हुए, शील के महात्म्य को बताते हुए, दूर चम्पा नगरी से आये हुए, बारह व्रतधारी श्रावक श्रेष्ठी जिनदास ने सबके सामने रहस्योद्घाटन किया। इस रहस्य को और शील की महिमा की बात सुनकर वहाँ बहुत लोग एकत्रित हो गये। विजय सेठ के माता-पिता तो पौत्र देखने की आशा वर्षो से लगाये हुए थे। उन्हे क्या पता था कि उनके पुत्र ने शुक्ल पक्ष मे अखण्ड शील पालन का और उनकी पुत्रवधू ने कृष्ण पक्ष मे शील पालन का व्रत विवाह के पूर्व ही ले लिया था।

अखण्ड शील की बात प्रकट होने पर विजय सेठ और विजया सेठानी अपने पूर्व निश्चय के अनुसार दीक्षा लेकर मुनि विजय और साध्वी विजया बन गये और अपने कर्मो को क्षय करके उन्होने परमात्म-पद प्राप्त कर लिया।

दोनो तरुण थे, सुन्दर थे, विवाहित थे, पति-पत्नी थे, रात्रि मे एक कमरे मे एक ही पलग पर सोते थे। आध्यात्मिक वार्तालाप भी करते थे किन्तु काम-वासना उन्हे छू भी नही सकी। ऐसे दम्पति की भक्ति से चौरासी हजार मुनियो की भक्ति का लाभ हो तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ? मुनि विजय और साध्वी विजया ने अपने आजीवन अखडित शील-पालन और सयम से मोक्ष प्राप्त किया।

1 विजय सेठ और विजया सेठानी के शील-पालन की अद्भुत घटना और इसके महात्म्य की बात सुनने से प्राणी के मन मे शील-पालन की शुद्ध भावना का जन्म होता है।

2 इस घटना का गुणगान और अनुमोदन करने से उत्पन्न होने वाली भाव-तरगो से उस शील-भावना का पोषण और उसकी वृद्धि होती है।

3 अपनी भौतिक ऑखे बद करके कल्पना द्वारा उस घटना की काल्पनिक चित्रावली का ध्यान करने से प्राणी का मन शील-भावना पर एकाग्र हो जाता है। मन मे इतनी शक्ति नही है कि वह ऑखो को या कान को छोडकर दूसरी जगह चला जावे।

4 शीलव्रत के महात्म्य का जप करने से मौन जप से उत्पन्न होने वाली आतरिक ध्वनि-तरगे शील-भावना को मजबूत बनाती है।

5. बहुत दिनो के शील भावना के ध्यान के अभ्यास से शील भाव स्थायी भाव बन कर प्राणी के अचेतन मन मे उतर जाती है और उस आचरण का अंग बन जाती है। इस साधना मे लगा हुआ प्राणी किसी दिन साधु विजय या साध्वी विजया बन जाता है। जरूरत है दृढ श्रद्धा के साथ प्रतिदिन कुछ महीनो तक ध्यान करने की।

11. कुछ भ्रम

बहुत लोग सोचते है कि धन और भौतिक सुख केवल वर्तमान के खोटे पुरुषार्थ से मिलता है। जैसे खाद्य पदार्थो मे मिलावट, काला बाजारी, तस्करी, दो नम्बर के धंधे, सरकारी कर चोरी, धोखा, झूठ, चोरी, ठगी, रिश्वत, गरीब शोषण एव हिसक धधा।

यदि उपर्युक्त विचार ठीक हो तो वर्तमान मे खोटे धधे करने वाले हजारो प्राणी दीन-हीन, गरीब और दु खी क्यो है ? सभी खोटे धधो से धन कमा कर सुखी क्यो नही बनते ?

तर्क मे कहा जाता है कि वर्तमान पुरुषार्थ का फल तुरन्त मिलता है। लाल मिर्च खाते ही मुँह जलने लगता है और गुड खाते ही जलन कम होने लगती है। किन्तु कर्म सिद्धान्तानुसार कर्मो का फल 88,00,000 जन्मो के बाद भी मिलता है। उसका तुरन्त ही मिलना जरूरी नही है।

यदि केवल वर्तमान काल की क्रिया का ही फल मिला करता है तो क्या पूर्व-कृत पुरुषार्थ से उपार्जित कर्म-फल बेकार है ?

ससार के सभी महापुरुषो और धर्मो का कहना है कि अशुभ कर्मो का फल बुरा होता है। इस मान्यता के अनुसार वर्तमान मे खोटे धधे करने वालो को दु ख ही मिलना चाहिये। किन्तु अभी बुरा काम करने वाले बहुत से प्राणियो को धन और सुख मिल रहा है। ऐसा दीखता है कि वर्तमान क्रिया का फल वर्तमान मे ही मिलना जरूरी नही है। वह अठयासी लाख भव बाद भी मिल सकता है।

धन और सुख की प्राप्ति मे केवल वर्तमान पुरुषार्थ ही काफी नही है। इसके लिये पुण्य का उदय होना जरूरी है। पुण्य चाहे पूर्व-कृत पुरुषार्थ से सचित हो, चाहे वर्तमान परिश्रम से उपार्जित हो।

पुरुषार्थ तो मात्र क्रिया है। क्रिया के साथ पुण्योदय हो तो धन और भौतिक सुख मिलता है और पापोदय हो तो वही पुरुषार्थ धन-हानि और दु ख का कारण बन जाता है। व्यापार पुरुषार्थ है। व्यापार मे पदार्थ का भाव गिर कर व्यापारी को हानि हो सकती है, माल आग मे जल सकता है, चोरी

मे बह सकता है, उसे कीडे खा सकता है। चोरी, ठगी या धोखा भी हो सकता है।

यदि प्राणी के अन्तराय कर्म या अशुभ कर्म का उदय है तो उसे किसी भी पुरुषार्थ से धन और सुख मिलने वाला नही है। यदि शुभ कर्म का उदय है तो वर्तमान मे किसी भी पुरुषार्थ के नही बनने पर भी केवल पूर्व-कृत शुभ पुरुषार्थ से सचित पुण्य के उदय से धन और सुख की वर्षा भी हो सकती है। शालिभद्रजी के साथ ऐसा ही हुआ। सेठ सुदर्शन ने सूली से रक्षा के लिये कुछ भी नही किया, किन्तु देवो ने सूली का सिहासन बना दिया। भगवान पार्श्वनाथ की रक्षा भी केवल निमित्तो द्वारा हुई। प्रह्लाद की अग्नि से रक्षा हुई।

कभी-कभी वर्तमान काल के पुरुषार्थ के बिना और किसी भी सहायक निमित्त के बिना भी प्राणी के किसी पूर्व-सचित पुण्य से उसका काम बन जाता है, उसकी रक्षा हो जाती है। जैसे गोशालक की तेजोलेश्या से भगवान महावीर की रक्षा हुई। अर्जुनमाली के मुद्‌गर से सेठ सुदर्शन की रक्षा हुई। बेहोशी की दशा मे नदी मे बहाये गये भीम की सर्प-दशो द्वारा मृत्यु न होकर रक्षा होना पूर्व-सचित पुण्य का ही तो फल है।

यह केवल भ्रम है कि वर्तमान अशुभ खोटे धधो से अधिक धन और सुख मिलता है। शुभ कर्म के उदय मे साधारण शुभ पुरुषार्थ से ही धन और सुख मिल सकता है। खोटे धधो से आने वाला धन समय आने पर दु ख का ही कारण बनेगा।

जिस महान पुण्योदय से आपको मानव देह मिली है, अच्छा कुल, अच्छा धर्म, त्यागी धर्म-गुरु और प्राय सभी साधन मिले है उसी पुण्य से आपका जीवन-निर्वाह हो सकेगा—इस बात पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए, नीति-मार्ग पर चलते हुए, विचारो मे समता और आचरण मे समता रखते हुए, मानव-जीवन के मूल लक्ष्य, परमात्म-पद की प्राप्ति की ओर आगे बढिये।

12 अमृत-बिन्दु

यह विचार कि मै किसी प्राणी की या समाज की सेवा कर रहा हूँ—शायद हृदय के किसी कोने मे छिपे हुए अहकार ने भेजा है और यह विचार कि मै दूसरो के परिश्रम और कृपा से ही बना हूँ, मुझे उनकी सेवा द्वारा उनके ऋण से मुक्त बनना चाहिये—विनय के आगमन की सूचना है।

कषाय - मुक्ति एक विवेचन

भाग – 2

अन्तिम और अन्तरिम लक्ष्य

जीवन का अतिम लक्ष्य है–आत्म शुद्धि, आत्मा के सिद्ध स्वरूप की प्राप्ति और अन्तरिम लक्ष्य है–कषाय आदि अवगुणो की निवृत्ति।

हम अनादि अनत काल से विषय विकारो मे फसे हुए है और इतने मुग्ध हो चुके है कि हमे इनसे निवृत्त होने का विचार भी नही आता। यदि कभी किसी दुर्घटना या किसी के उपदेश से विरक्ति का क्षणिक विचार आता भी है, तो वह क्षण भर ठहर कर कपूर की भाँति उड जाता है। इसके दो कारण है–प्रथम, हमारे विचारो मे विषय विकारो मे सुख प्राप्ति का दिखाई देना। और दूसरा, इन भोगो मे लम्बा अनत काल का हमारा इन्हे भोगते रहने का अभ्यास।

इन गलत विचारो मे परिवर्तन लाने और सुधार करने के लिए प्रथम निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं–

(क) धार्मिक एव सत्साहित्य का अध्ययन, आध्यात्मिक पुस्तको का स्वाध्याय, सत्संगति, सत वाणी का श्रवण आदि।

(ख) अपने अवगुणो का अवलोकन, उनकी सूची बनाना, उन दुष्कर्मों के लिए पश्चात्ताप करना एवं दड प्रायश्चित लेना।

(ग) उन अवगुणो को छोडने के लिए कुछ उपायो का विचार करना सकल्प करना, उन सकल्पो को दिन रात अधिक से अधिक बार दोहराते रहना।

(घ) अपनी आत्मा को निर्देश देने के लिए चुने हुए सिद्धातो को सक्षिप्त वाक्य या सूत्र रूप मे लिख लेना, उनका जप करना एव उनके अर्थ पर विस्तारपूर्वक चितन करना।

(ड) इतिहास, साहित्य, अपने पडोसियो के एवं अपने जीवन मे आई हुई दुर्घटनाओ पर चितन करके उन विचारो एवं सिद्धातो पर अपनी श्रद्धा को दृढ करना जिससे वे चेतन मन से अवचेतन मन में उतर कर स्थायी भाव बना सके।

अवगुणो को छोडने के लिए दूसरा उपाय है—दीर्घ अभ्यास। अभ्यास का अर्थ है—जीवन मे घटने वाली घटनाओ मे उन सिद्धातो को लागू करना। जैसे क्रोध जीतने का अभ्यास करने वाला किसी घटना पर जो उसे बुरी लगे उस पर क्रोध नही करे और यह विचार करे—"यह कष्ट तो मेरे पूर्वकृत कर्मो का ही फल है। इस पर समता रखने से ही मेरा यह कर्म नष्ट होगा। यह दु ख तो मेरे कर्मरोग की दवा है, चिकित्सा है। इस दवा को समतापूर्वक पीना है। अपने मन को इन विचारो मे या अन्य विचारो मे लगाता हुआ क्रोध से बचने का उपाय करे। प्रत्येक क्रोध पैदा करने वाली घटना के समय समता रखने का अभ्यास करे। दीर्घकाल के अभ्यास से क्रोध पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

आजकल मानिसक तनाव को दूर करने एव जीवन के अतिम लक्ष्य निर्विकार दशा एव परमानद की प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की साधना एव ध्यान किये जाते है, जैसे एक बिदु या पदार्थ पर दृष्टि जमाकर त्राटक ध्यान द्वारा मनोविजय पाना। विपश्यान ध्यान, नासाग्र पर दृष्टि जमाना, श्वास या शरीर-तत्र-प्रेक्षा, शरीर के किसी शक्ति-केन्द्र को जागृत करना। ये सब प्रयास मन को वश मे करने के लिए किये जाते है। ये केवल साधन है—मन को वश मे करने के।

हमारे जीवन का लक्ष्य है—कषाय-मुक्त होना, जिसमे प्रथम स्थान है क्रोध का। क्रोध एक ऐसा दुर्गुण है जो बडे-बडे तपस्वियो और साधको को भी आसानी से नही छोडता। अत अपना समय अन्य साधनो की बजाय सीधा क्रोध की निवृत्ति की साधना मे लगाना ज्यादा उपादेय रहेगा। दूसरो के द्वारा दिये गये कष्ट को दु ख नही मानकर कर्म काटने की औषधि मानने की साधना से क्रोध निवृत्ति और समता की प्राप्ति हो सकेगी।

जब हम कष्ट मे समता रखकर उसे दवा मान ले और निमित्त बनने वाले को परम उपकारी, अपना हितैषी और क्रोध रोग काटने की दवा देने वाला चिकित्सक मान ले और 24 घटे इसका चितन-मनन-स्मरण करे, इसे क्षण भर भी नही भूले, तो क्या हमारा क्रोध समाप्त नही होगा ?

क्रोध निवृत्ति की साधना

जैनागमो मे चार प्रकार का क्रोध बताया गया है। प्रथम है अनन्तानुबधी क्रोध जो पत्थर की तेड के समान है। यह क्रोध की तीव्रतम दशा है, जो जीवन भर नही मिटती। इससे नरक गति की प्राप्ति होती है और मनुष्य कभी सुखी नही बनता।

दूसरा है अप्रत्याख्यानी क्रोध जो सूखे हुए तालाब मे बनी हुई दरार के समान है। यह भी क्रोध की तीव्र दशा है जो वर्ष भर नही मिटती। इससे प्राणी को तिर्यंच (पशु-पक्षी) की गति की प्राप्ति होती है। यह भी दु खदायी है।

तीसरा है प्रत्याख्यानी क्रोध। यह गाडी के जाने से रेत मे बनी लकीर के समान है और स्वय ही मिट जाती है। यह क्रोध की मद दशा है, जिससे प्राणी को मनुष्य गति की प्राप्ति होती है।

चौथा है सज्वलन क्रोध जो पानी मे बनी लकीर के समान है। यह क्रोध की मंदतम दशा है, जिसमे प्राणी का देवगति का बध होता है। क्रोध जितना ही कम होगा, आत्मा पर कर्मो का उतना ही कम बंध बनेगा और आत्मा के उत्थान की उतनी ही अधिक संभावना होगी।

अच्छा यह रहेगा कि हम सर्वप्रथम क्रोध-निवृत्ति की साधना से प्रारंभ करे। इससे हमारा सारा ध्यान एक ही दुर्गुण की निवृत्ति की ओर लगेगा जिससे सफलता जल्दी मिलेगी।

मनुष्य का एक प्रबल अवगुण है–क्रोध। इसके सबध मे कहा जाता है कि जिसने क्रोध को जीत लिया, उसने अपने जीवन की तीन चौथाई साधना पूर्ण करली। देखने मे भी आता है कि कुछ बडे-बडे विद्वान् पंडित तपस्वी, सत महात्मा भी समय पर इसके शिकार होने से नही बच पाते। क्रोध आने पर प्राणी अपना आपा भूल जाता है और क्रोध मे ऐसा भयंकर अनर्थ कर बैठता है कि जन्म भर उसके दु.खद परिणाम को भोगना पडता है। क्रोध अनेक शत्रुओ को पैदा कर देता है ओर प्राणी जीवन भर भय, चिता, सघर्ष और झगडो मे फसा रहता है।

क्रोध आने के कई कारण है। जब प्राणी की इच्छापूर्ति मे कोई बाधक बनता है तब बाधक पर क्रोध आता है। प्राणी की इच्छा होती है सुख भोगना, दु ख से भागना, किसी को मारना, किसी को तारना, आराम करना अपना काम करना, धन-सग्रह करना। इनमे बाधा देने वाले पर क्रोध आता है। यदि कोई व्यक्ति हमारा अपमान करता हे या हमे कडवी बात कहता है तब भी हमे क्रोध आ जाता है। अत हमे हमेशा सजग रहना चाहिए कि हम कोई ऐसा काम नही करे जिससे अनावश्यक रूप मे झगडा बढे।

क्रोध आने पर प्राणी साधारणतया तीन प्रकार के कार्य करता है। प्रथम–पदार्थो की तोड-फोड करता है। दूसरे–सामने वाले प्रतिपक्षी को गाली देना, उसे पीटना, धोखा देना, उसकी हत्या करना आदि मे लग सकता है। तीसरे–वह स्वय भूखा रहने, घर से भागने, अपने शरीर को कष्ट

पहुँचाने, या आत्म-हत्या करने के कार्य मे लग सकता है। ये सभी त्यागने योग्य है। हमे सजग रहकर इससे बचना चाहिए।

क्रोध से रोगोत्पत्ति, धन-हानि, मान-हानि एव अनेक प्रकार के सघर्ष एव दु ख हो जाते है। क्रोध करने वालो ने हमेशा दु ख ही उठाया है। जैसे–कौरव, कर्ण, रावण।

क्रोध निवृत्ति से स्वास्थ्य, धन, मान, सुख एव परमात्म-पद की प्राप्ति होती है। इसके उदाहरण है–मुनि गजसुकुमाल, मुनि-मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मुनि स्कदक और वे पॉच सौ नव दीक्षित नव-युवक सत जिन्हे पालक ने घाणी मे पिलवा दिया था। इन सतो की मृत्यु घटनाओ की कथा का श्रवण, अध्ययन, इसके समता-भाव का अनुमोदन, इनसे प्रमोद भावना का आना और इन्हे बार-बार भावपूर्वक भाववदन करना क्रोध का नाश करता है। इससे कर्मो की निर्जरा, आत्मा की शुद्धि और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

क्रोध के समय प्राणी उसे दु ख देने वाले व्यक्ति के कामो मे दोष ढूढने, उसके अपराधी होने के प्रमाण पाने, उसे दड देने, धोखा देने, हानि पहुँचाने, नीचा दिखाने और उससे बदला लेने की योजना बनाने आदि मे लग जाता है। प्राणी को सजग होकर इन बातो से बचना चाहिए।

क्रोध से बचने के लिए सर्वप्रथम कर्म सिद्धात का अध्ययन एव उसमे गहरी श्रद्धा बनाना आवश्यक है। उसे यह समझना एव मानना चाहिए कि ससार का कोई भी प्राणी निश्चय मे किसी दूसरे प्राणी को अर्थात् मुझे सुख या दु ख नही दे सकता। मुझे जो दु ख मिल रहा है वह मेरे ही किए हुए दुष्कर्मो का फल है। दूसरा प्राणी तो केवल निमित्त ही बन सकता है। मै मेरे दुष्कर्मो के उदय से आये हुए इस दु ख या कष्ट से बच नही सकता। अत मुझे पूर्ण समताभाव रखकर इस आये हुए कष्ट को कर्म-रोग के काटने की दवा समझकर समतापूर्वक पी लेना चाहिए। यह मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा हो रही है। मेरे अशुभ कर्मो की निर्जरा हो रही है। मेरे आत्मा की शुद्धि हो रही है। और सभव है मुझे मुक्ति की प्राप्ति भी हो जावे।

यह प्राणी जो मेरे इस कष्ट मे निमित्त बना है, जो मुझे शत्रु दिख रहा है, वह न तो मेरे लिए बुरा है और न मेरा शत्रु ही है। वह मेरा हितैषी और परम उपकारी है। मेरे कर्म-रोग की चिकित्सा के लिए डॉक्टर बनकर आया है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि खदक आदि ऐसा चितन करके क्रोध-निवृत्त हुए और वे ससार भ्रमण से मुक्त बने।

क्रोध दूर करने के कुछ साधारण उपाय भी हैं। जैसे–प्रतिकूल स्थि के समय उस स्थान से कुछ दूर चले जाना या जल पी लेना या कोई सुन रोचक पुस्तक या कहानी पढने मे लग जाना। मन को किसी भी दूस रोचक कार्य मे लगा देने से क्रोध वाली घटना भूली जा सकती है। क्रो से होने वाली हानि पर विचार किया जावे। क्रोध पर विजय से होने वा लाभ पर विचार किया जावे। क्रोध से दु ख और क्रोध निवृत्ति से सुख पा वाले लोगो के उदाहरण पर चितन मनन किया जावे। ऐसे अनेक उपाय है

अवगुण निवृत्ति की साधना के सबंध मे मनोविज्ञान का कहना है कि गलत और बुरे विचारो और सस्कारो को दूर करने के लिए सही और अच्छ विचारो और सस्कारो का बार-बार चितन-मनन कीजिए। किसी अच्छ विचार को दस-बीस मिनट तक बार-बार दोहराने से आपके मन मे उ विचार की तरगे पैदा होगी और वे बुरे विचारो की तरगो को तोड देगी इसमे समय लगेगा किन्तु सफलता अवश्य मिलेगी। साधको का कहना कि आप जो कुछ दोहराते है उस पर यदि आपको प्रारभ मे पूर्ण विश्वास नही भी हो तो भी आपका दोहराना और जप करना व्यर्थ नही जावेगा बार-बार दोहराने से वे विचार आपके मन मे स्थान बना लेगे, अवचेतन मन मे उतर जावेगे, स्थायी भाव का रूप ले लेगे, और आपके जीवन का आचरण बन जावेगे। कहा जाता है कि दस लाख बार दोहराया हुआ विचार जन्म जन्मान्तर मे भी साथ रहता है। अत आप जो विचार अपनाना चाहत है उसे जपिये, बार-बार दोहराइये, पट्टी या कागज पर लिखिये, कुछ दे तीव्र गति से जपिये, फिर मद गति से जपिये, उसके अर्थ पर भी चितन कीजिये और उसकी सत्यता पर अनेक दृष्टियो से चितन-मनन भी करके उसमे दृढ श्रद्धा बनाइये।

दु ख-चेतना-निवृत्ति और क्रोध-निवृत्ति के लिये चितन करिये– "दु ख मेरे पाप कर्मो का फल है।" दु ख मे समता रखते हुए सोचिये– "दु ख मेरे पाप कर्मो को काटने की दवा है और निमित्त मुझे पाप कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।"

आप उपर्युक्त सूत्रो को दिन रात मे बार-बार दोहराइये, इनके अर्थ पर चितन कीजिये। रात्रि के शात वातावरण मे सोते समय दस-बीस मिनट इनको दोहरावे, सबरे उठते ही काफी समय तक इनको दोहरावे। इन उपायो से किसी को पॉच-दस महीनो मे और किसी को दो-चार वर्षो मे क्रोध से मुक्ति और पूर्ण समता की प्राप्ति हो सकेगी। दिन रात के 24 घण्टे

मे केवल एक घटे ध्यान साधना करना और 23 घटे आर्त-रौद्र ध्यान करना और अवगुणो का अभ्यास करना कुछ-कुछ ऐसा ही लगता है जैसे 24 घटो मे एक रुपया कमाना और 23 रुपये खर्च करना। अत शीघ्र सफलता के लिये एक घटे के नियमित समय के एकावधान के अतिरिक्त जब-जब भी समय मिल सके, तब-तब दिन मे कई बार अपने लक्ष्य का चितन एव स्मरण करते रहना चाहिये। उठते-बैठते, सोते-जागते हर समय अपना लक्ष्य अपनी स्मृति मे रहना चाहिये, तभी सफलता मिलेगी।

ध्यान मे एक ही विषय पर एकावधानता का होना आवश्यक है किन्तु ध्यान के उसी विषय मे विषयातर होना ध्यान मे बाधक नही, किन्तु साधक है। जैसे क्रोध निवृत्ति के ध्यान मे–क्रोध क्या है ? उसके कितने भेद है ? उसके कारण क्या-क्या हो सकते है ? उसमे प्राणी क्या-क्या विचार करता है और क्या-क्या अनर्थकारी काम करता है ? उससे होने वाली हानि क्या है ? उसकी निवृत्ति से क्या-क्या लाभ होते है ? उनके उदाहरणो पर भी विचार किया जावे। क्रोध निवृत्ति के भिन्न-भिन्न क्या-क्या उपाय है ? उनका ध्यान, चितन-मनन भी आवश्यक, उपादेय और साधना मे साधक है। इसे विषय मे विषायन्तर होना कहा जा सकता है किन्तु यह कार्य मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मन की थकान को दूर करने वाला और उसे अधिक सक्रिय बनाने वाला है। इससे विचारो मे पूर्णता एव दृढता आती है। ऐसा ध्यान सहज-ध्यान या सहज-योग कहा जा सकता है।

क्रोध से बचने का साधारण उपाय–क्रोध आने की जहाँ घटना हो रही है, वहाँ से उठ कर दूसरी जगज चले जाना, ठडा पानी पी लेना, कोई कहानी पढने मे लग जाना या किसी दिलचस्पी वाले काम मे लग जाना।

क्रोध पर विजय पाने का दूसरा उपाय–इसके दो सूत्रो का दिन मे कई बार कुछ महीनो तक प्रति दिन जप करना अर्थात् उन्हे दोहराते रहना और उनके अर्थ का चितन करते रहना। वे दो सूत्र ये है–(क) दु ख मे समता रखूगा यह दु ख कर्म-रोग काटने की दवा है। (ख) दु ख मे निमित्त बनने वाला मुझे कर्म-रोग काटने की दवा देने वाला डॉक्टर है।

क्रोध जीतने का तीसरा उपाय है कि चार प्रकार के अभ्यास किये जावे। प्रथम अभ्यास है–भूतकाल की क्रोध की एक घटना को याद करके उसके लिये पश्चात्ताप किया जावे और कुछ दड प्रायश्चित लिया जावे। जैसे दो दिन मिठाई छोडना, नमक छोडना, कुछ दान देना, उपवास या एकत करना। इसके साथ ही कल्पना द्वारा उस घटना मे अपने आचरण

को समतामय बनाने का अभ्यास करना अर्थात् यह सोचना कि यह द
कष्ट, दु ख या सकट मेरे ही किसी पूर्वकृत प्रापकर्म का फल था। वह दु
कभी-न-कभी भोगना ही पडता। यह कष्ट मेरे किसी पूर्वकृत पापकर्म
काटने आया था। लेकिन मै समता नही रख सका। भविष्य मे कोई प्र
मुझे कितना ही दु ख देवे, मै पूर्ण समता रखूंगा। मुनि गजसुकुमालजी ने
दु ख को दवा माना और दु ख मे निमित्त बनने वाले को कर्म-रोग का
की दवा देने वाला डॉक्टर माना।

दूसरा अभ्यास–निकट भविष्य मे घटने वाली सम्भावित घटनाओं
सूची बनाइये और एक-एक घटना को याद करके कल्पना द्वारा प्रत्ये
घटना को अपने किसी पाप का फल मानकर उसमे पूर्ण समता रखने
संकल्प कीजिये।

तीसरा अभ्यास–वर्तमान मे होने वाली प्रत्येक घटना मे उपर्युक्त दो
सूत्रो का तीन-चार बार चितन करके अपने आचरण को पूर्ण समता
रखे। यदि कुछ कमी रह जावे तो उसके लिये पश्चात्ताप कीजिये और
प्रायश्चित भी लीजिये।

चौथा अभ्यास–जिन व्यक्तियो से आपकी थोडी भी नाराजगी
उनके नाम ले लेकर उनके पास सबेरे और रात्रि मे पॉच-दस मिनट
भावना का और शुभकामना का सदेश भेजिये–"मै आपका मित्र हूँ। आपका
भला चाहता हूँ। आपका भला हो, भला हो, भला हो।" आप इस सदेश को
भेजते समय आप अपने मन मे कल्पना कीजिये कि यह बात आप उनके
कान मे कह रहे है। सबेरे और रात्रि मे भेजा गया यह मौन सदेश, स
है, जादू का सा काम करे और आप दोनो मे मित्रता स्थापित हो जाय।
प्राणीमात्र के कल्याण की भावना बहुत उत्कट और उद्यतरूप धारण करले
तो इससे तीर्थकर नाम कर्म का उपार्जन भी हो सकता है।

साधना के लिए सर्व प्रथम एक दुर्गुण को छोडने की साधना प्रारम्भ
करना ठीक है। इसका कारण यह है कि मन की सारी शक्ति एक ही बात
पर केन्द्रित हो सकेगी। आप उठते बैठते, खाते-पीते, सोते-जागते, दिन भर
पचास बार दोहराइये "क्रोध छोडना है, इस पुनरावृत्ति से सजगता
जो सफलता की जननी है।

दुर्भावना-निवृत्ति

मनुष्य की दूसरी बडी कमजोरी है–दुर्भावना। हमारे मन मे कुछ
सस्कार जम गये है कि जब हम अन्य किसी प्राणी का पतन देखते है

सुनते है तो मन मे एक प्रकार की विचित्र सतुष्टि की हलकी-सी लहर पैदा हो जाती है मानो मुझे कुछ प्राप्ति हो गयी है। "मै उस व्यक्ति से कुछ ऊपर उठ गया हूँ। वह मेरे सामने सिर उठाने, बोलने लायक नही रहा। उसका यह पतन बुरा होते हुए भी मेरे लिए तो अच्छा ही है। मैने तो उसका पतन नही कराया। मै तो निर्दोष हूँ। किन्तु मेरे मन लायक बात हो गयी।" कभी-कभी इससे हमे विचित्र सुख जैसा कुछ अनुभव होने लगता है। यह भावना ऊपर से दुष्कर्म नही दिखते हुए भी गहराई मे भयकर भाव दुष्कर्म है। लोग चाहे इसे दुष्कर्म नही माने, किन्तु यह महान दुष्कर्म है और उस प्राणी के आध्यात्मिक विकास को रोक देता है।

जो अनुभवहीन है उनकी दुर्भावना प्रकट हो जाती है और जो इससे भी नीचे स्तर वाले लोग है, वे ऐसी घटनाओ पर अपनी प्रसन्नता को मिठाई बॉटकर भी प्रकट करते रहते है। दूसरो के सकट या पतन मे खुश होना केवल अपने लिए अनावश्यक भयकर अशुभ कर्मो का बध करना है। अत प्राणी को हमेशा दुर्भावना से बचना चाहिए और दूसरो के लिए शुभ भावना भाकर अपना आध्यात्मिक विकास करना चाहिए।

जो प्राणी दुर्भावना से भरा हुआ है उसके लिए विकास और साधना के सभी दरवाजे बद हो जाते है। वह किसी का कुछ भी बुरा नही करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की भॉति सातवी नरक के आयुष्य का बध कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक छोटा-सा चावल के दाने जितना मत्स्य होता है। वह बडे-बडे मत्स्य के भौह पर बैठा रहता है। बडा मत्स्य मुँह खोले हुए पडा रहता है। अनेक मछलियॉ जल प्रवाह के साथ उसके मुँह मे जाती है और सुरक्षित ही खेलती हुई उसके मुँह से बाहर निकल जाती है। वह चावल जितना छोटा तन्दुल मत्स्य सोचता है—"यदि मै इस बडे मत्स्य की जगह होता तो एक भी मछली को मुँह मे आने के बाद बाहर नही निकलने देता।" वह खाता तो एक भी मछली को नही है, किन्तु केवल दुर्भावना के कारण ही सातवी नरक जाता है।

दुर्भावना का दूसरा रूप है दूसरो को दु ख देने का विचार करना। ऐसा प्राणी केवल भाव-हिसा से ही महान भयकर नरक के आयुष्य का बध कर लेता है। दुर्भावना से बचने और भावना को शुभ एव शुद्ध बनाने के लिये बार-बार दोहराइये—

सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।

परिवार-मोह-ममता की निवृत्ति

प्राणी की तीसरी प्रबल कमजोरी है—परिवार की मोह-ममता। एक परिवार मे, सास-बहुओ में, देवरानी-जेठानी मे, ननद-भौजाई मे देवर-भौजाई मे तो भेदभाव और अलगाव का होना अस्वाभाविक नही भी हो सकता क्योकि वे अलग-अलग माताओ की सताने है किन्तु एक ही माता की सतानों मे, बहन-भाइयो मे, भाई-भाई में, पुत्र की शादी के बाद माता-पुत्र मे और पिता-पुत्र मे भी कभी-कभी भयंकर अलगाव और सघर्ष पैदा हो जाता है। फिर भी लोग परिवार के मोह मे फसकर आत्म-कल्याण और न्याय की बात पर विचार नही करते। इस सबध मे भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है।

प्रथम दृष्टिकोण है—आत्म-स्थिति का। इस दृष्टिकोण से सभी प्राणी अलग-अलग हैं। सबकी आत्माएँ, शरीर, विचार, स्वार्थ आदि अलग-अलग हैं।

दूसरा दृष्टिाकोण है—कर्म-फल-भोग का। एक ही परिवार मे एक हँसता है, दूसरा रोता है। एक भरपेट स्वादिष्ट पौष्टिक भोजन करता है, दूसरा भूखो मरता है। एक स्वस्थ है, दूसरा रोगो से पीडित पडा हुआ कराह रहा है। एक अमीर है, दूसरा गरीब है। एक स्वामी है, दूसरा सेवक है। एक पडित और बुद्धिमान है, दूसरा अशिक्षित और मूर्ख है। एक सुखी है, दूसरा दुःखी है। कोई किसी को अपना पुण्य, अपनी आयु, अपना सुख दे नहीं सकता और दूसरे का पाप, उसकी मौत, उसका दु ख ले नही सकता। फिर दोनो का एक ही परिवार मे होना या दो परिवारो मे होना समान-सा ही है। परिवार मे सब अलग-अलग है। कोई किसी का नही होता।

तीसरा दृष्टिकोण—पूर्व जन्मो के कर्म विपाको से, राग-द्वेष से जुड़ी हुई आत्माएँ पिता-पुत्र, पति-पत्नी आदि के भिन्न-भिन्न रूप धर कर परिवार मे आती है और परिवार वालो के कर्म-फल प्राप्ति मे सिर्फ निमित्त बनकर अपना पुराना कर्ज चुकाती हुई या दिया हुआ कर्ज वसूल करती हुई या बदला लेती या देती हुई नाटक के पात्रो की तरह अलग-अलग चली जाती हैं।

चौथा—प्राणी कर्म रूपी मदारी के हाथ मे बदर या रीछ की भाँति नाच दिखाता हुआ, अपना कर्म-फल भोगता हुआ, परिवार मे रहता हुआ भी एक अपेक्षा से सबसे अलग ही है।

पॉचवा—यह जीवन एक यात्रा है और सभी प्राणी यात्री से अधिक कुछ भी नही है। परिवार केवल यात्रियो का झुंड है। यात्रियो मे कोई किसी का "अपना" नही होता।

छठा—सभी प्राणी एक दूसरे के लिए निमित्त से अधिक कुछ नही है। निमित्त को "अपना" समझना और उस पर मोह करना भूल है।

सातवा—प्राणी ने मनुष्यो, देवो, तिर्यचो के अनेक परिवारो मे अनेक बार जन्म लिया है। वह किस परिवार को अपना परिवार माने ? वह उन्हे पहचान भी नही सकता।

आठवा—एक महिला पीहर को अपना परिवार माने या ससुराल को ? जिस महिला ने दो-तीन बार तलाक दिया है वह अपना परिवार किसे समझे। पीहर को या प्रथम ससुराल को या दूसरी ससुराल को या तीसरी ससुराल को ? एक मनुष्य के कई पत्नियाँ है। क्या आने वाले भविष्य के जन्म मे भी यह परिवार कायम रहेगा ? राजा सगर के साठ हजार पुत्र बताये गये है और कौरव सौ भाई थे। क्या भविष्य मे भी ये परिवार ऐसे ही परिवार बने रहे थे या सब अलग-अलग हो गये थे ?

नवा—मनुष्यो के कर्म, मन के विचार और भावनाएँ अलग-अलग होती है। वे मर कर अलग-अलग गतियो मे अलग-अलग परिवारो मे जाते है। अत परिवार किसी का स्थायी नही रहता, वे हमेशा बदलते रहते है।

दसवा—एक प्राणी की दसवी पीढी मे उसके सैकडो परिवार बन जाते है। वह किसे अपना परिवार माने ? किसमे जन्म ले ?

ग्यारहवा—यदि परिवार मे सब अपने ही अपने होते तो "अपनो" मे अलगाव, मन-मुटाव, शत्रुता और बदला लेने की भावना क्यो रहती है ? सुग्रीव-बालि, कर्ण-अर्जुन, कौरव-पाडव, रावण-विभीषण, उग्रसेन-कस, हिरणकश्यप-प्रह्लाद आदि इस बात के प्रमाण है कि परिवार मे शत्रु भी जन्म लेते है। परिवार के सभी सदस्य आपस मे "अपने" नही होते। ससार मे कोई किसी का "अपना" नही होता। प्राणी को अकेले से दुकेला तो उसके कर्म ही बनाते है।

बारहवा—प्राणी की सबसे बडी चाह है सुख की प्राप्ति। किन्तु वह भूलता है कि हमारे सुख मे निमित्त बनना भी परिवार के हाथ मे नही है। सुख-सुविधा की प्राप्ति होती है शुभ कर्मो से, पुण्योदय से। हमे सुख देना किसी अन्य प्राणी या हमारे परिवार के हाथ मे नही है। हमे पर-कृत या परिवार-कृत का फल नही मिल सकता। इस ज्ञान मे दृढ श्रद्धा का उत्पन्न होना ही परिवार-ममता-मोह को दूर करता है। याद रखिये—"पर-कृत या परिवार-कृत कर्म का फल हमे नही मिल सकता, परिवार बेचारा क्या करे ?"

तेरहवा–कुछ मनुष्य जन्म से ही विकलाग पैदा होते है। कु
अगहीन है, कोई अधा है, कोई लूला-लगडा है, कोई बहरा है, कोई गू
है, कोई जन्म से ही असाध्य भयंकर रोग से पीडित है, कोई अति क्रो
और दुष्ट स्वभाव वाला है, कोई बिलकुल ही मूर्ख और बुद्धिहीन है, कोई
बिलकुल ही पुण्यहीन है, उसके सुख के लिये बेचारा परिवार क्या करे?
परिवार हजार-हजार उपाय करके भी उसके हित मे कुछ भी नही क
सकता। अत परिवार-मोह-ममता हटाने के लिये स्वाध्याय का एक सू
है–"परिवार किसी को उसके पाप-कर्म फल-भोग से बचा नही सकता
परिवार बेचारा क्या करे ?"

"परिवार का मेला मानो, कठपुतली का खेला है।
अपने-अपने कर्म भोगता, जाता जीव अकेला है।"

किसी भी प्राणी को, एक भी प्राणी को उसके पाप-कर्म-फल-भोग से
तीर्थकर भी नही बचा सकते। अपने परम भक्त राजा श्रेणिक को भगवान
महावीर भी नरकगमन से बचा नही सके। परिवार बिचारा क्या करे ?

चेतावनी

यह निश्चित है कि परिवार मे भी कोई किसी को कुछ देता लेता न
है। किन्तु पूर्व जन्मो का जो लेना-देना बाकी है वह तो निमित्त बनक
लेना-देना ही पडेगा। इससे कोई भी प्राणी किसी हालत मे बच न
सकता। अत हमे परिवार मे अपने कर्तव्य का पालन समता भाव से, तटस्थ
भाव से, राग-द्वेष रहित भाव से करके ऋण मुक्त एव कर्म मुक्त बनना
चाहिये। जो प्राणी ममता-त्याग के बहाने अपने कर्तव्य से विमुख होता है
वह साधक नही बन सकता और अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त नही कर
सकता किन्तु वह अपने-आप को धोखा देता है। बडे से बडे त्यागी के लिए
भी समाज सेवा करना उसका कर्तव्य है, इसे बडा परिवार कहा जा सकता
है। वसुधा को ही अपना कुटुम्ब मानकर छ काया के जीवो पर दया करना
ही परमधर्म है।

दु.ख चेतना-निवृत्ति

क्रोध, दुर्भावना एव ममता की निवृत्ति के बाद प्राणी का चौथा अवगुण
है–दु ख चेतना। प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न हो जाने पर साधारण प्राणी का
मे, गरीबी मे, पदार्थो के अभाव में, इच्छापूर्ति नही होने पर, उसे दु ख मानकर
दु खी होता है, रोता है, चिल्लाता है, उससे भागने का प्रयास करता है

अनेक सघर्ष और अनर्थ करता है। ये सब दु ख से दु खी होने के विचार के कारण होते है। यदि प्राणी उसे दु ख नही मानकर उसे अपने कर्मो का फल माने, उसमे समभाव रखे, उसे कर्म-रोग काटने की दवा माने और उसे हॅसते-हॅसते पी ले अर्थात् सहन करले, उससे कुछ शिक्षा ग्रहण करे तो वह दु ख भूल मे पड जाता है। विचार धारा दूसरी ओर चली जाती है और दु ख दु ख नहीं रहता, वह समता के कारण दु ख और कर्म काटने की दवा बन जाता है।

दु ख पदार्थ या परिस्थिति मे नही रहता, वह विचारो के कारण पैदा होता है, जिस भूख और कष्ट मे साधारण लोग दु ख मानते है उसी भूख और कष्ट मे तपस्वी सुख मानते है। भूख मे जो भोजन मीठा लगता है वही मीठा भोजन पेट अधिक भर जाने पर दु खद लगने लगता है। शत्रु द्वारा जिस गाली को सुनकर प्राणी को दु ख होता है और क्रोध आता है, ससुराल मे गीतो मे उसी गाली को सुनकर उसे प्रसन्नता होती है। यह सब विचारो से होता है। यदि प्राणी अपनी विरक्त विचार धारा को दृढ करे और कष्ट को सहर्ष सहने का अभ्यास करता रहे तो उसे दु ख चेतना से बचने के लिए कोई कठिनाई नही होगी। वह अनेक प्रकार के कष्टो और कर्म बधनो से बच जावेगा।

चक्रवर्ती की पटरानी श्रीदेवी पति-वियोग मे छ महीने विलाप करती है और वह छठे नरक मे जाती है। अत दु ख चेतना से बचना चाहिये।

दु ख चेतना मे प्राणी अनेक प्रकार के सकल्प-विकल्प करता है, आरम्भ-समारम्भ की योजनाएँ बनाता है, शत्रु से बदला लेने के भावो मे अशुभ विचार धारा मे बहता चला जाता है और विचारो के प्रवाह मे ही भयकर कर्मो के बधन करके नरक मे चला जाता है। दु ख चेतना से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। यदि किसी भी परिस्थिति मे प्राणी दु ख को दु ख नही माने, दु खी नही होवे, उसे कर्मो का फल माने और समता रखे तो वह मोक्ष प्राप्ति के मार्ग का यात्री बन जाता है। उसके लिये मोक्ष का मार्ग सरल और सुगम बन जाता है।

सुख चेतना-निवृत्ति

अनुकूल परिस्थिति मे, भौतिक सुख भोगो मे, सुख अनुभव करना सुख चेतना है। राज्य सत्ता पाने पर, धन-सम्पत्ति एव भोगो की प्राप्ति होने पर, मद्य-मासादि मे, जुआ व्यभिचार आदि मे, प्राणी सुख अनुभव करता है। मासाहारी पशुओ का शिकार करने मे, अडे आदि के भक्षण मे सुख मानता है। यह सुख चेतना है। कुछ व्यक्ति दूसरो को दु ख देने मे, लडाने-भिडाने

मे सुख मानते है। कुछ लोग दूसरो के पतन और सकट मे हलकी-
की अनुभूति करते है। दुर्भावना वाले प्राणी दूसरो के अनिष्ट की
करते हुए और उन्हे अनिष्ट पहुँचाने का कार्य करते हुए भी दूस
शुभयोग की स्थिति मे उनका तो कुछ भी बुरा नही कर सकते, किन्तु
लिए अशुभ कर्मो के बध करके अपना ही बुरा करते है। सुख-
अनुभूति का परिणाम होता है–दु ख-प्राप्ति। सुख मे प्रारम्भ से अन्त
दु ख ही दु.ख भरा है।

काम भोगो मे सुख नही, किन्तु महान दु ख है। सुख चेतना
कारण काम भोगो मे अधिक फसे हुए प्राणी विजय सेठ और विजया
के अखड शील पालन की कथा का और राज्य प्राप्ति के लोभ और
के भय की भी परवाह नही करके अपने शील की रक्षा करने वाले
सुदर्शन की शील रक्षा की कथा का बार-बार अध्ययन, कीर्तन,
अनुमोदन एवं ध्यान करके इन कार्यो से उत्पन्न होने वाली विचार त
ध्वनि तरगो और भाव तरगो से इस भयकर अवगुण से मुक्ति पा सकते
काम की उत्पत्ति केवल शृगार या एकात से नही होती। इसका वास्त
जनक है भोगो की कल्पना और इसका नाश करने वाला है शील रक्षण
कथाओ मे प्रमोद भावना का आना, उससे अपने अदर शील रक्षण की
का पैदा करना एव उन्हे दृढ करना। इनके उदाहरण है–कुणाल,
दुर्गादास, साध्वी राजमती, सती मदनरेखा आदि।

मनुष्य सुख खोजता है प्राय परिवार मे, दुर्भावना मे, अपने शरीर
काम वासना मे, सग्रह मे और विकथा मे किन्तु इनमे सुख नही मिलता

सुख चेतना शायद दु ख चेतना से भी अधिक दु खदायी हो जा
है। अनुकूल परिस्थिति, धन-सम्पत्ति, शक्ति व सत्ता पाकर प्राणी रावण
कौरवो की भाँति अनीति पर उतर जाता है और लोगो के दु ख का कार
बन जाता है। अपने लिए सुख प्राप्ति की कामना से दूसरो के लि
विनाशकारी योजनाएँ बनाकर वह स्वय ही दु खो मे फस जाता है।

सुख बाहरी पदार्थो मे है ही नही। यह तो सुखाभास है। भर्तृहरि
ने कहा है–"भोगे रोगभय" भोगो मे रोग भरे पडे है। धन-सत्ता के नशे
प्राणी कर्तव्या-कर्तव्य का भान भूल जाता है। दुर्भावना मे सुखानुभूति क
वाले केवल पाप और भविष्य मे दु ख के भागी बनते है। सुख का
भयकर विष के समान है जो प्राणी को भयकर वेदना पहुँचाता है और अ
जन्मो मे रुलाता है।

सुख वास्तव मे है त्याग मे, प्राप्त पदार्थो और आये हुए सुखो को दूसरो को देने मे। अपना तो अपनी आत्मा के सिवाय कुछ भी नही है। ससार के सभी पदार्थ पराये है, दूसरो की धरोहर है। इस धरोहर को सभालने मे नही, किन्तु लौटाने मे ही सच्ची स्वतत्रता और सुख है। इसे रखना तो परतत्रता है, चौकीदारी है, बधन है, भय और चिता को गले लगाना है। सच्चा सुखी वही है जो दुखियो के दुख को दूर करे और सुखियो के सुख को देखकर प्रसन्नता अनुभव करे। "सच्चा सुख है इच्छा-निवृत्ति मे, परिग्रह त्याग मे, धरोहर लौटाने मे।"

प्राणी जो भी काम करता है वह चाहे कुछ भी हो, उसका अन्तिम मूल लक्ष्य होता है–भविष्य मे सुख प्राप्ति की आशा। और सुख प्राप्ति का माध्यम है शरीर, इन्द्रियॉ और मन। अत सुख चेतना-निवृत्ति के लिये आवश्यक है देह की आसक्ति से निवृत्ति।

देहासक्ति छोडने का प्रथम सूत्र है–

यह शरीर मेरा नही है, यह नाशवान है
इसके जाने से मेरा कुछ भी नही जाता।

दूसरा सूत्र है–

खणमेत सोक्खा, बहुकाल दुक्खा।

क्षणभर का सुख बहुत समय तक दुख देता है।

कभी-कभी इस शरीर मे इतने भयकर वेदना वाले रोग एक ही साथ पैदा हो जाते है कि प्राणी का सुख से जीना कठिन हो जाता है। कैसर, ऑतडियो मे घाव, पैर की हड्डी का टूट जाना आदि प्राणी को सुख से नही जीने देते। "यह शरीर दुखो की खान है।" शरीर की आसक्ति छूटने से सुख-चेतना छूट सकती है।

इच्छा-निवृत्ति

इच्छा भी मानव की बडी कमजोरी है। इच्छा ही ससार है, यही बधन है। यही सब योजनाओ, दुर्भावनाओ, अवगुणो, दुखो, कष्टो, सघर्षो एव युद्धो का कारण है। यदि इच्छा समाप्त हो जाती है तो उस प्राणी के लिए ससार भी नही रहता, विषय वासनाऍ नही रहती, वह पूर्ण पुरुष बन जाता है।

इच्छा साधारणतया पॉच प्रकार की होती है–1 दुखो से भागने की, 2 सुख भोगने की, 3 शत्रुओ को मारने पीटने की, 4 अपने प्रियजनो को तारने, सुधारने एव सुख देने की और 5 धर्म पालन द्वारा अपना भविष्य सुधारने की।

यह ध्यान रखने की बात है कि इच्छाएँ आकाश के समान अन
सभी इच्छाएँ कभी किसी की भी पूर्ण नही हुई। एक इच्छा के पूर्ण हो
दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। अत इच्छापूर्ति से ही सुख प्राप्ति
कामना करने वाला कभी भी सतुष्ट और सुखी नही बन सकता।

इच्छा निवृत्ति सबसे कठिन कार्य है। इसकी निवृत्ति का सरल
मुख्य उपाय है--कर्म सिद्धात का गहरा अध्ययन और बार-बार चिंतन-म
द्वारा उस पर अपनी श्रद्धा का दृढ बनना। जब तक अन्तराय कर्म न
है तब तक कितनी ही तीव्र इच्छा करो, कितना ही भारी पुरुषार्थ करो, इ
पूर्ण हो नही सकती, संसार की कोई भी दृश्य या अदृश्य शक्ति इच्छा
मे सहायक बन नही सकती। जब अन्तराय कर्म समाप्त होगा, शुभ कर्म
उदय होगा, तब भोग, उपभोग, सभी सुखद पदार्थ और अनुकूल परिस्थि
आपकी सेवा मे उपस्थित हो जावेगी। कभी-कभी तो विना इच्छा और बि
पुरुषार्थ के भी पूर्वकृत निकाचित और महाशुभ कर्मो के उदय से सभी कु
प्राप्त हो जाता है। भगवान महावीर पर गोशालक ने तेजोलेश्या छोडी। उ
समय महावीर स्वामी ने अपनी रक्षा के लिए क्या कोई इच्छा और
पुरुषार्थ किया था ? उनकी रक्षा उनके निकाचित आयु कर्म से स्वत
हुई। शुद्धात्मा सेठ सुदर्शन की अर्जुनमाली के रक्षा कैसे हुई ? शील मे
सेठ सुदर्शन के लिए शूली का सिहासन कैसे वना ? क्या उन्होने
इच्छा की थी या कोई पुरुषार्थ किया था ? वे सिर्फ अपने शुद्ध ज्ञान नि
मे, आत्म एव परमात्म ध्यान मे लीन रहे। दुर्योधन द्वारा जहर खिला
बेहोशी की दशा मे नदी मे बहाया गया भीम उस दशा मे अपनी रक्षा
पुरुषार्थ कर ही क्या सकता था ? किन्तु उसके पूर्वकृत शुभ आयु-कर्म
उसकी रक्षा की। वर्तमान मे क्यूवा के राष्ट्रपति क्रास्त्रो की हत्या के लि
बडी शक्तियो द्वारा आठ बार प्रयास किये गये किन्तु उसके शुभ दी
आयु-कर्म ने उसे उन स्थानो पर जाने ही नही दिया जहाँ पर उसकी ह
की जानी थी। शालिभद्रजी ने वर्तमान मे कोई इच्छा या कोई पुरुषार्थ न
किया किन्तु उनके पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ ने, उनके तीव्र पुण्योदय
महान सम्पत्ति का स्वामी वना दिया। करोडपति की गोद जाने वाला
लाटरी का प्रथम बडा इनाम पाने वाला कौनसा वडा पुरुषार्थ करता है
सब कुछ पूर्वकृत अदृष्ट शुभ पुरुषार्थ का ही फल है। अतराय कर्म के न
कुछ भी नही हो सकता। भौतिक इच्छाएँ करना, केवल नवीन कर्मों के
का ही कारण वनती है। भौतिक सुख सम्पत्ति की प्राप्ति शुभकर्म एव पु

करने से ही होती है, केवल इच्छा करने से और अशुभ खोटे पुरुषार्थ से नही होती।

कुछ लोग अपनी इच्छापूर्ति के लिए अपनी प्रखर बुद्धि और अपने बल का प्रयोग करते है। इस सबध मे तीन बाते याद रखने योग्य है–1 बुद्धिर्यस्य बल तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बल, 2 बुद्धि कर्मानुसारिणी, 3 विनाशकाले विपरीत बुद्धि अर्थात् 1 जिसके पास बुद्धि है उसके पास बल है, बुद्धिहीन के पास बल कहाँ है ? 2 बुद्धि प्राणी के पूर्वकृत कर्मो का अनुसरण करती है अर्थात् शुभ कर्मोदय के समय अच्छी और सहायक बन जाती है और अशुभ कर्मोदय के समय विपरीत और नाशक बन जाती है। यदि किसी को काश्मीर की ओर जाना हो तो उसके अशुभ कर्मोदय के समय उसकी बुद्धि मे कोलम्बो का मार्ग ही काश्मीर पहुँचाने वाला दिखने लगता है और उसका यात्रा का पुरुषार्थ उस गतव्य स्थान के पास पहुँचाने के बजाय उसे दूर भेज देता है। उसकी सारी यात्रा, सारा पुरुषार्थ अधिक हानिकारक बन जाता है, 3 विनाश के समय बुद्धि विपरीत बनकर प्राणी का नाश करवा देती है। कौरव, यादव, रावण आदि इसके अनेक उदाहरण है।

केवल बुद्धि और बल से ही मनोरथ पूर्ण हो जाते तो आज बहुत से व्यक्ति जो दु खी है, दु खी नही रहते। बुद्धि और बल से ही इच्छा की पूर्ति नही होती।

इच्छा-निवृत्ति के लिये जपने का सूत्र है–

"यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुख-सम्पत्ति की वर्षा हो जाती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा या पुरुषार्थ करने पर भी कुछ नही मिलता। अत इच्छा-निरोध तप करके कर्मक्षय क्यो नही करते ?"

निष्काम भावना से, स्वार्थ रहित मन से, दूसरो का भला करने, उनकी शुद्ध सेवा करने, उनका आत्महित करने मे निमित्त बनने की इच्छा रखना एव प्रयास करना, इच्छा दिखते हुए भी इच्छा नही है। ये कर्तव्य पालन है जिसका उपदेश ससार के प्राय सभी धर्म गुरुओ ने दिया है और अपनी मर्यादा के अनुसार उसका पालन भी किया है।

अहंकार-निवृत्ति

अनेक आन्तरिक शत्रुओ को जीतने वाले बडे-बडे उपदेशक और धन और स्त्री-परिवार आदि के महान त्यागी तपस्वी सत महात्मा भी कभी-कभी

अहकार के वशीभूत हो जाते है। अहंकार मे यह विशेषता है कि इ
शिकार बनने वाले प्राणी शायद यह समझ भी नही पाते होगे कि अह
उन पर सवार हो चुका है और वे पतन के अंधकूप मे गिरते जा रहे

शायद मनुष्य को स्वय को बहुत समझदार और बडा मानने मे
स्वय की प्रशंसा सुनने में बडा आनन्द आता होगा। यदि ऐसा है तो
उस कौवे की उपमा दी जा सकती है जिसने लोमडी से अपने मीठे
सुरीले स्वर और गाने की प्रशंसा सुनकर अपनी मूर्खता से लोमडी
अपना मधुर गाना सुनाने के लिये अपना मुँह खोला और अपने मुँह की
खोयी। अभिमानी पुरुष आर्थिक और आध्यात्मिक दोनो दृष्टियो से
जाता है। वह प्रशसा सुनने मे शुरू से अन्त तक घाटे मे रहता है। बुद्धि
लोग अपनी प्रशंसा सुनते ही नही। जहाँ प्रशंसा सुनी, वही ठगाई हुई

प्राणी को अपने सौन्दर्य, धन, शरीर-बल, परिवार-बल, सत्ता-
विद्या, भाषण कला, लेखन कला, दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि
प्राय अहकार हो जाया करता है। किन्तु अशुभ पाप-कर्म के उदय होने
कोई भी धन या बुद्धि काम नही देती। सब साधक भी बाधक एव
बन जाते है।

कुछ लोगों को स्वय के बहुत समझदार, सही ओर धर्मात्मा होने
अहकार हुआ करता है। किन्तु सभव है उनकी मूल समझ मे ही भूल
या अहकार ने उनकी समझ को ही नासमझ मे बदल दिया हो। यह
निर्विवाद है कि उनमे अहकार का महा भयकर अवगुण आ चुका है
सभी बुराइयो और अनर्थो का मूल है।

अहंकार एक भयकर अधकूप है जिसमे अधकार ही अधकार छा
हुआ है। वहाँ प्राणी को कुछ भी अच्छा नही दिखाई देता। यह एक भयं
तूफान है, आंधी है जो सब गुणो को उडाकर दूर फेक देती है। अभिमा
वह मदिरा है जो बिना कुछ पीये ही प्राणी को मदाध ओर बेभान बना दे
है। बुद्धिमान वही है जो इससे बचता रहता है।

छोटी-छोटी बातो को अपनी इज्जत का प्रश्न बना कर नादान
अनुभवहीन मनुष्य शाहबलूत के पेड की भाँति अकडे रहते है और बल
तूफान के आने पर जड से उखाड कर फंक दिये जाते ह। किसी ने
है—

बडा कौन है, बडा कौन है, मुझे बताओ बडा कौन है।
बडा वही है, बडा वही है, जो झुकता है बडा वही है।।

छोटी-छोटी बातो पर कभी नही अकडना चाहिए।

अहकार सब अवगुणो एव बुराइयो का मूल है। अभिमानी व्यक्ति को लोग अपने मन मे महामूर्ख समझते है। लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये चाहे उसके सामने उसकी बडाई करते हो किन्तु वास्तव मे उससे घृणा करते है। अहकार नरक का मार्ग है। अहकार से दान, शील, तप, धार्मिक आचरण आदि सभी अच्छी क्रियाओ का फल मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से प्राय निरर्थक-सा रहता है।

अहकार से बचने का प्रथम उपाय–यह सूत्र जपना कि "किसी प्राणी को उसके पाप कर्म फल भोग से मै या तीर्थकर भी नही बचा सकते और मेरे भयकर निकाचित कर्मो की रेखाओ को मै नही बदल सकता, फिर अहकार किस बात का करू ?"

दूसरा उपाय है–अपने अवगुणो को याद करके उनके लिये पश्चात्ताप करना एव उन्हे दूर करने की साधना करना।

तीसरा उपाय है–इस बात का चितन करना कि अहकारी प्राय कौवे की भॉति प्रशसा करने वाली लोमडी से ठगा जाता है या अकडने वाले पेड की भॉति आधी से उखाड कर फेक दिया जाता है।

सग्रह-निवृत्ति

भगवान महावीर का यह स्पष्ट कथन है कि आत्मा के सिवाय कोई भी अन्य पदार्थ अपना नही है। धन-सम्पत्ति, परिवार और यह शरीर भी अपना नही है। ये सब मृत्यु के आते ही पीछे छूट जाते है। ये सब पर-पदार्थ है। इनमे आसक्ति रखने वाला, इनका सग्रह करने वाला, इनका लोभ करने वाला, इन परिग्रहो को जमा करने वाला, ससार से ही बधा रहेगा, ससार मे ही चक्कर काटता रहेगा। ससार से छुटकारा और मोक्ष की प्राप्ति तभी सभव है जबकि प्राणी धीरे-धीरे या तुरन्त ही इनका मोह छोडकर पूर्ण अपरिग्रही, पूर्ण त्यागी बने।

साधारण व्यक्ति के लिए त्याग का क्रम कुछ-कुछ इस प्रकार हो सकता है–प्रथम सुख-दु ख-चेतना-निवृत्ति की साधना, फिर धन सम्पत्ति

की निवृत्ति का कार्य दान आदि द्वारा, फिर परिवार की मोह-मम
विरक्ति और अत मे शरीर की आसक्ति से मुक्ति। महापुरुष तो इन र
एक झटके मे ही छोड देते है। जैसे शालीभद्रजी ने और धन्नजी ने
था।

भौतिक सुख एवं धन-सम्पत्ति की प्राप्ति शुभ कर्मो के उदय के
है। वे प्राणी की इच्छा या केवल पुरुषार्थ के अधीन नही है। अशुभ
के उदय होते ही चोर, डाकू, आग, बाढ, रोग, व्यापार मे हानि या
किसी मार्ग से धन-सम्पत्ति चली ही जाती है। धन परायी धरोहर है
हो सके इसका सदुपयोग दान एवं धर्म कार्यो मे किया जावे। अपना
भी निश्चित समय पर छूटने वाला है। इसकी भी आसक्ति छोडकर इ
सदुपयोग निष्काम पर-सेवा मे किया जावे। दुखियो के दु ख को यथा
यथामर्यादा अपने त्याग एव सेवा द्वारा दूर करना और सुखियो को देख
प्रसन्न होना जीवन लक्ष्य की प्राप्ति मे बहुत आवश्यक है।

त्याग मे भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि किसी पदार्थ या अव
का केवल त्याग कर देने से आसक्ति नही छूटती। आसक्ति छूटती है
अवगुण की हेयता और उसके प्रतिपक्षी भाव की उपादेयता का दिन
बार चितन, स्मरण करते रहने से। उस अवगुण के जाते ही उसका प्रति
गुण स्वत प्रकट हो जावेगा क्योकि आत्मा स्वय ही अनत गुणो का भ
है।

सग्रह करना परिग्रह है और पाप है। दान देना दान, शील, त
भावना मे प्रथम धर्म बताया गया है।

लोग तो यहाँ तक कहते है कि दान से विधाता के लेख (कर्मो की
रेखा) भी झूठे पड जाते है (बदल जाती है)।

त्याग से, दान देने से अनेक गुणो की प्राप्ति होती है। इसलिये स
मत करो, दान दो, दान दो, दान दो। यदि आपका पुण्योदय है तो दान दे
से धन की कमी नही होगी और एक के बदले दस या सो मिलेगे। य
पाप का उदय है तो धन चाहे जमीन मे गाड दीजिये वह कोयला
जावेगा। पापोदय के समय धन को चोर, डाकू, ठग ले जाते है,
मे, बाढ मे चला जाता है, उसे बीमारी खा जाती है। वह ठहर नही
इसलिये दान दो, दान दो, अधिक से अधिक दान दो।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद सर्प, भूत, प्रेत बनकर वही मडराते रहोगे, दु ख पावोगे और दुर्गति मे जावोगे। ध्यान का सूत्र है–"पुण्य का उदय हो तो चाहे जितना दान दो, धन की कमी नही होगी और पाप का उदय है तो धन किसी भी तरह ठहरने वाला नही है।"

विकथा-निवृत्ति

विकथा का अर्थ है–व्यर्थ की कथा। दूसरो के बातो की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषो का कथन, श्रवण एव चितन विकथा है। दुनिया की स्वार्थ-प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपात पूर्ण, गन्दी राजनीति आदि की बातो के समाचार, लेख, भाषण, साहित्य, आलोचना आदि को पढना, सुनना, उनकी राग द्वेषात्मक बातो मे पडना विकथा है। यह अनर्थ दड है, प्रमाद है, भावहिसा है, राग-द्वेष है।

जैन आगमो मे विकथा के चार भेद बताये गये है–स्त्री-पुरुष कथा, देशकथा, राजकथा, भोजन कथा। बडे-बडे समझदार पडित, विद्वान, धर्मात्मा, नेता और साधक लोग भी आजकल विकथा मे पडना अपनी शान समझने लगे है। यह वर्तमान सभ्यता का एक चिह्न बनने लगा है किन्तु इसमे 80 प्रतिशत लोगो का 80 प्रतिशत समय व्यर्थ जाता है। एक बात और भी है कि हम दूसरो के भीतरी भावो को जान नही सकते। इसलिये एक पक्ष को भला और दूसरे पक्ष को बुरा समझने का हमारे पास कोई आधार भी नही है। इस दृष्टि से विकथा से असत्याचरण का बडा दोष भी हमे लग जाता है।

घरो मे बैठी हुई महिलाएँ, मर्दानी बैठक मे बैठी हुई मित्र-मडली, राजनीतिक गदी चर्चा मे रसपान करने वाली जनता और कभी-कभी धर्मस्थान मे बैठे हुए भक्त लोग भी विकथा के सागर मे नहाने लगते है।

विकथा से बचने के लिए पॉच निषेझात्मक और पॉच विधेयात्मक उपाय है। जहॉ दूसरो की निन्दा होती है, झूठी प्रशसा होती है व्यर्थ की, राग-द्वेष बढाने वाली बाते होती हो वहॉ पर कुछ भी

मत कहो   वहॉ से उठकर चले जाओ
मत सुनो   अपने काम मे लग जाओ

मत देखो — परमात्मा का भजन करो
मत सोचो — स्वाध्याय सूत्रो का ध्यान करो
मत बैठो — पर-सेवा मे लगो

अपने बचत के समय को निष्काम निस्वार्थ, बिना कुछ वेतन लि दूसरो की शुभ हितकारी सेवा मे लगाओ। (क) रोगियो की मुफ्त मे करो, (ख) कलाकार हो तो मुफ्त में दूसरो को कला का ज्ञान (ग) विद्वान हो तो किसी परोपकारी सस्था मे मुफ्त मे काम (घ) साधारण मनुष्य भी बीमारो, गरीबो, दु खियो के घर जाकर उनके पोछ सकता है या (ड) छोटे-छोटे बच्चो को मुफ्त मे पढाओ।

विकथा से अनेक अवगुण आते है और विकथा से बचने वाल प्रतिशत राग-द्वेष से बच जाता है। विकथा से बचना मोक्ष मार्ग पर चलन

आत्म-ध्यान

विकथा एव अनेक प्रकार के विकारो से बचने के लिये ज्ञान एवं आत्म-ध्यान सबसे सुन्दर उपाय है। आत्म-ध्यान मे निम्नलिखित की साधना की जाती है—1 शरीर अलग है और मै (आत्मा) अलग 2 यह शरीर मेरा नही है। 3 यह शरीर मै नही हूँ इसमे जो चेतन है मै (आत्मा) हूँ। आत्म-ध्यान के बाबत विशेष बाते "ध्यान एक अनुशीलन मे दी गई है जो अ भा साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर से प्रकाशित हो चुकी

साधना का एक साधन

कषाय-निवृत्ति की साधना के लिये नीचे दिये गये शब्द-चित्र बार-बार देखिये और लिखिये जिससे इस पुस्तक मे दी गई साधना की बातें हर समय ऑखो के सामने झलकती रहे। ऑखे शायद मन की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है। यदि ऑखे इस शब्द चित्र को देखती रहेगी तो मन मे इतनी शक्ति नही है कि वह दूसरी ओर भाग जावे।

क्रोध	दु.ख-चेतना	अह
दुर्भावना	सुख-चेतना	राग्रह
परिवार मोह	इच्छा	विकथा

साधना का सुगम मार्ग

हमारा लक्ष्य है निर्विकार दशा की प्राप्ति। इसके लिये क्या यह ज्यादा हितकारी नही रहेगा कि अन्य दूसरे प्रकार के साधना और ध्यान के मार्गो मे अपना समय नही लगा कर हम अपनी साधना क्रोध-निवृत्ति या दुर्भावना-निवृत्ति से ही प्रारभ करे ? इधर-उधर भटकने से क्या लाभ ?

अवगुण-निवृत्ति की साधना मे दो लाभ है। प्रथम–इससे सभी मानसिक तनाव आदि दूर होगे और मन पर पूर्ण विजय प्राप्त होगी। दूसरा–इससे हमारे सचित कर्मो की महान निर्जरा होगी।

ध्यान के लिए सात बातो पर ध्यान देना आवश्यक है। 1 ध्यान का सूत्र, 2 शात एकात स्थान, 3 सुखासन, 4 निर्धारित शात समय, 5 एकाग्रता, 6 पुनरावृत्ति और 7 अभ्यास। इसमे अतिम दो बातो पर विशेष ध्यान दिया जावे। सूत्र को दिन रात मे कई बार दोहरावे। सोते-जागते, उठते-बैठते, बस मे यात्रा करते समय भी, दुकान मे काम करते समय भी, और रात्रि मे बिस्तर पर लेटे हुए भी स्वाध्याय या ध्यान के सूत्र को दोहराइये। पुनरावृत्ति यानी दोहराना साधना का महत्त्वपूर्ण अग है।

साधना मे अभ्यास का भी बहुत महत्त्व है। इस पुस्तक के प्रारभ मे अभ्यास के कुछ भेद बताये गये है। उनके अलावा किसी गुण को जीवन मे उतारने के अन्य तरीके भी हो सकते है। गुणो को अपने आचरण का अग बनाना ही साधना का चरम लक्ष्य है।

आत्मा की निर्विकार दशा की प्राप्ति के लिये आचरण शुद्धि की आवश्यकता है और आचरण की शुद्धि तभी सभव है जबकि विचार शुद्ध हो सके। विचार-शुद्धि का उपाय है दिन रात मे कई बार समता या स्वाध्याय के सूत्रो को दोहराते रहना, उनकी पुनरावृत्ति करते रहना। और आचरण-शुद्धि का उपाय है–उन सूत्रो का पालन करना, उन्हे आचरण मे उतारना। किन्तु यदि मोहनीय कर्म की प्रबलता से इस जन्म मे यदि वे आचरण का अग नही बन सके तो भी उनकी साधना मे लगे रहिये। उनके चितन-मनन और स्वाध्याय से बने हुए सस्कार व्यर्थ नही जावेगे। वे अगले किसी जन्म मे साधक की आचरण-शुद्धि मे सहायक बनेगे। कोई भी क्रिया व्यर्थ नही जाती। फिर इन सूत्रो का ध्यान या स्वाध्याय तो आभ्यतर तप है। वह व्यर्थ कैसे जावेगा ?

हृदय परिवर्तन की कला

अपनी सतान या किसी सबधी या मित्र का हृदय-परिवर्तन (सुधार) करने हेतु इन बातो का पालन कीजिये। 1 उसे सुधारने का विचार कीजिये। 2 स्वय को प्रथम सुधारिये। एक शराबी किसी दूसरे को उपदेश देकर शराब नही छुडा सकता। 3 जिसे सुधारना हो उसकी यथाशक्ति यथा मर्यादा सहायता कीजिए। उसे अपनी तरफ आकर्षित कीजिये। 4 दूसरो के सामने उसकी बुराई या निन्दा मत कीजिये। 5 उसस घृणा या द्वेष मत करिये। 6. उसकी विषमता या अवगुण के कारण ढूढिये और उसे कुमार्ग, कुसगति, कुप्रभाव और कुविचारो से दूर रखने के उपाय कीजिये। 7 उसके गुणो की प्रशसा कीजिये जिससे वह आपको अपना हितैषी समझने लगे। 8 जब वह किसी खुशी की दशा मे हो उस समय एकात मे प्रेम-पूर्वक उससे वार्तालाप करते हुए प्रश्नोत्तर के ढग से उसी के मुँह से उसकी भूल या अवगुण की बात कहलवाइये। जहाँ तक हो आप अपने मुँह से उसके अवगुण की बात नही कहे।

9 यदि वह आपसे दूर रहता हो या मिलना जुलना पसद नही करता हो या नाराज रहता हो तो उससे उसके समाने कुछ भी नही कहे किन्तु रात्रि मे जब कि वह प्राय शात या सुप्त अवस्था मे हो या उषाकाल में उसे उपदेशात्मक विचार या सुधार के निर्देश विचार तरगो द्वारा भेजिये। जैसे चोरी करने वाले को चोरी की आदत छुडाने के लिये यह सदेश भेजिये- भाई तुम इमानदार बनो, सत्यवादी बनो। सत्यवादी की सहायता सभी लोग और देवता भी करते है। सत्य एक महान तप है।"

10 यदि कोई महिला रात्रि मे, सवेरे ऐसा चितन करे या जाप करे कि "मेरी सतान सुन्दर, स्वस्थ, सुशील और सुयोग्य हो" तो उसकी सतान उसके विचारों के अनुसार ही होगी।

11 रात्रि मे मौन विचार तरगे भेजते समय यह कल्पना कीजिये कि आप यह निर्देश चुपचाप उसके कान मे कह रहे है चाहे वह हजारो मील दूर ही बैठा हो या सो रहा हो। धैर्य और विश्वास से कुछ महीनो में सफलता मिलेगी।

: कषाय मुक्ति :

तीसरा भाग

कषाय मुक्ति की कसौटी और फल

वही मुनि कषाय मुक्त माना जाता है जो रोग या दुख मे दुखी नही होता। भौतिक सुख (इन्द्रिय सुख या शरीर सुख) को सुख नही मानता और हर समय शुद्ध भावना (विचार या ध्यान) मे लीन रहता है। कषाय मुक्ति का फल है–सिद्ध पद की प्राप्ति।

कषाय-मुक्ति का अभ्यास

कषाय से मुक्त होने का अभ्यास करने का सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ स्थान है–गृहस्थी के लिए अपना घर। जो पुरुष या स्त्रीयाँ अपने क्रोध, अहभाव, कपट और स्वार्थ को छोडकर प्रेमभाव, विनयभाव और अनुकम्पा भाव से त्याग भाव पूर्वक अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर और सगे-सबधी की सेवा करते है, वे कषाय मुक्त हो जाते है। जो घर मे ही लडाई-झगडे, कपट, कलह आदि रखते है उनके लिए कषाय मुक्त हो जाना कठिन हो जाता है। कुछ मनुष्य और स्त्रियाँ जब तक वे स्वय वृद्ध नही हो जाते तब तक वे वृद्धो के मन की वेदना को समझ नही पाते। जब वे स्वय वृद्ध हो जाते है तब उन्हे पता चलता है कि घर के वृद्ध लोगो के मन मे वेदना क्या थी और वे क्या चाहते थे ? तब वे पछताते है और कहते है–हाय ! हाय ! हमने अपने जीवन मे कुछ नही किया। हमने घर मे लडाई-झगडे रखे। हमने वृद्धो के अतर की बातो को नही सुना और वे अपने मन की बाते अपने साथ मन मे ही ले गए।

ससार मे मनुष्य चाहे कितना ही गरीब हो किन्तु यदि वह अपने वृद्ध माता-पिता, भाई-बहिन, सास-ससुर, सगे-सबधी एव धर्म गुरुओ की प्रेमपूर्वक सेवा करता है तो ससार के महापुण्यवान और महाभाग्यवान लोगो की गिनती मे उनका स्थान गृहस्थो मे सर्वप्रथम रहता है। ऐसे पुरुष ही कषाय मुक्त होते है और वे अपना ससार घटाते है।

दंड का अधिकार

आप विचारिए कि दड देने का अधिकार और उसकी शक्ति किसमे है। क्या आप अपने से शरीर बल, धन बल, राज्य बल बुद्धि बल आदि मे आपसे हर प्रकार से अधिक शक्तिशाली स्वय के अपराधी को भी दड दे सकते है या अपने से कमजोर अपराधी को ही क्रोध और अहभाव मे आकर बदला लेने की भावना से दो डडे लगाकर कषाय भाव से नवीन कर्म बाधकर भविष्य के लिए झगडे की नीव को मजबूत कर अपना ससार ही बढाते है।

कुछ चालाक और चतुर आदमी कानून का सहारा लेकर राज्य सरकार से दड पाने से भी बच जाते है किन्तु राज्य सरकार के दड से बचने वाले भी वास्तव मे दड देने वाली एक अदृश्य किन्तु अचूक महान कर्मशक्ति के दंड से नही बच पाते। दड देने का वास्तविक अधिकार कर्मशक्ति का है। राजसत्ता जो दंड देती है वह भी कर्मशक्ति के अधीन है।

सत सस्कृति यही कहती है कि दड देना कर्मशक्ति का ही काम है। कषाय मुक्ति का अभिलाषी किसी व्यक्ति को दड देने का काम अपने हाथ मे नही लेता। वह अपराधी के सामने पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल बन जाता है और वह अपराधी को दड मिले ऐसी इच्छा भी नही करता।

कषाय-मुक्ति में असफलता क्यो ?

कुछ लोग कषाय के चार भेद क्रोध, मान, माया, लोभ मे से प्रथम भेद क्रोध से होने वाले अनर्थ को देखकर मन मे पक्का विचार एव दृढ सकल्प करते है। और कुछ लोग तो क्रोध छोडने का पच्चखाण भी बिलकुल भूल जाते है और क्रोध मे आकर कभी-कभी महा अनर्थ भी कर बैठते है। बाद मे पछताते है। इसका कारण यह दिखता है कि अनादिकाल से क्रोध उनका साथी बना हुआ है और क्रोध के परमाणु उनके शरीर के कण-कण मे भरे हुए है। जिस प्रकार भालू से पकडे जाने पर भालू से मनुष्य का छुटकारा होना कठिन होता है उसी प्रकार क्रोध द्वारा पकडे गये किसी मनुष्य का क्रोध से छुटकारा पाना असभव तो नही, कठिन अवश्य हो जाता है। इस साधना मे साधको को अपनी योग्यता के अनुसार महीनो और वर्षों लग सकते है।

साधना का तरीका

क्रोध छोडने के लिए नीचे लिखे प्रश्नो को समझ कर उनके उत्तर पर विचार कीजिये और उन्हे एक कॉपी मे लिखये–1 क्रोध क्या है ?

2 क्रोध कितने प्रकार का होता है ? 3 यह कब आता है ? 4 क्रोधी अपने मन मे शत्रु के प्रति क्या विचार करता रहता है ? 5 क्रोधी क्या उत्पात मचाता है ? 6 क्रोधी मनुष्य के उदाहरण, 7 क्रोध से होने वाली हानियॉ, 8 क्रोध जीतने वालो के उदाहरण, 9 क्रोध जीतने के लाभ, 10 क्रोध पर विजय पाने के साधारण नियम, 11 क्रोध जीतने के विशेष नियम। शुरू के दस प्रश्नो के उत्तर कुछ महीनो तक प्रतिदिन पॉच-दस बार दोहराइये और अतिम ग्यारहवे प्रश्न का उत्तर कुछ वर्षो तक प्रतिदिन कम-से-कम पन्द्रह-बीस बार दोहराइये। क्रोध के जो सस्कार अनत अनादिकाल से मनुष्य के साथी बनकर उसके अचेतन मन मे गहराई तक बैठे हुए है उनको हटाने मे महीनो और वर्षो लग जाना कोई बडी बात नही है।

मनुष्य का चेतन मन अर्थात् उसका वर्तमान ज्ञान, क्रोध को बुरा समझकर छोडना चाहता है किन्तु उसका अचेतन मन अर्थात् पूर्व जन्मो का गलत अनुभव क्रोध को अपना हितकारी मित्र मानता है और उसे छोडना नही चाहता। अत अचेतन मन को समझाने के लिए चेतन मन को महीनो और वर्षो साधना करनी पडती है। अचेतन मन को हमेशा के लिए निकालने के लिए क्रोध पर विजय पाने के उपाय बताने वाली पुस्तके पढिए। इस सबध मे अन्य लेख भी पढिये। सतो के प्रवचन सुनिये, उनसे उपाय पूछिए। पूर्ण समताधारी मुनि गजसुकुमाल जैसे मुनिजनो की पूर्ण समता को बताने वाले साहित्य पढिए।' इस अध्ययन के साथ-साथ अपनी कॉपी मे मुख्य-मुख्य बाते भी लिखिये। एकात मे बैठकर इस सबध मे चितन-मनन कीजिए। अपनी आत्मा मे अनतज्ञान और अनुभव भरा हुआ है। उससे कुछ उपाय पूछिए। फिर कुछ वाक्य या सूत्र प्रतिदिन स्वाध्याय के लिए बनाइये। उनका जप करिये। अधिक से अधिक समय उसके चितन मनन मे दीजिए। इससे सफलता अवश्य मिलेगी।

क्रोध मुक्ति के उपाय

क्रोध के सबध मे कषाय मुक्ति प्रथम भाग, कषाय मुक्ति द्वितीय भाग मे काफी सामग्री दी गई है। क्रोध छोडने के साधारण उपाय है–क्रोध आये तब ठडा जल पीना, वहॉ से उठकर दूर चले जाना, मन को अच्छे लगने वाले काम करना, कहानी, लेख या पुस्तको को पढने मे लग जाना चाहिए। क्रोध को जीतने के विशेष उपाय निम्न है–दड या दु ख अपने अशुभ कर्मो से मिलता है, परिवार या दूसरे लोग या रोग या दुर्घटनाऍ तो केवल निमित्त ही बनते है। मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई की पूर्ण समता की

घटनाओ का चितन करना चाहिए। शत्रु के अन्दर जो अच्छे गु[illegible] दान, शील, तप, समता भाव, मातृभक्ति, पितृभक्ति, सत्यभाषा [illegible] ज्ञान, कार्यकुशलता आदि उन्हे देखने और उनकी प्रशसा करने से [illegible] और क्रोध नष्ट हो जाते है। मित्रता और समताभाव बढते है। दूसरो के गु[illegible] देखने वाले मनुष्य मे अहभाव पैदा नही होता और उसमे विनय का गु[illegible] जाता है।

यह सूत्र बार-बार दोहराइये—मेरे दु ख मिलने मे निमित्त बनने[illegible] पुरुष मेरा कर्म रोग काटने वाला परम उपकारी डॉक्टर है।

दुःखानुभति से मुक्ति

इस ससार मे दु ख और भौतिक सुख की अनुभूति ही [illegible] ससार मे बॉधकर सिद्ध पद पाने से रोकती है। इनमे दु ख की अनु[illegible] मानव मे आर्तध्यान उत्पन्न करती है। चक्रवर्ती नरेश की पटरानी [illegible] की मृत्यु पर छ मास तक विलाप और आर्तध्यान करके छठी नरक [illegible] जाती है। दु ख की अनुभूति साधारण मनुष्यो मे क्रोध पैदा करा[illegible] अनर्थ करवा देती है। दड मिलने पर या रोग या दु ख आने पर [illegible] दुर्घटना के होने पर मनुष्य को—1 रोना नही चाहिए। 2 किसी पर [illegible] नही करना चाहिए। 3 हो सके तो उससे बचने का कोई अहिसक [illegible] करना चाहिए। 4 अपने पूर्व जन्मो या इस जन्म मे किये हुए ज्ञात [illegible] अज्ञात अठारह पापो को याद करके उनका प्रायश्चित करना चाहिए [illegible] पश्चात्ताप करने से पहले किए हुए पाप हल्के हो जाते है या नष्ट हो[illegible] है। 5 सिद्धो का ध्यान करना चाहिए जिससे ताप और दु ख नष्ट होते [illegible] और सिद्ध पद प्राप्त होता है। 6 दान देने वालो, शील पालने वालो [illegible] करने वालो और पूर्ण समता रखने वाले सतो की पूर्ण समता की घटना[illegible] को याद करके उनकी प्रशसा व अनुमोदना करनी चाहिए जिससे ताप [illegible] दु ख नष्ट होते है या 7 यह दु ख नही है, यह मेरे कर्मो की निर्जरा हो [illegible] है, निर्जरा हो रही है, निर्जरा हो रही है। इस सूत्र को बार-बार [illegible] चाहिए व इसका जप करना चाहिए। इस सूत्र को रटने से दु ख [illegible] अनुभूति भुलाई जा सकती है।

दु खानुभूति पर विजय पाने के लिए आत्म-भावना जागृत [illegible] है जिसमे देह और आत्मा के भेद-ज्ञान मे दृढ श्रद्धा पैदा हो जा[illegible] इसका मूल सूत्र है—यह शरीर न मै हूँ न मेरा है। इस ध्यान के [illegible] वाला अपनी देह के मोह से मुक्त हो जाता है। वह अपने निज [illegible]

रखे जाने पर भी पूर्ण समता बनाये रख सकता है। इस विषय मे "ध्यान एक अनुशीलन" पुस्तक से जानकारी मिल सकेगी।

अहकार से मुक्ति

अहकार एक ऐसा अवगुण है जिससे अहकारी का आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक पतन होता रहा है। चापलूस लोग उसे ठगते और चूसते रहते है। समाज के अच्छे-अच्छे आदमी उससे घृणा करने लगते है और उस अहकारी व्यक्ति को दान, शील, तप आदि धार्मिक क्रियाओ का फल मिलना रुक जाता है। मुनि बाहुबलीजी को अहकार के कारण ही घोर तप करने के बाद भी केवलज्ञान मिलना रुका रहा।

एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को तार नही सकता, मार नही सकता, बना नही सकता, बिगाड नही सकता। दूसरो के कर्मो को बदल नही सकता, अपने स्वय के निकाचित कर्मो से बच नही सकता। वह अपने धन से अपने दु खो को दूर कर नही सकता। उसके पापोदय के समय उसका परिवार उसकी सहायता कर नही सकता और जब वह बीमार या वृद्ध हो जाता है तब वह स्वय को भी सँभाल नही सकता। ऐसी स्थिति मे किसी भी प्राणी के लिए किसी भी बात का अहकार करना भयकर भूल और निरर्थक है। बलवान मनुष्य नही होता है, बलवान होता है समय।

रहिमन नर को कहा बडो, समय बडो बलवान।
काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण।।

अर्थात्—गोपिकाएँ लूट ली गई और महाभारत का सबसे बडा विजेता अर्जुन खडा-खडा देखता रह गया। योग के अनुसार द्वारिका जलने लगी, यादव मरने लगे, श्रीकृष्ण के माता-पिता देवकी महारानी और श्री वासुदेवजी चिल्लाकर कहने लगे—"अरे कृष्ण ! अरे बलराम ! हमे बचाओ। उस समय के सबसे बडे शक्तिशाली और सबसे अधिक बुद्धिमान श्रीकृष्ण और बलराम ने अपने माता-पिता को बचाने का प्रयास भी किया किन्तु वे उन्हे बचा नही सके। वे खडे-खडे देखते ही रह गये।

तीर्थकर महावीर के दो शिष्य मुनि सुनक्षत्र और मुनि सर्वानुभूति उनकी ऑखो के सामने ही गोशालक द्वारा तेजोलेश्या छोडकर जला दिए गए। तीर्थकर महावीर के पास शीतोलेश्या थी जो तेजोलेश्या को शात कर देती है, फिर भी दोनो सत बच नही पाए। शक्ति मनुष्य मे नही होती, शक्ति होती है समय मे, शुभ कर्मो मे। मनुष्य को किसी भी बात का अहकार करना भयकर भूल है। अहकार से बचने के लिए इस सूत्र का बार-बार

जाप करना चाहिए–"कोई भी मनुष्य दूसरों को तार नही सकता, मार नही सकता, कठिन समय पर स्वय को भी सॅभाल नही सकता, उसका अहकार करना भूल है।"

दुर्भावना से मुक्ति

हमारे विचार या भाव जिनसे चाहे दूसरो का अहित नही भी होता हो किन्तु केवल हमारा ही अशुभ कर्म बध होता हो तो भी वे विचार हमारे लिए दुर्भावना है। हमारी दुर्भावनाओ से हमे नरक और सद्भावनाओ से मोक्ष मिलता है।

दुर्भावना और सद्भावना की अज्ञात महान शक्ति का परिचय जैन आगमो मे दिए गए मुनि प्रसन्नचन्द्र के वर्णन से मिलता है। एक बार वन मे तप करते हुए मुनि प्रसन्नचन्द्र शुभध्यान मे लीन होकर बैठे थे। राजा श्रेणिक के दो अनुचरो के वार्तालाप से कि उनके राज्य को और पुत्र को शत्रुओ से खतरा हो गया है। उन्हें शत्रुओ ने घेर रखा है, मुनि प्रसन्नचद को मोह आ गया और वे वन मे बैठे हुए ही ध्यान मे सिर्फ भावना द्वारा ही शत्रुओ से युद्ध करके उनका सहार करने लगे। किसी एक मनुष्य को भी थोडी-सी चोट नही पहुॅचाते हुए भी केवल मन के अशुभ परिणामो अर्थात भाव हिसा से उन्होने सातवे नरक मे पहुॅचाने वाले अशुभ कर्मो का सग्रह कर लिया किन्तु उन कर्मो का बध हो जाने के पहले ही किसी पूर्वकृत सुकृत से उनकी मोह-निद्रा भग हो गयी और उन्होने पश्चात्ताप की अग्नि से सब कर्मो को नष्ट करके उसी क्षण केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। इससे सिद्ध होता है कि प्राणी क्षणभर के महान अशुभ कर्मो से नरक का ओर सच्चा पश्चात्ताप करने से मोक्ष का पथिक बन जाता है।

मोटे रूप मे दुर्भावना तीन प्रकार की होती है। प्रथम प्रत्यक्ष दुर्भावना जिसमे कोई मनुष्य अपने शत्रु को गाली देता है, मारता-पीटता हे। जुआ-चोरी, डकैती, शिकार हत्या आदि दुर्भावना के ही परिणाम हे।

दूसरी दुर्भावना गुप्त दुर्भावना है। इसमे एक प्राणी दूसरे प्राणीयो को दु ख मे फसा देखकर खुशी मनाता है। हजारो मनुष्यो को मृत्यु के मुख मे जाते हुए देखकर खुशी मनाने वाला तदुल मत्स्य की भॉति सातवे नरक मे जाने का कर्मबध कर लेता है। हजारो मनुष्यो को युद्ध मे मारे जाने की कामना करना भयकर भाव हिसा है।

तीसरे प्रकार की दुर्भावना अनुमोदना की दुर्भावना है। राम-रावण, कौरव-पाडव, चेडा-कोणिक एव विश्व के महायुद्धो का वर्णन सुनते या पढते

हुए या समाचार पत्रो मे दो समाचार पढकर प्राणी एक का समर्थन व अनुमोदन करता है और दूसरे का विरोध और उसकी निदा करता है। इस प्रकार हजारो लाखो मनुष्यो की हत्या का अनुमोदन करना घोर दुर्भावना है।

इन वर्णनो को पढते हुए समझदार प्राणी मारकाट का अनुमोदन नही करते हुए मरने वालो के लिए अपने मन मे अनुकम्पा भाव लाकर और मारने वालो को सद्बुद्धि देने के लिए परमात्मा से प्रार्थना करता हुआ दुर्भावना की जगह सद्भावना भरता हुआ कर्मो की महान निर्जरा भी कर सकता है। दुर्भावना से बचने के लिए "सबका भला हो, सबका भलो हो" इस मत्र का जाप करना चाहिए।

सुखानुभूति से मुक्ति

मनुष्य प्राय अपने सभी काम या अधिकाश काम भौतिक या शारीरिक सुख प्राप्ति की भावना से करते है। वे महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाभयकर युद्ध आदि के कर्मो मे लगे रहते है। वे विशालकाय हिसक कारखानो, बडे-बडे पशुवध घरो (कत्लघरो) के निर्माण की कल्पना और योजना बनाने मे डूबे रहते है। अवसर मिलने पर उन्हे कार्य रूप मे परिणित करते है। इस प्रकार वे महाभयकर कर्म करते है जिससे कुछ लोग सातवे नरक मे भी पहुँच जाते है। कुछ लोग इस तथ्य को जानते हुए भी इन कार्यो से बचने का विचार नही करते क्योकि अनत अनादिकाल से हिसक काम करते रहते है और आज समाज मे बडे माने जाने व पूजे जाने वाले ऐसे ही लोगो का देखकर उनका अनुकरण करते हुए साधारण लोग भी इस ओर झुक जाते है। बहुत से साधारण लोग भी जो इन योजनाओ को कार्य रूप मे परिणित नही कर सकते वे बाहर से किचित मात्र हिसा न करते हुए भी केवल कल्पना के द्वारा अपने मन के परिणामो को हिसक बनाकर भयकर कर्मो का बध करके नरक मे पहुँच जाते है।

लोग कहते है कि हम धन इसलिए कमाते है कि धन से सुख मिलता है किन्तु उनका यह भ्रम है। कम धन होने के कारण मनुष्य को जितना दु ख मिलता है उससे कई गुणा अधिक दु ख धनवानो को धन के कारण उत्पन्न होने वाली अपनी घरेलु समस्याओ से मिलता है। उसकी तुलना मे धन से अनेक दु ख भी मिलते है। धनवान के अनेक शत्रु होते है, उनका जीवन भी सुरक्षित नही है। उनका शरीर चिता की आग मे जलता रहता है। सेठ धन्नाजी को उनके भाई धन के कारण मारने का प्रयत्न करते थे। अपने नगर का सबसे धनाढ्य व्यक्ति मम्मण सेठ क्या कभी रात मे भी सुख

से सो सका था ? क्या वह धन के लिए अर्द्धरात्रि मे नीद को छोडकर न
मे बहती हुई चंदन की लकडियो को इकट्ठा करने के लिए अपने घर से न
के किनारे नही गया था जिससे कि वह धन इकट्ठा कर सके
सोने-हीरो का दूसरा बैल बनाने की निरर्थक योजना को सफल बना सके
सुख तो वास्तव मे सतोष, त्याग और साक्षी मे है।

सुख मिलता है अपने किए हुए पुण्य कर्मोदय से, अन्यथा परिवार
भी नही मिलता। क्या पाडवो को कौरवो से कभी सुख मिला ? क्या उग्रसे
को कस से कभी सुख मिला ? क्या कोणिक ने अपने पिता राजा श्रेणि
को कैद नही किया ? कुछ लोगो का कहना है कि जुआ, चोरी, डकैत
ठगी, मास, मदिरा आदि मे कुछ सुख की अनुभूति होती है किन्तु यह उनक
भ्रम है। इससे समाज मे वे अपना सम्मान खो देते है और जब वे पकडे जा
है और उनको राज्य सरकार से दंड मिलता है तब उन्हे पता चलता है कि
ये काम अच्छे है या बुरे। कुछ लोगो का कहना है कि शरीर ही सुख क
साधन है। अत शारीरिक सुख प्राप्ति के लिए गरिष्ट भोजन (पकवान) पूड
कचौडी, अधिक खटाई और गरमागरम चाय आदि लेते है और भूख
अधिक भोजन करते है किन्तु अनियमित और अपच्य भोजन से स्वास्थ
बिगड जाता है और शरीर मे रोगो की उत्पत्ति होने लगती है, कमजो
आने लगती है, गैस बनने लगती है और नीद भी उड जाती है और य
शरीर सुख का साधन नही रहता किन्तु दु ख-दर्द का भण्डार बन जाता है

प्रथम तो यह सुख, सुख है ही नही, यह दु ख ही है। इस
शारीरिक, आर्थिक, मानसिक और आध्यात्मिक पतन होता है और यदि इ
कोई सुख मान भी ले तो भगवान महावीर का कथन है कि 'क्षण भर क
सुख बहुत काल के दु ख का कारण बनता है।' जब तक मनुष्य दुखानुभू
और सुखानुभूति दोनो से मुक्त होकर धर्म-ध्यान या सिद्धो के ध्यान मे ली
नही हो जाता तब तक सिद्ध पद की प्राप्ति नही हो सकती। सुखानुभू
को छोडने के लिए बार-बार इस सूत्र को दोहराइये–'क्षण भर का सु
अशुभ कर्मो के बध और बहुत काल के दु खो का कारण बनता है।'

धन लोभ का त्याग

यह सत्य है कि आज इस अर्थयुग मे अधिकाश लोग धन को अप
प्राणो से भी अधिक प्यारा और कीमती समझते है। धनवान बनने की काम
और कोशिश करते रहते है किन्तु यह भी सत्य है कि धन होते हुए भी
अधिकाश लोग धन के कारण ही दु ख भी पाते है। धन लोभ के कारण

मनुष्य को कई कष्ट उठाने पडते है और उनका परिणाम भी भोगना पडता है। 1 धन कमाने के लिए वे अपने जीवन को खतरे मे डालते है। 2 अपने स्वास्थ्य को खोते है। 3 भारी अशुभ कर्मो का बध करके बाद मे उनका बुरा फल भोगते है। 4 धन वालो की सतान अक्सर लडती रहती है। 5 कभी-कभी आलसी और चरित्रहीन भी बन जाता है। 6 धनवान धन की रक्षा के लिए चितित रहते है। उन्हे डकैती आदि का भय रहता है। 7 धनवानो के सगे-सबधी उससे धन मॉगते है और नही देने पर नाराज होकर उनके शत्रु बन जाते है। 8 धन से किसी के कर्मो को बदला नही जा सकता। 9 किसी की चिता दूर नही की जा सकती। 10 असाध्य रोग को मिटाया नही जा सकता। 11 सत्य को टाला नही जा सकता। 12 धन से धर्म खरीदा नही जा सकता। 13 धन होने पर भी अशुभ कर्मो का उदय हो तो सुख की प्राप्ति नही होती, राजा-महाराजा और धनी आदमी प्राय दु खी होते देखे गये है। 14 धन पास मे न होने पर भी सत, महात्मा, ईमानदार आदमी और सतोषी पुरुष सुखी देखे गये है और उनके लिये आवश्यकता पडने पर धनवान लोग लाखो रुपया खर्च करने के लिए तैयार रहते है। अत सुख धन से नही पुण्योदय से मिलता है।

परिवार-मोह

परिवार के सबध मे तीन बाते ध्यान देने योग्य है—परिवार मे आज जिस-जिस प्राणी ने जिस-जिस प्राणी के साथ, जिस-जिस रूप मे पति-पत्नी, भाई-बहिन, पिता-पुत्र आदि के रूप मे जो जैसा सबध जोडा है, वह वैसा सबध पहले हमेशा नही रहता है और भविष्य मे ही हमेशा नही रहेगा। इतना ही नही बल्कि यह भी निश्चित नही है कि अन्य किसी रूप मे दूसरा कोई सबध भी रहेगा या नही। ऐसी स्थिति मे व्यावहारिक भाषा मे हम किसी प्राणी को अपने परिवार मे कह सकते है, किन्तु निश्चय दृष्टि से सभी प्राणी अलग-अलग है, स्वतत्र है और अकेले है। यहॉ कोई किसी का नही है।

द्वितीय—किसी भी प्राणी को उसके शुभ या अशुभ कर्मो के अनुसार जो सुख या दु ख मिलता है उसमे निमित्त बनने के अलावा उसे बदलना या घटाना-बढाना परिवार के किसी भी सदस्य अथवा तीर्थकर के हाथ मे नही है। अत 'कर्म-फल भोग' दृष्टि से भी सब प्राणी अलग है, स्वतत्र है, अकेले है।

तृतीय–प्राणी अपने पारस्परिक ऋण को चुकाने या वसूल करने के लिए परिवार मे जन्म लेकर या विवाह-शादी करके उस परिवार के सदस्य बनते है और अपने कर्ज को चुकाकर या वसूल करके उस परिवार से दूर हो जाते है। लेनदारो और देनदारो के इस अस्थायी जमाव को अपना परिवार समझना, उससे मोह रखना और अपने स्वार्थ की पूर्ति की आशा करना भूल है। ससार मे कोई किसी का नही है।

सच्चा सुख या दु.ख परिवार से या धन से या इस भौतिक शरीर से नही मिलता, वह तो अपने शुभ या अशुभ कर्मो से मिलता है।

इच्छाओं का निरोध

ससार मे सुख की इच्छा ही सब दु खो का कारण है। यदि सुख की इच्छा ही न हो तो दु खानुभूति भी नही होगी। मनुष्य दु ख से भागने की इच्छा करता है किन्तु कर्मो के फल से कोई बच नही सकता है। दु ख से भागने की इच्छा निरर्थक है। पुण्योदय से सुख की प्राप्ति या सुख की वर्षा होने लगती है। दु खो का अत करने का सर्वोत्तम उपाय है–इच्छाओ को रोकना। इच्छा निरोध ही तप है। इच्छा से मुक्ति ही ससार से मुक्ति है।

माया मिथ्या की दृष्टि

कषाय के चार भेद है–क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चारो से मुक्त होने पर ही प्राणी कषाय मुक्त होता है। माया का अर्थ है–छल, कपट धोखा। माया तीन प्रकार से होती है–मन से, वचन से और काया से।

दूसरे को धोखा देने, ठगने और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए जो कपट भरे विचार मन मे किये जाते है वह मन की माया है। जब कोई प्राणी अपना काम बनाने के लिए जान-बूझकर ऐसे शब्दो और वाक्यो का प्रयोग करता है जिससे वे सुनने वाला, बोलने वाले के मन के कपट को नही समझ सके और सही काम छोडकर गलत काम करदे जिससे कि कपट भाष बोलने वाले का काम सिद्ध हो जाये तब यह माया भरी भाषा या वचन की माया कहलाती है।

जब कोई मनुष्य अपने शरीर से जान-बूझकर इस प्रकार की चेष्टा करता है जिससे कि देखने वाला उसके कपट को समझ न सके और ऐसे कार्य कर दे जिससे कि कपट करने वालो को लाभ हो, तब यह काया की माया कहलाती है। इस प्रकार मन से, वचन से, काया से माया अर्थात् कपट करने वाला सम्यक् दृष्टि नही रहता, वह मिथ्या दृष्टि बन जाता है।

मोक्ष पाने की इच्छा रखने वाले को माया छोडकर मन, वचन और काया से सत्य को जीवन मे अपनाना चाहिए। सत्य मे महान शक्ति है। साधारण मनुष्य से देवताओ मे, देवताओ से तपस्वी मे और तपस्वी से सत्यवादी मे अधिक शक्ति होती है। इसी कारण सत्यवादी महाराज हरिशचन्द्र ने तपस्वी मुनि विश्वामित्र द्वारा तप-बल से बाधी गई अप्सराओ (देवताओं) के बधन काटे थे। सत्य ही भगवान है। सत्य ही सबसे बडा तप है। सत्यवादी को स्वर्ग के देवता भी प्रेम से देखते है और उसकी सहायता करते है।

सत्य भाषा के पॉच गुण है–हित-हितकारी, मित (कम बोलना), प्रिय, सत्य, निरवद्य (जो हिसात्मक नही है)।

विकथा

बहुत से मनुष्य अपना अधिकाश समय इधर-उधर की व्यर्थ की बातो मे या विकथा मे लगा देते है जिससे अनावश्यक बातो की आलोचना होती है। इसमे अनेक बार हमारे अन्दर ज्ञान की कमी के कारण अशुभ बातो की अनुमोदना और शुभ की निन्दा हो जाती है। हम व्यर्थ ही अशुभ कर्मो का बध कर लेते है। कई लोग दूसरे स्त्री-पुरुषो की विकथा, देश की विकथा, या राज्य की विकथा करते है जिससे उनका कोई सबध नही होता, जिसमे उनका ज्ञान भी नही होता। इससे वे अपने वार्तालाप से गलत लोकमत भी तैयार कर लेते है, जिससे हजारो मनुष्यो का अहित भी हो सकता है। वे अशुभ कर्मो का बध करते है। अत लोगो को विकथा से बचकर, दान, शील, तप और समता भाव (क्षमा) की घटनाओ और कथाओ का स्वाध्याय, आत्मध्यान और सिद्धो के ध्यान मे अपना समय लगाना चाहिए जिससे पाप नष्ट हो, पुण्य की प्राप्ति हो और सिद्ध पद भी प्राप्त हो।

मोह पर चोट

आठो कर्मो मे मोहनीय कर्म सबसे प्रबल और प्रधान है। इस कर्म ने गौतम गणधर के मन मे तीर्थकर महावीर के प्रति प्रशस्त राग पैदा करके कुछ समय तक उनके केवलज्ञान प्राप्ति के काम को रोक दिया। राग चाहे प्रशस्त हो या अप्रशस्त, वह आखिर है तो राग ही। मरुदेवी माता ने कोई त्याग पच्चखाण नही किया था। कोई भी व्रत धारण नही किया था। फिर भी उनको हाथी के ऊपर बैठे हुए ही और गृहस्थ वेश मे ही केवल मोह के

टूटते ही उन्हे वही केवलज्ञान और सिद्ध पद प्राप्त हो गया। सिद्ध पद प्राप्ति के लिए मोह का टूटना आवश्यक है।

हमारे मन मे परिवार के प्रति और परिवार वालो के मन मे हमारे प्रति मोह उत्पन्न होने का प्रथम कारण यह है कि अनंत अनादिकाल से हमारे अचेतन मन ने मोह को अपना उपकारी और सहायक मित्र मानकर इसे अपने अन्दर स्थान दे दिया है। मोह अब इतना मजबूत बन चुका है कि चेतन मन के द्वारा अचेतन मन को यह समझना कठिन हो रहा है कि अनेक दु ख प्राप्त होते है। यह मोह अपना शत्रु है, इसे छोडकर मोक्ष पाने से वहाँ आनद ही आनद मिलेगा। मोह का दूसरा कारण यह है कि हमारा ज्ञान अल्प है और हम दूसरो के मन की बात भी नही जानते। फिर भी हमारे अज्ञान, हमारी आदत और राग-द्वेष के कारण उनको दो भागो मे बाँट देते है–भले और बुरे।

मोह को मिटाने के लिए हमे भले और बुरे बँटवारे को बद करके, बड़े और छोटे बँटवारे को बद करके केवल एक विचार रखना चाहिए कि सब लोग आत्माएँ है और केवल आत्माएँ ही, इससे राग-द्वेष और मोह की दृष्टि मिट जावेगी।

परिवार के लोगो को हम कहते है कि ये मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है ऐसा, कहना और समझना भी मोह बढाना है। यहाँ पर भी हमे केवल यही विचार रखना चाहिए कि कोई किसी का न हुआ है न होगा। सब आत्माएँ अलग-अलग आत्माएँ है। एक दूसरे से स्वतत्र है, कोई किसी का नही है।

चौथा कारण हम मोह भाव के कारण अपने परिवार के दु ख को मिटाने के लिए चिंता करते हैं और अनेक प्रकार के अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित सभी प्रकार के काम करते है किन्तु हमे ध्यान रखना चाहिए कि किसी का दु.ख दूर करने और उसे सुख पहुँचाने की शक्ति केवल शुभकर्मो मे ही है। इसलिए हमे चिता करने और अनुचित काम करने से बचना चाहिए। पाँचवा कारण यह है कि पूर्व जन्मो का कर्ज चुकाने के लिए हम लोग परिवार मे आते है। कर्जो को अनुकम्पा भाव से सम्यक् सेवा द्वारा चुकाते समय हमे यह ध्यान रखना चाहिए कि हम सब लोग आत्माएँ है और सभी मनुष्य आत्माएँ है और अलग-अलग आत्माएँ। यह अलग-अलग होने की दृष्टि मोह को दूर करेगी।

सम्यक् सेवा का अर्थ यह है कि हमारे किसी काम से दूसरो के निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति मे बाधा नही पहुँचे किन्तु सहायता मिले। अनुकम्पा भाव या करुणाभाव या दयाभाव या शुद्धभाव का अर्थ है कि हमारे शरीर के हलन-चलन से, खाने-पीने से, उठने-बैठने से, आने-जाने से या हमारे वचनो से, वार्तालाप से या हमारे मन के विचारो से या भावनाओ से दूसरो को 1 दु ख नही पहुँचे, 2 उनका पतन नही हो, 3 उनको सुख मिले और 4 सुख के साथ-साथ उनकी आत्म-उन्नति हो। इन चार बातो का ध्यान रखकर सावधानीपूर्वक शरीर से, वचन से या मन से जो काम किया जाता है वह सेवा कार्य कहलाता है। वह सेवा अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सेवा कहलाती है। यह सेवा महान तप है और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। इससे मोह टूट जाता है। मोह को तोडने के लिए नीचे लिखे पॉच सूत्रो को बार-बार दिन मे कई बार दोहराइये, इनके अर्थ का चितन कीजिये, सतो से इस सबध मे चर्चा कीजिए और स्लेट या कॉपी मे इन्हे बार-बार लिखिये। 1 मोह छोडो मोक्ष मिलेगा। 2 सभी जीव आत्मा है, केवल आत्मा है। 3 कोई किसी का हमेशा न हुआ न होगा। 4 दु ख दूर करने और सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मो मे ही है, परिवार के हाथ मे नही है, अनुकम्पा भाव से की जाने वाली सम्यक् सेवा ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है।

कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
चिता मोह व्यर्थ मे ही करता।।
कोई किसी का हुआ न होगा।
कर्म साथ नही रहने देगा।।

भावना की शक्ति

1 भावना मे अनत शक्ति है। हम अपने शरीर से जितनी हिसा और पाप करते है उससे हजारो लाखो गुणा अधिक हिसा और पाप किसी जीव को दु ख दिए बिना भी केवल अपने विचारो और गलत मानसिक परिणामो से कर लेते है।

2 एक मनुष्य पॉच प्राणियो को मारने का विचार दिन मे 10 बार करता है, 20 दिन तक इस विचार को करता रहता है तो चाहे वह एक भी प्राणी को नही मारे किन्तु इस भावना से ही वह 5X10X20=1000 (एक हजार) प्राणियो की हत्या के पाप का भागी बन जाता है।

3. कालसौरिक कसाई को अकेले को कमरे मे बद कर दिया ग
वहाँ एक भी भैसा नही था। उसने अपने शरीर के मैल से 500 भैंसे ब
और उन भैसो को मार दिया इससे उसे 500 भैसे मारने की हिसा का प
लगा। पश्चात्ताप मे भारी अशुभ कर्मो को काटने की महान शक्ति है।

4 मुनि प्रसन्नचन्द्र ने सातवे नरक मे पहुँचाने वाले भारी अशुभ क
को क्षण भर मे काटकर केवलज्ञान प्राप्त किया। मुनि चडरुद्राचार्य ने र
मे अपने नवदीक्षित शिष्य के कधे पर बैठे हुए, विहार करते हुए उ
केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद भी लातो और मुक्को से पीटा। किन्तु ज
उन्हे शिष्य को केवलज्ञान प्राप्त होने की बात ज्ञात हुई तो वे शिष्य के क
से नीचे उतर कर उससे क्षमा माँगकर पश्चात्ताप करने लगे। इस पश्चात्ता
से उनके भारी अशुभ कर्म कट गये और उन्हे क्षण भर मे केवलज्ञान प्रा
हो गया। मुनि करगडूक ने जो संवत्सरी के दिन भी उपवास नही क
सकते थे भोजन लाने के कारण दूसरे सतो की भर्त्सना सुनी और पश्चात्ता
किया। इस पश्चात्ताप से उन्हे भी क्षण भर मे केवलज्ञान प्राप्त हो गय
अपने पापो को काटने के लिए प्राणी को अपने इस अज्ञात पापो क
पश्चात्ताप करना चाहिए।

अनुमोदना

पश्चात्ताप की भाँति अनुमोदना मे भी महान शक्ति है। सुमु
गाथापति द्वारा मुनि सुदत्त को उनके मासखमण के पारणे पर दिए ग
सुपात्र दान की अनुमोदना करने वाले भी केवल अनुमोदना करने से ति
गए। इसी प्रकार विजय सेठ, विजया सेठानी की और शील व्रतधारी से
सुदर्शन के शील पालन की घटनाओ की अनुमोदना करने वाले
शीलव्रतधारी बनने मे समर्थ होकर ससार सागर से तिर जाते है। इ
प्रकार काली, सुकाली, महाकाली, महारानियो की तपस्या की अनुमोद
करने वाले मुफ्त मे ही कष्ट उठाए बिना ही तपस्या का फल पाने के भाग
बन जाते है।

किसी गुण की अनुमोदना करने वाले केवल अनुमोदन के कार
अपने भारी अशुभ कर्मो की निर्जरा भी करते हैं।

मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, मु
दृढ प्रहारी आदि की समता भावना की अनुमोदना करने वाले लोग अप
भारी अशुभ कर्मो की निर्जरा किसी कष्ट के बिना कर डालते है।

शुभ की अनुमोदना आत्मा के उत्थान का कारण बनती है, किन्तु अशुभ की अनुमोदना महापरिग्रह, महाआरभ, महाहिसा, महायुद्ध, कसाई खानो का खोलना, महाहिसक कारखानो आदि अशुभ कार्यो का अशुभ अनुमोदन प्राणियो के पतन का कारण बनता है। प्राणियो को दु ख देने और उनकी हिसा कराने वाले कार्यो की अनुमोदना से हमेशा बचना चाहिए। कुछ आदमी दूसरो को खुश करने के लिए बडे-बडे मकानो और हिसात्मक कारखानो की योजनाओ का अनुमोदन करते है वे अपने अज्ञान के कारण अशुभ कर्मो का बध करते है।

हत्या के पाप से अलग

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो, पतित उधारण हारो।
गौ, ब्राह्मण, प्रमदा, बालक की मोटी हत्या चारो।
तेहनो करन हार प्रभु भजने, होत हत्या से न्यारो
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।
पाप पराल को पुज बन्यो अति, मानो मेरु आकारो।
सो तुम नाम हुतासन सेती सहजे प्रज्ज्वलत सारो।
पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो।

प्रभु के भजन से, सिद्धो के ध्यान से मुनि दृढ प्रहारी गाय, ब्राह्मण, स्त्री और बालक इन चारो की हत्या के पाप से न्यारा हो गया। सिद्धो के ध्यान मे ऐसी महान शक्ति है। मुनि दृढ प्रहारी अनुकूल के राग से और प्रतिकूल के द्वेष से अलग होकर सिद्धो के ध्यान मे लग गये और उन्होने पॉच महीने के अन्दर ही भूख-प्यास, शीत-ताप और लोगो से मिलने वाला दड-त्रास समतापूर्वक सहकर और सिद्धो के ध्यान मे लीन रहकर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

सिद्धो का ध्यान

णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण
णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण

ऊपर लिखे हुए नवकार मत्र के पद को मन-मन मे या धीमी-धीमी आवाज मे बोलकर बार-बार दोहराते हुए भक्ति और विनयपूर्वक हाथ जोडते हुए सिर झुकाते हुए और नमस्कार करते हुए सिद्धो का ध्यान किया जाता है।

मनुष्यलोक से ऊपर, देवलोक से ऊपर, सिद्धशिला से ऊपर लोक के अग्रभाग मे जहाँ लोक और अलोक की सीमाएँ मिलती है वहाँ बहुत बड़ा लम्बा-चौडा खुला स्थान है। वहाँ पर अटल अवगाहना प्राप्त करके बिना किसी आधार से सिद्ध भगवान आनन्दघन अवस्था मे स्थिर हैं। उनका भक्तिभाव पूर्वक हाथ जोडकर, सिर झुकाकर, नमस्कार करते हुए और नीचे लिखे अनुसार उनके गुणो का बार-बार स्मरण करते हुए उनका ध्यान किया जा सकता है।

सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान
आत्मद्रव्य है, अतिसूक्ष्म है।
अगम अगोचर, अजर अमर है।
वे सर्वज्ञ है, शक्तिमान है।
आनन्दघन है, निर्विकार है।
सब सिद्धो को नमस्कार है।
नमस्कार है, नमस्कार है।
अनतज्ञान है, अरु दर्शन है।
अनन्त सुख है, अनन्त वीर्य है।
क्षायिक समकित अमूर्तभाव है।
अटल अवगाहना अगुरु लघु है।
सब सिद्धो को नमस्कार है।

सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनके शरीर नही है। वे केवल आत्मद्रव्य है। वे दिखाई नही देते। वहाँ हमारी पहुँच नही है। वे हमारी इन्द्रियों से नही जा सकते है। शस्त्र उन्हे काट नही सकते। पावक उन्हे जला नही सकती। वे भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्यकाल की घटनाओ को जानते है, मनुष्यो के मन की बात जानते है। उन्हे ससार का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त है। वे सर्वज्ञ है और साथ ही पूर्ण शक्तिमान है। उन्हे कोई इच्छा, चिता या भय नही है। इसीलिए वे आनन्दघन है। वे क्रोध, मान, माया, मोह, इच्छा, दु.खभावना या दुर्भावना से मुक्त है। वे निर्विकार है। उन सब सिद्धो को मै नमस्कार करता हूँ।

कुछ लोग सिद्धो का ध्यान इस प्रकार भी करते है–भगवान आदिनाथ के परिवार के प्राय सभी सदस्य सिद्ध हो गये। वे लोक के अग्रभाग मे विराजमान है। किन्तु हमे दिखाई नहीं देते क्योकि वे अरूपी है। मैं उन सब सिद्धो को नमस्कार करता हूँ।

ससार मे जितने भी तीर्थकर हुए है उन सबने सिद्ध पद पाया है। किन्तु वे अमूर्त होने के कारण देखे नही जा सकते। मै उन सब सिद्धो को नमस्कार करता हूँ।

भेद–सिद्ध पन्द्रह प्रकार के होते हैं। तीर्थ सिद्धा, अतीर्थ सिद्धा, तीर्थकर सिद्धा, अतीर्थकर सिद्धा, स्वय बुद्ध सिद्धा, प्रत्येक बुद्ध सिद्धा, बुद्ध बोधि सिद्धा, स्त्रीलिग सिद्धा, पुरुष लिग सिद्धा, नपुसकलिग सिद्धा, स्वलिग सिद्धा, अन्य सिद्धा, गृहस्थलिग सिद्धा, एक सिद्धा अनेक सिद्धा।

अन्यलिग सिद्धा बताता है कि जैन धर्म मे पक्षपात नही है और यह द्रव्य क्रिया की अपेक्षा भाव क्रिया को प्रधानता देता है। अच्छी भावना भाने वाले अन्य धर्म के लोग भी सिद्ध भगवान बन सकते है। गृहस्थ सिद्धा सकेत करता है कि सिर्फ साधु ही सिद्ध नही बनते, किन्तु गृहस्थ भी भाव साधु बनकर सिद्ध भगवान बनते है। जैसे कूर्मा पुत्र केवली को भी गृहस्थ दशा मे केवलज्ञान प्राप्त हुआ था और वह छ महीने तक गृहस्थ पोशाक मे ही रहा इसलिए कि उनकी माता को दु ख न हो। स्वय बुद्ध बतलाता है कि विशुद्ध आत्म चितन करने वाला और चौबीसो घटे आनन्दघन रहने वाला क्रोध, काम, मद, मोह छोड करके दूसरे उपदेशक से उपदेश पाए बिना भी केवल अपने-आप ज्ञाप प्राप्त करके सिद्ध बन सकता है।

आप ये चितन भी करिए कि इन सिद्धो ने अपने मनुष्य भव के जीवन मे अलग-अलग प्रमुखता दी। किसी ने दान को प्रमुखता दी, किसी ने शील को प्रमुखता दी–जैसे सेठ सुदर्शन, विजय सेठ, विजया सेठानी। किसी ने तप को प्रमुखता दी–जैसे मल्लिनाथ भगवान, काली रानी आदि। किसी ने समता भाव (क्षमा) को प्रमुखता दी–जैसे मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य। किसी ने अपने किए हुए पापो का पश्चात्ताप करके मुक्ति प्राप्त की। ऐसे सिद्धो का ध्यान करने से, उनके गुणो का अनुमोदन करने से आप उन्हे अपने जीवन मे उतारने की प्रेरणा पाएगे।

समस्या–कुछ लोग कहते है कि किसी पदार्थ या प्राणी का ध्यान करने के लिए उस पदार्थ या प्राणी को या उसके मूर्त रूप को, रग और अग आदि को या उसकी तस्वीर को देखना आवश्यक है। इसके बिना उन पर दृष्टि जमाना और ध्यान को केन्द्रित करना कठिन है। सिद्ध भगवान अशरीरी है। उनका आत्म द्रव्य दिखाई नही देता। इसलिए सिद्धो का ध्यान करते समय हमारा मन इधर-उधर जाता रहता है और ध्यान केन्द्रित नही हो पाता।

समाधान—वे लोग इस समस्या का समाधान इस प्रकार करते है— कहते है कि जैन आगमो मे सिद्धो का जो वर्णन दिया गया है उसे पढकर और कल्पना का सहारा लेकर सिद्ध भगवान की कल्पित मूर्त रूप की आकृति मन मे बनाई जा सकती है और वह आकृति बहुत कुछ मानव की आकृति जैसी होनी चाहिए क्योकि सिद्ध बनने के ठीक पहले उनके अन्तिम मानव भव के शरीर के आत्म-प्रदेशो का संकोच और विस्तार बन्द हो जाता है। वे आत्म-प्रदेश ज्यो के त्यो वैसे ही रह जाते है जैसे कि वे अन्तिम समय मे मानव के शरीर मे थे। इसलिए उनकी आकृति मे कोई विशेष अन्तर नही आता।

दूसरी बात यह है कि सिद्ध भगवान अटल अवगाहना प्राप्त कर लेते है और अवगाहना भी उनके अन्तिम मानव भव वाले शरीर की अवगाहना के (दो तिहाई) भाग के बराबर रह जाती है। क्योकि (एक तिहाई) भाग जो पोलार (आकाश-प्रदेश) का था वह निकल जाता है। इस प्रकार इन दो तथ्यो के सहारे उनके कल्पित मूर्त रूप की कल्पना करके उस पर दृष्टि जमाना और ध्यान केन्द्रित हो जाना सम्भव हो जाता है। कुछ लोग सिद्धो का ध्यान करते समय सफेद रग की कल्पना करके उस पर ध्यान केन्द्रित करने की सलाह देते है।

इस प्रकार कल्पित मूर्त रूप बनाना या सफेद रग देखना कहाँ तक उचित या लाभप्रद है ? इसका निर्णय या तो शास्त्रो के मर्म के ज्ञाता, पण्डित या बहुत अनुभव वाले ध्यान योगी ही कर सकते है किन्तु यह बात निर्विवाद है कि गुणो की प्राप्ति के लिए तो गुणो का ध्यान ही लाभप्रद और आवश्यक है। शरीर को देखकर उसका ध्यान करने मे राग उत्पन्न होने की भी सम्भावना बनी रहती है। भगवान महावीर के अति निकट रहने वाले उनके परमभक्त गौतम स्वामी को भी भगवान महावीर के प्रति प्रशस्त राग था, जो उनके केवलज्ञान प्राप्ति मे जब तक भगवान महावीर मोक्ष नहीं पधारे, बाधक बना रहा।

ऑखो से देखना, एक क्रिया है, महत्त्व ऑखो से देखने का नहीं होता किन्तु उस देखने के साथ-साथ जो भाव जुडे रहते है उन्ही का महत्त्व बना रहता है। सगमदेव भगवान महावीर के साथ छ महीने तक रहा और उसको भगवान महावीर के साक्षात् दर्शत होते रहे किन्तु सगमदेव की दृष्टि मे द्वेष और भावना मे विकार था इसलिए उसके कर्मो की निर्जरा होने के स्थान पर नवीन भयकर कर्मो का बंध हुआ। गोशालक भी भगवान महावीर

के साथ बहुत समय तक रहा। उसे भी उनके दर्शन होते रहे किन्तु इन दर्शनो से उसके कर्मो का नाश नही हुआ। राजा श्रेणिक के साथ उसके सारथी ने भी भगवान महावीर और बहुत से सतो के दर्शन सिर्फ सभ्यता की मर्यादा निभाने के लिए भक्ति के बिना किए। जहॉ महाराज श्रेणिक के छ नारकीय कर्म नष्ट हुए वहॉ उनके सारथी के कुछ भी कर्म नष्ट नही हुए। उसे केवल काया कष्ट ही हुआ। केवल दर्शनो से ही भक्ति के बिना दर्शन करने वाले के कर्मो का नाश नही होता किन्तु उसके साथ जुडी हुई भावना, विनय भक्ति गुणानुराग आदि के कारण ही कर्मो की निर्जरा होती है। अत ध्यान मे महत्त्व इस बात का नही है कि हमे सिद्ध भगवान के कल्पित रूप के दर्शन होते है या नही। किन्तु महत्त्व इस बात का है कि हम सिद्ध भगवान के या जिन सतो या महापुरुषो के दर्शन करते है या नही या हमारे ऊँचे अचेतन मन मे उनके गुणो के प्रति गुणानुराग है या नही।

यह भी सत्य है कि सिद्ध भगवान के आत्मद्रव्य को कल्पना के द्वारा देखने के प्रयास के बिना केवल उनके गुणो के चितन का अभ्यास कुछ दिनो तक किया जावे तो अरूपी सिद्धो के गुणो का चितन और ध्यान सम्भव हो सकेगा।

सिद्धो के ध्यान से हमारे अन्दर जो विकार है वे दूर होते है और हमे गुणो की प्राप्ति होती है। हमारे अशुभ कर्म, पाप रोग और दु ख नष्ट होते है और हमे सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

सेवा के नौ भेद

किसी भी कार्य को अच्छे या बुरे परिणामो से अच्छा या बुरा नही कहा जा सकता। उसको अच्छा या बुरा बताने की कसौटी है–उस कार्यकर्ता के मन मे परिणाम यानी भावना। इस दृष्टि से सेवा के नौ प्रकार हो सकते है। उसमे प्रथम तीन सेवाभावी उत्तम दूसरे तीन मध्यम और अन्तिम तीन अधम प्रकृति वाले कहे जा सकते है।

1 उत्तम (क) कर्तव्य भावना

कर्तव्य भावना से प्राणी मात्र की सेवा करने वाले सर्वोत्तम सेवाभावी कहे जा सकते है। उन्हे किसी प्रकार की इच्छा नही होती, कामना नही होती। वे ससार को सही मोक्ष का मार्ग दिखाते है। इस श्रेणी मे तीर्थकर और पूर्ण त्यागी महापुरुष आते है। यह कर्तव्य भावना ही सर्वोत्तम सेवा भावना है।

(ख) ऋण मुक्ति भावना

इसमे वे व्यक्ति आते है जो वर्तमान और भूतकाल के बहुत से ज्ञ और अज्ञात व्यक्तियों के और समाज के उपकारो से अपने-आप को उपकृ मानते है और स्वयं को उनका ऋणी मानते है। इसीलिए वे प्राणी मात्र की सेवा निष्काम भाव से मान और अपमान, जीवन-मरण का ख्याल किए बि अपना तन, मन, धन तीनो लगाकर दूसरो की सच्ची सेवा और उन आत्महित करते है। इसमें त्यागी सत और निर्लोभी सेवा करने वाले व्यक्ति आते है। श्री जवाहराचार्य द्वारा लिखी गई मघा की कथा मे यह बता गया है कि वह निष्काम भाव से समाज की सेवा करता था। जब द्वे राजकर्मचारियो ने राजा से उसकी शिकायत की और राजा ने उस मघा नामक व्यक्ति और उसके साथियो को कुचलने के लिए तीन बार मतवाले हाथी छोडे तो तीनो ही बार वे हाथी उनको सूँघ-सूँघ कर ही वापस लौट गये। उन्हें कुचला नही। ऐसे समाज सेवियो को मनुष्य तो क्या पशु भी हानि नही पहुँचाते।

(ग) पुण्य कमाने की भावना

इस श्रेणी मे वे व्यक्ति आते है जो अपने धन को औषधालय अनाथालय, विधवाश्रम, वृद्धाश्रम, पाठशाला, ज्ञानशाला, पुस्तकालय, कुष्ठरोगी आश्रम आदि खुलवाने मे लगाते है या इनमे चदा देते है और उनमे सेवा कार्य करते है।

2. मध्यम (क) दबाव या भय

सेवा करने वाले इस श्रेणी मे आते है। उनके मन मे सेवा करने की इतनी भावना नही है जितनी की उस व्यक्ति को खुश रखने की भावना है जिसके दबाव से या भय से वे सेवाकार्य मे लगे है।

(ख) कीर्ति प्राप्ति की भावना

दान देने वाले या सेवाकार्य करने वाला या पाठशाला, औषधशाला खुलवाने वाले इत्यादि इस श्रेणी मे आते है। वे सस्थाओ पर अपना नाम लिखवाते हैं और दूसरो की नजरो मे अपने आपको बडा आदमी दिखाने की कोशिश करते हैं। यह एक प्रकार का अहंकार प्रदर्शन है। इससे अहकार को पोषण मिलता है। अहकार इतना भयंकर विकार और अवगुण है जो बाहुबलीजी जैसे महातपस्वी को भी केवलज्ञान प्राप्त करने से रोक देता है।

अहकार से अच्छी क्रियाओ का फल भी तुच्छ-सा बन जाता है। क्रोध के समान यह भी मनुष्य को ऊँचा नही उठने देता। यदि समाज के लिए दान देने वालो मे यश प्राप्ति की भावना मिट जाय और नि स्वार्थ भाव से, निष्काम भाव से मान-अपमान और लाभ-हानि का ख्याल न रखकर, वे सेवाकार्य मे लगे रहे तो वे मध्यम से निकल कर उत्तम श्रेणी मे आ जाते है।

(ग) लोभ अर्थात् धन लाभ

सम्पत्ति कमाने की भावना से सेवाकार्य करने वाले इस श्रेणी मे आते है। वे चाहते है कि हम समाज सेवा के लिए कुछ धन लगावे और बडे-बडे राजकर्मचारियो और समाज के प्रतिष्ठित व्यक्तियो की नजरो मे ऊँचे हो जावे तो इससे हमे व्यापार का लाइसेस मिल जावेगा या कारखाने के लिए सस्ते दामो मे जमीन मिल जावेगी या सस्थाओ मे कुछ चीजे विक्रय करने का ठेका मिल जावेगा और हम जितना सेवाकार्य मे खर्च करेगे उससे अधिक कमा लेगे। उनकी भावना दान देने की नही किन्तु धन कमाने की रहती है। यह व्यापार है। सच्ची सेवा नही है। इसे सेवा नही माना जा सकता। क्रिया का फल उससे जुडी भावना के अनुसार मिलता है। क्रिया के परिणाम से नही। यदि ऐसे व्यक्ति दान देते समय धन कमाने की भावना नही रखे तो वे मध्यम से उत्तम सेवाभावियो की श्रेणी मे आ जाते है।

3 अधम (क) दुष्ट प्रकृति

जो व्यक्ति सस्था या समाज मे फूट डलवाने की भावना से काम करते है और फूट डलवा देते है, वे अधम श्रेणी की सेवा करने वाले सेवाभावियो मे आते है।

(ख) बदला लेने की भावना

जो व्यक्ति दूसरो से बदला लेने की भावना से किसी व्यक्ति या समाज की सेवा करता है तो वह भी अधम प्रकृति का व्यक्ति है।

(ग) स्वभाव

जो व्यक्ति समाज को लूटने या डुबाने की भावना से काम करते है वे भी इसी अधम श्रेणी मे आते है।

निष्कर्ष—हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। हम दूसरो के अन्त करण को देख नही सकते। इसीलिए किसी व्यक्ति को किसी श्रेणी मे रखना भयकर भूल है और यह अशुभ कर्म बध का कारण बन जाता है। अत आप विचारिये कि आप स्वय किसी श्रेणी मे है और किन दुर्भावनाओ को छोडकर

उच्च श्रेणी मे आ सकते है। कोई भी व्यक्ति अपनी दुर्भावना को छोड़कर सच्ची भावना से दूसरो की सेवा मे लगे तो वह सिद्ध पद तक पहुँच सकता है क्योकि सेवा एक महान तप है।

क्या परिवार सेवा मोह है ?

कुछ लोग कहते है कि परिवार के साथ रहना, परिवार वालो का पालन-पोषण करना, उनकी सहायता करना, उनकी सेवा करना ये सभी मोह प्रेरित कार्य है। इन कामो मे न सेवा है न अनुकम्पा है। ये सब पाप ही पाप के काम है।

इस सबध मे धारिणी महारानी के गर्भपालन के कार्य को जैन शास्त्रों ने अनुकम्पा बताया है जिसका उल्लेख आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने 'अनुकम्पा विचार' नामक पुस्तक मे किया है कि धारिणी रानी ने अपने गर्भ का पालन मोह से नही वरन् अनुकम्पा से किया था। माताएँ अपने गर्भ का या सतानो का पालन-पोषण केवल मोह से या भविष्य मे सुख पाने की आशा से ही नही करती किन्तु अपनी समझदारी से इन कार्यो को अनुकम्पा के कार्य और कर्म निर्जरा के कार्य भी बना सकती है।

भगवान महावीर ने अपनी गर्भावस्था मे ही जबकि उन्होने थोडी देर के लिए अपनी हलन-चलन की क्रिया को रोक दिया था, जिससे उनकी माता को चिता हो गई कि उनके गर्भ का हलन-चलन बद क्यो हो गया? उस समय गर्भावस्था मे ही उन्होने यह निश्चय कर लिया था कि जब तक मेरी माता जीवित रहेगी तब तक मै दीक्षा नही लूगा। क्या भगवान महावीर का यह कार्य मोहजनित था ? क्या पुत्र का यह कार्य कि माता को चिता न हो मोह प्रेरित है ? क्या यह कर्तव्य नही है ?

कूर्मा पुत्र केवली ने केवलज्ञान प्राप्ति के बाद भी छ महीने तक घर नही छोडा केवल इसी भावना से कि उनके घर छोडने से उनकी माता को दु:ख न हो। क्या केवली की माता को सुख पहुँचाने की भावना मोह से भरी हुई थी ? क्या यह उनका कर्तव्य नही था ?

हम लोग भूतकाल के और वर्तमान के, दूर के और नजदीक के ज्ञात और अज्ञात बहुत से प्राणियों के, किसानो के, जुलाहो के, गुरुजनो के और पशु-पक्षियो के भी हमारी उपलब्धियों के लिए और जो कुछ या जैसे कुछ हम आज है और जो कुछ हमने उन्नति की है क्या उसके लिए हम उनके ऋणी नही है ? क्या हमारा यह कर्तव्य नही है कि हम उनके कर्ज को चुकाये ?

इसमे से कुछ लोग अपने पुराने जन्मो के कर्जो को चुकाने के लिए या वसूल करने के लिए जन्म लेकर या विवाह सबध जोडकर एक परिवार मे आते है। अत परिवार वालो का कर्ज चुकाना अपना कर्तव्य है। इसे यह कहना कि मै परिवार की सेवा कर रहा हूँ भूल है। यह सेवा नही है। इसे हम सेवा कहते है लेकिन यह तो सिर्फ ऋणमुक्ति है। कर्मो के विधान के अनुसार हम इससे बच नही सकते। इसमे कोई रियायत भी नही हो सकती। पिछले जन्मो का कर्ज शत-प्रतिशत माप, तोल और गिनकर पूरा का पूरा चुकाना पडता है। यह कर्ज कर्म अवधि पक जाने पर, कर्मोदय होने पर, कर्ज की देय तिथि आने पर चुकाना पडता है। इसे जो व्यक्ति हस-हस कर चुकाता है वह इस कर्ज से मुक्त हो जाता है और जो हस-हस कर नही चुकाता उसे यह कर्ज रो-रो कर चुकाना पडता है। इस हालत मे जो व्यक्ति इसे सेवा कहता है वह उसकी भूल है क्योकि सेवा इच्छा से की जाती है रो-रो कर नही।

जो व्यक्ति यह समझते है कि ये मेरे भाई है, ये मेरी बहिने है, ये मेरे माता-पिता है या ये मेरे पुत्र-पुत्री है, वह झूठे परिवार के मोह मे फॅसता है। इसे कोई परिवार भले ही समझे किन्तु यह परिवार जैसी बात नही है। यह तो पिछले जन्मो के कर्जो को चुकाने व वसूल करने वाले है।

कुछ लोग सोचते है कि मै परिवार की या समजा की या गरीबो की बहुत सेवा करता हूँ। ऐसे समय मे उसे अहकार न करते हुए यह सोचना चाहिए कि यदि मै नि स्वार्थ भाव से सेवाकृति मे लगा रहा तो मेरे विशेष कर्मो की निर्जरा होगी, जिससे पूर्वकृत अशुभ कर्म टूटेगे। नये शुभ कर्मो का बध होगा।

समझदार लोग इस ऋण मुक्ति कार्य को इस भावना से इसे अनुकम्पा के कार्य मे बदल देते है कि ये परिवार वाले, समजा वाले और दूसरे लोग आत्माएँ है। मेरा कर्तव्य है कि मै सावधानी रखू कि इन आत्माओ को दु ख न हो, कष्ट न हो, इनको असाता न पहुँचे, इनका पतन नही हो किन्तु इनका भला हो, इनको सुख पहुँचे और इसके साथ-साथ इनकी आत्मोन्नति हो। उत्कृष्ट सेवाभावना से तीर्थकर नाम गोत्र कर्म का बध होता है, ऐसा भगवान महावीर ने फरमाया है।

नोट--दूसरो से सेवा कराना कर्जदार बनना है। अत जहाँ तक सम्भव हो अपना कार्य स्वय करना चाहिए।

समता राखोजी

क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।
दु:ख अपने कर्मो से आता
दु:ख आकर कर्मो को धोता
समता रखने से सुख होता
तिर गये गजसुकुमाल, समता धारो जी।।
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।
क्रोधी मर कर साप बनेगा
पाप कर्म वो अधिक करेगा
ऊपर से फिर दंड मिलेगा
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।
गुरु नाना की सीख यही है
समता राखे बडा वही है
बदला ले वो बडा नही है
क्रोध करे वो बडा नही है
क्रोध महा चण्डाल, समता धारो जी।।

संकल्प की कविता

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मै सिद्ध बनूगा।।
समता रखकर कर्म काटकर।
सिद्धो का पद प्राप्त करूगा।।
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा।।
सिद्धो का ही ध्यान धरूगा।
सिद्धो का गुणगान करूगा।।
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मै सिद्ध बनूगा।।
काम क्रोध, मद, मोह छोडकर।
आनन्दघन और अभय बनूगा।।
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
निश्चय ही मैं सिद्ध बनूगा।।

शीलव्रत का पालन

जैनागमो मे शील पालन को बडा महत्त्व दिया है। शील पालन से विजय सेठ, विजया सेठानी ने और सेठ सुदर्शन ने सिद्ध पद प्राप्त किया। जैन साधु-साध्वी, के लिए तो बडे कठोर नियम बनाये गये है। जैन साधु किसी साध्वी, स्त्री या एक माह की लडकी से वस्त्रो द्वारा स्पर्श होने से भी बचता है। इसी प्रकार जैन साध्वी किसी साधु, पुरुष या एक माह के बालक के वस्त्रो द्वारा स्पर्श होने से भी बचती है। यदि भूल से या असावधानी से वस्त्रो द्वारा भी स्पर्श हो जाता है तो उन्हे दड प्रायश्चित लेना पडता है।

यह शरीर से द्रव्य शील पालन हुआ। मन से भाव शील पालन मे पुरुष वृद्ध पर-स्त्री को माता, छोटी बालिका को पुत्री अपने समान उम्र वाली स्त्री को बहन के समान समझे। इसी प्रकार स्त्रियॉ वृद्ध पर-पुरुष को पिता, छोटे बालको को पुत्र और अपने समान उम्र वाले पुरुषो को भाई के समान समझे। यह पिता-पुत्र, भाई की भावना और माता-पुत्री, और बहिन की भावना पुरुष और स्त्रियो को शील पालने मे बहुत सहायक होती है। अत ये मेरे पिता-पुत्र भाई है या मेरी मात-पुत्री बहिने है इस भावना को बार-बार दोहराने से, इसका बार-बार चितन-मनन करने से और इसका जप करने से ये भावनाएँ अचेतन मन मे बैठ कर साधको को दृढ शीलव्रतधारी बना सकती है। शील पालन के लिए कोई भी स्त्री किसी पर-पुरुष के और कोई भी पुरुष किसी पर-स्त्री के शरीर, चेहरे और विशेष कर उसकी ऑखो की ओर और उनके 1 चित्रो को नही देखे, नही देखे, नही देखे। 2 उनके पास नही बैठे। 3 नही ठहरे। 4 जरूरी कार्य के बिना उनके पास नही रहे। 5 उनसे अनावश्यक बाते या हॅसी-मजाक नही करे। 6 एकात मे उसके साथ नही ठहरे। 7 जब कभी उनसे मिलने का मौका पडे तो माता-पुत्री बहिन की भावना या पिता-पुत्र भाई की भावना को रटते रहे या, 8 विजय सेठ, विजया सेठानी की शीलपालन की घटना को याद करते रहे। 9 उत्तेजक पदार्थो के सेवन और शृगार से बचकर सादा जीवन शील पालन मे बडा सहायक है।

पश्चात्ताप की विधि

अपने पूर्वकृत पापो का पश्चात्ताप तीन चरणो मे किया जा सकता है। प्रथम चरण मे–1 घटना की स्मृति एव मन मे खेद, 2 अपना दोष देखना, 3 भगवान से सुबुद्धि की प्रार्थना।

द्वितीय चरण मे–क्षमायाचना, 2 दोनो साक्षात् मिलने पर पुन क्षमायाचना, 3 दड प्रायश्चित लेना। तीसरे चरण मे–1 सावधानी रखना 2 उसी पाप के दुबारा होने पर दुगुना प्रायश्चित करना, 3 इस अवगुण को दूर करने के लिए किसी महापुरुष की घटना का हमेशा दस-बीस मिनट तक स्वाध्याय करना।

प्रथम चरण–स्मृति खेद और प्रार्थना

1 व्यक्ति श्री . .. को उस दिन मुझसे जरा-सा धक्का लग गया जिससे वह बहुत नाराज हुए और मुझसे लडने लगे। मैने भी समताभाव खो दिया और मै उनसे लडने लगा। इतने मे ही दो-चार भले व्यक्ति आ गये। उन्होने मीठे शब्दो से हम दोनो को समझाकर झगडा शांत किया अन्यथा झगडा बढ जाता।

2 यह मेरी भूल थी। मैने सावधानी नही रखी इसीलिए उन्हे धक्का लगा। उनका कोई दोष नही था। अत. मुझे चुप रहना चाहिए था। मैने अपना सतुलन खो दिया। मुझे क्रोध आ गया। मै लडने लगा था। मैने बहुत बुरा किया। मै आज इसके लिए पश्चात्ताप कर रहा हूँ। मुझे अपने दोष को देखना चाहिए था। मुझे पूर्ण समता रखनी चाहिए थी। मुझे अपनी गलती पर पश्चात्ताप करना चाहिए था। मुझे उनसे क्षमा मॉगनी चाहिए थी। मैने ऐसा कुछ नही करके उल्टा उनसे झगडा किया। यह मेरी भयकर भूल थी।

3 मै भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वह मुझे सुबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक् ज्ञान दे, समता रखने की शक्ति दे और सामने वाले व्यक्ति से क्षमा मॉगने की ताकत दे।

द्वितीय चरण क्षमायाचना और प्रायश्चित

1. मै आज उस व्यक्ति श्री से अपने अपराध के लिए क्षमा मॉगता हूँ। वे क्या उनकी आत्मा जहॉ कही भी हो मुझे मेरे अपराधो के लिए क्षमा करे।

2 यदि उनसे मेरा साक्षात् मिलना होगा तो मै इस अपराध के लिए उनसे क्षमा मॉगूगा।

3 इस पाप के प्रायश्चित के रूप मे एक या दो या तीन दिन के लिए नमक, घी, या मीठा या फल का त्याग करता हूँ एक, दो या तीन आयम्बिल

या एक उपवास तप करूगा। यदि सम्भव हो तो धर्मगुरु या श्री आचार्य भगवन् को घटना बताकर दड प्रायश्चित लूगा।

तृतीय चरण भविष्य में सावधानी रखना–

1 भविष्य मे मै पूरी सावधानी रखूगा कि मुझसे ऐसा काम न हो।

2 यदि मुझसे कभी ऐसा अपराध होगा तो मै इस पाप को नष्ट करने या हल्का करने के लिए दुगुना प्रायश्चित लूगा।

3 इस अवगुण को दूर करने के लिए मै मुनिश्री गजसुकुमाल, मुनिश्री मैतार्य, मुनिश्री अर्जुनमाली आदि की समताओ की घटनाओ का प्रतिदिन स्वाध्याय करूगा।

ऊपर नमूने का एक उदाहरण दिया गया है। पश्चात्ताप करने वाला व्यक्ति अपनी सुविधा के अनुसार इसे घटा-बढा या बदल सकता है।

स्वाध्याय के सूत्र

इन सूत्रो को आप प्रतिदिन बार-बार दोहराइये और इनके अर्थ पर चितन करिये जिससे ये अवचेतन मन मे बैठ सके और स्थिर भावनाएँ बन सके।

1 सेवा–परिवार के लोगो को मेरा भाई है, ऐसा नही समझकर यह केवल आत्मा है, ऐसा मानकर अनुकम्पा भाव से उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

2 दड–किसी को इसके अपराध के लिए दड देने का अधिकार मुझे नही अपितु कर्मो को है।

3 क्रोध–दु ख अपने अशुभ कर्मो से मिलता है, उसमे निमित्त बनने वाले को दोष क्यो दू ? उस पर क्रोध क्यो करू, उससे लडाई क्यो करू ? वह तो मेरे कर्मरोग काटने की अचूक दवा देने वाला मित्र है। उपकारी डॉक्टर है। परमात्मा उसका भला करे।

4 दु ख–(क) दु ख मुझे अशुभ कर्मो से मिलता है। समता रखने से यह मेरे कर्मरोग काटने की दवा बन जाएगा। इस दवा को दु ख मानना और रोना भूल है, पाप है। (ख) दु ख कर्मो की निर्जरा कराता है, अज्ञान को हटाता है। मोह को हटाता है और धर्म मे श्रद्धा पैदा कराता है। यह उपकारी शिक्षक है।

5 अहकार--(क) दूसरो को दु ख देने या सुख देने की शक्ति केवल कर्मो मे ही है, मनुष्य मे नही। किसी को किसी का बुरा करके या भला करके अहकार करना भूल है। (ख) मनुष्य अपने बचपन मे, रोग अवस्था मे बुढापे मे और अशुभ कर्मो के उदय के समय मे स्वय अपने-आप को सँभाल नही सकता, उसका अहकार करना भूल है। (ग) अहंकार से शुभ कर्मो का फल मिलना भी रुक जाता है। अहकार के कारण बाहुवलीजी को केवलज्ञान की प्राप्ति रुकी रही। (घ) मनुष्यो के अशुभ कर्मो के उदय के समय कृष्ण या महावीर जैसे महापुरुषो का बल भी काम नहीं करता फिर मनुष्य का अहकार करना भूल है।

6 दुर्भावना (क) दुर्भावना से नरक व सद्‌भावना से मोक्ष या स्वर्ग मिलता है। (ख) भगवान सबको सुबुद्धि दे, सुमति दे, सम्यक्‌ज्ञान दे, सबका भला हो। इस सूत्र को जपने से दुर्भावना मिट जाती हैं।

7 भौतिक या शारीरिक सुख--(क) सच्चा सुख तो मोक्ष मे है। (ख) शरीर की इन्द्रियो से मिलने वाले भौतिक सुख से शरीर कमजोर होता है। रोग आ घेरते है और कभी-कभी अकाल मृत्यु भी हो जाती है। (ग) जैनागम कहते है कि थोडे समय का भौतिक सुख भी बहुत समय तक दु.ख का कारण बनता है।

8.,धन का लोभ (क) धन से भौतिक सुख कम मिलता है और दु ख अधिक मिलता है। (ख) लोभ सब पापो और दु खो की जड है।

9. परिवार मोह--(क) मोह छोड मोक्ष मिलेगा। सब दु ख दूर होंगे। (ख) सब प्राणी केवल आत्माएँ है। (ग) कोई किसी का अपना न हुआ, न होगा। सब प्राणी अलग-अलग आत्माएँ है, मोह छोडो। (घ) दु ख दूर करने सुख देने की शक्ति केवल शुभ कर्मो मे ही है। तुम्हारे या परिवार के हाथ मे नही है। मोह और चिता छोडो। (ड) कर्ज चुकाने के लिए परिवार या दूसरो की अनुकम्पा भाव से सम्यक् सेवा करते समय यह सोचना चाहिए कि ये सब प्राणी केवल आत्माएँ है। अलग-अलग आत्माएँ हैं। ये न अपने है न पराये है।

10 इच्छा--इच्छाओ को रोको। इच्छाएँ कभी पूर्ण नही होती है। इच्छा निरोध महातप है। यह मोक्ष का मार्ग है।

11 विकथा--विकथा को छोडकर ताप, शरीर, शील, तप, समताभाव आदि की कथाओ को पढो, सुनो, सुनाओ और लिखो।

12 माया–सत्य व्रतधारी अर्थात् मन, वचन, काया की सरलता वाला देवताओ से सहायता पाता है और वह मोक्ष या स्वर्ग पा सकता है।

13 शील–परस्त्री (मेरी) माता या पुत्री या बहनो के समान है। (ख) उसके अवगुण नष्ट होते है और गुण प्रकट होते है।

14 गुण दर्शन–दूसरो मे गुणो को देखने वाले का अहकार दूर होता है और उसमे विनय भाव पैदा होता है।

15 देह–आत्मभेद ज्ञान या आत्मा भावना यह शरीर अलग है और मैं (आत्मा) अलग हूँ। शरीर का सुख-दु ख मेरा (आत्मा) का सुख-दु ख नही है। इस सूत्र को बार-बार जपने से इस भावना के अचेतन मन मे बैठ जाने से दु खानुभूति मिट सकती है।

16 सिद्धो का ध्यान–"णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

देहासक्ति से मुक्ति

सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए सब कर्मो की निर्जरा आवश्यक है और सब कर्मो की निर्जरा तभी सम्भव है जब देह की आसक्ति छूट जाये और काया-कष्ट, समताभाव से सहन किया जा सके। ऐसी सहन-शक्ति दो प्रकार से प्राप्त होती है–1 अभ्यास से और 2 भावना से।

1 सहन-शक्ति प्राप्त करने के लिए नवकार मत्र से पोरसी, एकत, उपवास, आयबिल आदि तप किया जा सकता है। 2 अपने सभी काम अपने हाथ से करके स्वावलबी बना जा सकता है। 3 जो काम अपने शरीर से हो सके, उसके लिए मशीनो का प्रयोग कम से कम किया जाये। 4 शीत ताप, भूख-प्यास, मक्खी-मच्छर आदि के उपद्रव समताभाव से सहन किया जाये। 5 घर के सभी कार्यो मे परिवार की सहायता श्रम पूर्वक कष्ट अनुभव किए बिना की जाए। रोग आदि मे कष्ट को समताभाव से सहा जाए। और 6 उपसर्गो व कष्टो को समतापूर्वक सहन किया जाए।

सहनशक्ति बढाने का दूसरा और प्रभावशाली उपाय है–भावना द्वारा देह की आसक्ति को तोडना और सहनशक्ति बढाना। इसके लिए स्वाध्याय किया जा सकता है। इसके लिए सूत्र इस प्रकार है–

1 शरीर अलग है और मै (आत्मा) अलग हूँ।

2 शरीर मेरा नही है। यह नाशवान है।

3 उपसर्ग और काया कष्ट समताभाव से सहन करने से देहासक्ति टूट जाती है।

4 मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य आदि की समता भावना और क[illegible] कष्ट सहने की घटनाओ का अध्ययन, चितन मनन और स्वाध्याय [illegible] जाये।

5 उपसर्ग या कष्ट के समय केवल यही भावना दोहराता रहे [illegible] मेरा पाप कट रहा है, कटने दो। या

6 मेरे कर्मो की निर्जरा हो रही है, होने दो।

इन अन्तिम दो सूत्रों का चितन करने से कष्ट भुलाया जा सकता है।

इस प्रकार अभ्यास और भावना से, सहनशक्ति बढने से काया [illegible] समता भाव से सहन किया जा सकेगा, जिससे कर्मो की निर्जरा होगी [illegible] आत्मा की शुद्धि व सिद्ध-पद की प्राप्ति होगी।

सच है कि "यह शरीर किसी प्राणी का अपना न हुआ है न होगा।

भाव तरंगों की शक्ति

दवा शरीर का रोग दूर करती है और केवल शुद्ध भाव तरगे शरीर का रोग और चरित्र के दोष दोनो को दूर करती है। प्राणी के शुभ कर्मो [illegible] उदय होने से ही दवा काम करती है। भाव तरगे उस समय असफल होती है, जब भाव तरगे भेजने वाले व्यक्ति की–1 भाव तरगो के सबध मे पूर्ण जानकारी नही हो। 2 भाव तरगे भेजते समय एकाग्रता की कमी हो। 3 भाव तरगो की शक्ति मे पूर्ण श्रद्धा नही हो। 4 वह धैर्य न रखकर सफलता होने से पूर्व ही उसे छोड दे।

एकाग्रता श्रद्धा और धैर्य से भाव तरगो की शक्ति बढ जाती है। अणु से परमाणु मे, स्थूल से सूक्ष्म मे और दवा से भाव तरगो मे अधिक शक्ति होती है। क्रोधी मित्र को लगभग अर्द्धरात्रि के समय जबकि उस क्रोधी मित्र के नीद मे होने की सम्भावा हो, ये भाव तरगे भेज सकते है–"मित्र (उसका नाम लीजिए) क्रोध छोडो समता धारो।" या "भाई ! (उसका नाम लीजिए, तुम स्वस्थ हो, निरोग हो, तुम्हारा रोग दूर हो रहा है।" भाव तरगे भेजते समय इस बात का ध्यान रखे कि मानो आप उसके कान मे ही कह रहे हो जिससे कि एकाग्रता बनी रहे।

कषाय - मुक्ति चौथा भाग

आदर्श सेठ

प्राचीन काल मे दिल्ली नगर मे धर्मदास नाम का सेठ रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढा हुआ तो उसने कुछ धन अपने पुत्रो मे बॉट दिया और कुछ धन अपने पास रख लिया। जब वह किसी व्यक्ति को आर्थिक दृष्टि से कमजोर देखता तो वह गुप्त रूप से पॉच हजार रुपये दे देता और उसे ईमानदारी से व्यापार करने को कहता। इस प्रकार उसने बहुत से लोगो के जीवन निर्वाह और आत्म उत्थान मे सहयोग दिया।

जब वह बीमार हुआ तो जिन लोगो की धर्मदास ने मदद की, उनमे से कुछ लोग रुपये लौटाने के विचार से आए तो सेठ धर्मदास ने उनकी बाते सुनकर उनसे कहा–"भाई साहब यदि आप अपने ऊपर मेरा एहसान मानते है तो मेरी एक बात मानिये। यह रुपये आप मुझे न देकर धरोहर के रूप मे अपने पास रखिए और गुप्त रूप से जितने व्यक्तियो की सहायता कर सके, करे। यही मेरी सच्ची सेवा है और सच्चा धर्म है।"

आये हुए सभी लोगो ने यह प्रण किया कि आपके बताए हुए आदर्श मार्ग पर चलकर हम दूसरो के जीवन निर्वाह, ज्ञान प्राप्ति और आत्मोन्नति मे निमित्त बनने की पूर कोशिश करेगे।

यह सुनकर सेठ धर्मदास ने एक गहरी सास ली और बोले–मैने देखा है जिस घर मे गरीबी और भूखमरी आ जाती है वह घर लडाई-झगडे का घर बन जाता है, उसमे मारपीट होने लगती है। यहॉ तक कि आत्महत्या या दूसरो की हत्या तक क्रोध मे कर दी जाती है। वह घर हिसा का घर बन जाता है और सबके भारी कर्म बधते है। ऐसे घर को गुप्त रूप से मदद देने वाला, उस घर को स्वर्ग और धर्मस्थानक-सा बनाने मे निमित्त बन कर स्वय भी महापुण्य का भागी बनता है। गुप्तदान ससार मे एक महान सेवा तप है।

मुनि गजसुकुमाल

बहुत पुरानी बात है। एक पुरुष के दो पत्नियाँ थी। वे दोनो समझदार थी और मिल-जुलकर प्रेम से रहती थी। कुछ वर्षो के बाद छोटी बहू के पुत्र हुआ जिससे घर मे उसका मान-सम्मान बढ गया। यह बात बडी बहू को बुरी लगी और उसने उस पुत्र को मारने का विचार किया।

एक बार उस लडके के सिर मे बडे-बडे फोडे हो गए। छोटी बहू भोली-भाली और सीधी-सादी थी। उसने पुत्र की दवा का काम बडी बहू पर छोड दिया। बडी बहू ने उस पुत्र को मारने के विचार से जान-बूझकर आटे की एक बहुत गर्म रोटी उस लडके के सिर पर बॉध दी जिससे वह लडका मर गया। आगे जाकर उस बडी बहू का जीव निन्यानवे लाख जन्मो के बाद द्वारिका नगरी मे महारानी देवकी के गर्भ से पुत्र रूप मे जन्मा और उसका नाम रखा गया गजसुकुमाल। छोटी बहू का वह लडका मर कर ससार मे भटकता हुआ द्वारिका नगरी मे एक ब्राह्मण के घर मे पैदा हुआ और उसका नाम रखा गया सोमिल। इसी सोमिल ने अपने पुराने वैर का बदला लेने के लिए मुनि गजसुकुमाल के सिर पर श्मशान भूमि मे अगारो को रखकर अपना बदला लिया।

कहा जाता है कि गजसुकुमालजी जब सोलह वर्ष के हुए तब एक दिन वे हाथी पर बैठकर श्रीकृष्णजी के साथ भगवान तीर्थकर श्री नेमिनाथजी के दर्शन करने गए। रास्ते मे सोमिल की पुत्री सोमा खेल रही थी। वह बहुत सुन्दर थी अत श्रीकृष्णजी ने सोमिल ब्राह्मण से सोमा का विवाह गजसुकुमाल के साथ करने की बात कर उसे विवाह से पहले ही राजमहल मे भिजवा दिया। उधर तीर्थकर नेमिनाथजी की वाणी सुनने से गजसुकुमाल को वैराग्य हो गया। उन्होने तुरन्त ही दीक्षा ली और भगवान नेमिनाथजी से शीघ्र मोक्ष पाने का मार्ग पूछकर उनसे आज्ञा लेकर श्मशान भूमि मे चले गए। उसी समय सोमिल भी वहाँ आया। अपनी लडकी को इस प्रकार छोड़ देने के कारण मुनि गजसुकुमाल के ऊपर सोमिल को बहुत क्रोध आया और उसने गजसुकुमाल के सिर के ऊपर भीगी मिट्टी की पाल बाँधी और पास ही जलते हुए मुर्दे की एक चिता से जलते हुए अगारे उठाए। उन्हे गजसुकुमालजी के सिर पर रखा और चला गया। मुनि गजसुकुमालजी क्षमा और समता की साक्षात् मूर्ति थे। वे ध्यान मे लीन हो गए। उनके ध्यान का मुख्य भाव यह था—स्वयं के किए हुए कर्मो से ही सुख-दु:ख की प्राप्ति होती रहती है, जरूर किसी जन्म का वैर सोमिल के साथ रहा होगा तो

उसने ऐसा बर्ताव किया है, इस वक्त मै यदि समभाव रखूगा तो मेरे कर्मो का नाश होगा, ऐसा ही हुआ। उन्होने समस्त कर्मो का नाश कर मुक्ति पा ली।

किया स्वय का स्वय ही पाता।
क्रोध दु ख मन मे क्यो आता।।

दृढ प्रहारी

कभी-कभी महाहिसा करने वाले प्राणी भी अपने पूर्वजन्म मे किए हुए अच्छे कर्म के प्रभाव से अचानक उसी जन्म से मोक्ष पहुँचने वाले मुनि बन जाते है। यही बात दृढ प्रहरी के साथ घटी। वह अचानक ही चोर और हत्यारे दृढ प्रहारी से समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ प्रहारी बन गए। दृढ प्रहारी एक अच्छे घर मे उत्पन्न हुए थे। वे अपने माता-पिता के साथ कभी-कभी साधु-साध्वियो के दर्शन करने और उनके प्रवचन सुनने भी जाते थे। किन्तु कुसगति के कारण वे शराब पीने, चोरी करने लगे और विरोध करने वाले की हत्या कर देते थे। इस कारण घर से निकाल दिए गए। उसके बाद वे चोर-डाकू बन गए। एक दिन वे डाका डालने के लिए एक ब्राह्मण के घर गए। घर मे एक गाय खुली थी। वह रम्भाने (रेकने) लगी। दृढ प्रहारी ने सोचा कि लोग जग जायेगे, तो उसने एक ही चोट मे उसके सिर को धड से जुदा कर दिया। इसी समय बाहर से ब्राह्मण आया। पकडे जाने के भय से दृढ प्रहारी ने उसे भी मार दिया। उसके बाद दृढ प्रहारी अन्दर गया, तब ब्राह्मणी ने कहा–"तूने मेरी गाय को मार दिया, तूने मेरे पति को मार दिया, अब तू मुझे क्यो जिन्दा छोडता है। मै क्या खाऊगी, मै किसके सहारे रहूगी ?" तब दृढ प्रहारी ने सोचा कि कही यह शोर न मचा दे। इसलिए उसने उसे भी मार दिया। सगर्भा ब्राह्मणी तो मर गई परन्तु तलवार के साथ गर्भस्थ बालक टुकडे-टुकडे होकर बाहर निकलकर गिर गया। इस हत्या को देखकर दृढ प्रहारी का हृदय काप उठा। तलवार उसके हाथ से छूट गयी। वह विचारने लगा–"हाय-हाय ! मैने चार हत्याएँ कर डाली। मैने पहले भी बहुत हत्याएँ की है, अनेक बच्चो को अनाथ किया है, महिलाओ को वैधव्य का दु ख दिया है, लोगो का धन लूट कर उन्हे दाने-दाने के लिए मोहताज बनाया है। मेरा इन पापो से छुटकारा कब और कैसे होगा ?"

दृढ प्रहारी ने पहले बहुत अच्छे कर्म किए होगे। उन कर्मो के उदय से उसके विचार एकदम बदल गए और उसने हत्यारे दृढ प्रहारी से मुनि

दृढ प्रहारी बनने का सकल्प कर लिया। दृढ प्रहारी ने सकल्प किया-

1 मै सिद्ध पद प्राप्त करूगा। 2. मैं मेरे किए हुए पाप कर्म का प्रायश्चित करूगा और उसका फल भोगूंगा। 3 नगर के दरवाजे के पास खडा रहकर भूख, प्यास, शीत, तप सहन करूंगा। 4 इस रास्ते से आने वाले लोगों का मैने अपराध किया है। उनके और दूसरे लोगो के भी कटु वचनो, गालियों, थपडो और मुक्को को सहन करता हुआ समता रखूंगा और कर्मो का काटूंगा। यह शरीर अलग है और मै अलग हूँ, फिर इस शरीर के कष्टों को अपना दु:ख मानकर मैं नवीन कर्म नही बाधूँगा। 5 मैं दिन भर प्रभु के भजन मे, सिद्धो के ध्यान मे और ज्ञान के स्वाध्याय मे लीन रहूंगा जिससे मुझको लाभ होगा। प्रथम तो इससे शरीर के कष्ट भूलने मे सहायता मिलेगी, दूसरे प्रभु के ध्यान से सभी पाप नष्ट होगे। मेरी इस वर्तमान स्थिति मे यही समीक्षण दृष्टि है और सक्षेप मे मेरे लिए यही समीक्षण ध्यान है, जिससे मै सिद्ध पद प्राप्त करूगा।

बाहुबलीजी ने तो अह भाव से 12 महीने तक तप किया था किन्तु दृढ प्रहारीजी ने अहकार छोडकर 5 महीने तक समीक्षण ध्यान किया और केवलज्ञान प्राप्त किया। अन्त मे समीक्षण ध्यानी मुनि दृढ प्रहारी ने देह त्याग कर सिद्ध पद प्राप्त किया।

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
आनन्दघन और अभय बनूगा।।
आत्मा हूँ मै, देह भिन्न हूँ।
दु:खी नही हूँ, आनन्दघन हूँ।।
नमो सिद्धाण, नमो सिद्धाण।
नमो सिद्धाण, नमो सिद्धाणं।।

मुनि अर्जुनमाली

जिस अर्जुनमाली ने एक हजार एक सौ इकचालीस मनुष्यो की हत्या की, वह अर्जुनमाली भगवान महावीर के पास दीक्षा लेकर मुनि अर्जुनमाली बन गया और समीक्षण ध्यान से मोक्ष प्राप्त कर लिया। प्रथम उसने निश्चय किया कि मुझे सिद्ध पद प्राप्त करना है। दूसरी बात वह अपने पापों को याद करके उनके लिए पश्चात्ताप करता है। तीसरी बात, वह सोचता है- "मैने बहुत लोगो को दु:ख दिया, अनाथ बनाया, बरबाद किया, बहुतों की हत्या की, अनेक घर उजाडे। फिर भी ये लोग बडे दयालु दिखते है। मुझे थोडा-सा दंड देकर छोड देते है। मै स्वयं ही स्वयं के किए का फल पा

रहा हूँ। ये मुझे हल्का-सा दड देने वाले, तो केवल निमित्त बने है। इन पर क्रोध क्यो करू ? मुझे यह जो हल्का काया-कष्ट मिल रहा है, वह भी तो मैंने स्वय ने ही मोल लिया है। इससे तो मेरे कर्म कट रहे है फिर इसे दु ख क्यो माना जाए, समभाव से सारे कर्म कटते है–

किया स्वय का, स्वय ही पाता।
क्रोध दु ख मन मे क्यो आता।।

मुनि अर्जुनमाली ने उपर्युक्त भावना का स्वाध्याय करीब छ महीने तक किया जिससे उनका क्रोध समूल नष्ट हो गया, दु खानुभूति बिलकुल मिट गई और वे आनन्दघन बनकर सिद्ध बन गये। आनन्दघन का अर्थ है– जिसको आनन्द ही आनन्द हो, कोई दु ख न हो।

आत्मा हूँ मै, देह भिन्न हूँ।
दु खी नही मै, आनन्दघन हूँ।।

मृगा पुत्र (मृगा लोढा)

एक राजा था। उसका नाम विजयवर्द्धन था। वह बहुत बुद्धिमान और धर्मात्मा था। उसकी रानी मृगादेवी बहुत समझदार और धर्मात्मा थी। उनके एक पुत्र था। उसका नाम था मृगा पुत्र। उसके हाथ, पैर ऑख, कान नही थे। वह एक गुप्त स्थान मे पडा रहता था। वही पर वह खाता-पिता था। वही पर मल-मूत्र त्याग करता था। रानी उस कमरे की सफाई का पूरा ध्यान रखती थी। किन्तु फिर भी वहाँ इतनी बदबू आती थी कि उस कमरे मे आने वाले को नाक पर कपडा रखना पडता था। राजा और रानी दोनो ही मृगापुत्र की इस दशा पर दु खी थे। मृगापुत्र ने अपने पूर्व जन्मो मे बडे-बडे पापो का सचय किया था, जिससे उसको ऐसा शरीर मिला जिसकी चिकित्सा होना सभव ही नही था।

भगवान महावीर के मुँह से मृगापुत्र का वृतान्त सुनकर गणधर गौतम स्वामी, महावीर भगवान की आज्ञा लेकर उसे देखने के लिए राजमहल मे पधारे। राजा और रानी ने गौतम स्वामी को देखकर हाथ जोडकर सिर झुका कर नमस्कार किया और उनसे निवेदन किया–"आज हमारे महाभाग्य है कि आपने पधार कर हमारा घर पवित्र किया। गौतम स्वामी ने मृगादेवी के पुत्रो को देखने की इच्छा प्रकट की तब मृगादेवी ने अपने स्वस्थ ओर सुन्दर पुत्रो को लाकर दिखाया, तब गौतम स्वामी ने कहा–"देवानुप्रिय ! मै तुम्हारे उस पुत्र को देखना चाहता हूँ जिसका शरीर विकृत है। तब रानी उन्हे आदरपूर्वक उस गुप्त स्थान मे ले गई जहाँ मृगापुत्र बैठा था। गौतम

स्वामी ने मृगापुत्र को देखा और वे कर्मो की विचित्र गति पर मन ही मन कुछ विचारने लगे। गौतम स्वामी के चले जाने पर रानी महलो मे आई उस समय उसे बहुत उदास देखकर राजा ने रानी से कहा—"न तुम न कोई भी प्राणी अपने कुटुम्ब वालो के या अन्य किसी भी प्राणी के लिए अशुभ कर्मो को शुभ कर्मो में और दु ख को सुख मे बदलने की शक्ति नही रखता है। मृगापुत्र ने पूर्व जन्मो मे महाअशुभ कर्म किए होगे इसीलिए उसने ऐसा शरीर पाया है। इसका फल उसे ही भोगना पडेगा।"

यदि एक प्राणी दूसरे प्राणी के अशुभ कर्मो को शुभ कर्मो मे बदल सके और दु खी को सुखी बना सके तो आज ससार मे कोई दु खी नही रहता।

कर्म कुटुम्ब के, बदल न सकता।
चिन्ता मोह मै, व्यर्थ ही करता।।

इस प्रकार का स्वाध्याय करने से प्राणी सिद्ध पद पाने की ओर बढता है।

नोट 1—मृगापुत्र अपने पूर्व जन्मो मे अधर्मभाषी, अधर्मानुरागी, प्राणियो को मारने वाला, अधिक ब्याज लेने वाला हत्यादि के अपराध लगा देने वाला रिश्वत-घूसखोरी आदि कार्य करने वाला था। जैसा कि पुस्तक "विपाक सूत्र" के पृष्ठ स 17,18।

नोट 2—एक परिवार मे एक सोलह वर्ष की लडकी है जिसके हाथ व पैर काम नहीं करते है। उसके माता-पिता ने बहुत कोशिश की, डॉक्टर से इलाज करवाया। मगर वे अपनी लडकी को इस काबिल नही बना सके कि वह चल फिर सके।

नोट 3—एक परिवार मे एक 25 वर्ष का लडका जिसका दिमाग काम नही करता। वह लडका आधा पागल-सा है।

अनाथी मुनि

जिन महापुरुष की यह कहानी है उनका नाम था अनाथी मुनि। उनके पिता बहुत धनवान थे। वह धर्म के भी पूरे जानकार थे। श्री अनाथी मुनि की माता भी बहुत समझदार व दयालु थी। उनके पिता ने अनाथी मुनि को बहुत पढाया और वे धर्म के महापडित हो गये।

एक बार अनाथी मुनि के ऑखो मे बहुत जोर का दर्द हुआ। उनके पिता ने दूर-दूर के स्थानो से बडे-बडे प्रसिद्ध वैद्य बुलाये और कीमती दवा दी। इस पर बहुत धन खर्च हुआ। उनके पिता ने मत्र जानने वालो को भी

बुलाया लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनके माता-पिता, भाई-बहिन भी दिन-रात उनके दर्द को दूर करने का उपाय करते रहे लेकिन वे भी कुछ न कर सके। उनकी पत्नी भी ऑखो से ऑसू बहाते हुए उनकी सेवा मे लगी, लेकिन कोई भी ऑखो का दर्द नही मिटा सका।

यह तो उनके पूर्वजन्म मे किये हुए पाप का फल था जो अब उदय मे आकर उनको दु ख दे रहा था। कोई भी प्राणी किसी दूसरे प्राणी के कर्म रोग को मिटाने की शक्ति नही रखता।

शक्ति है केवल निज कर्मो मे।
दु ख देने की पाप कर्म मे।
अशुभ कर्म जब उदय मे आता।
अन्य कोई सुख दे नही पाता।।

कर्मो के रोग धन से या किसी भी अन्य पुरुष से मिटाये नही जा सकते। यदि कोई एक पुरुष दूसरे पुरुष का रोग या दु ख दूर कर सकता तो आज ससार मे एक भी प्राणी रोगी या दु खी नही रहता। कर्मो का रोग, दान, शील, तप आदि बडी-बडी उत्कृष्ट भावनाओ और वैसी ही क्रियाओ से मिट सकता है। एक रात्रि के समय अनाथी मुनि ने गृहस्थ अवस्था मे सकल्प किया—यदि मै इस दु ख से छुटकारा पा लूगा तो मै दीक्षा लेकर पूर्ण समता रखकर परमात्मा पद पाने की कोशिश करूगा।

सवेरे उनके नीद से जागने पर उनके परिवार वालो को बहुत आश्चर्य हुआ कि जो रोग दवाओ से नही गया, वह अचानक दूर कैसे हो गया तो उन्होने जवाब दिया कि दु ख और रोग उत्कृष्ट भावना, धर्म की भावना और धर्म करने से दूर होता है, अब मै दीक्षा लेकर अपनी आत्म-शुद्धि करूगा।

उनके घर वालो ने उनको बहुत समझाया कि घर मे रहकर कुछ दिन तक माता-पिता की सेवा करो लेकिन उन्होने अपने माता-पिता से कहा कि कोई किसी का नाथ नही बन सकता और किसी का दु ख दूर नही कर सकता। प्राणी स्वय ही अच्छे कर्म करके अपना नाथ बन सकता है। ससार मे सब अलग-अलग है। कोई किसी का अपना हमेशा के लिए नही बन सकता क्योकि अलग-अलग मनुष्यो के अलग-अलग कर्म होते है। वे कर्म उनको हमेशा साथ नही रहने देते। पुराने जन्मो का परस्पर लेन-देन समाप्त हो जाने पर उनके कर्म उनकी मृत्यु से पहले ही उन्हे अलग-अलग कर देते है और मृत्यु तो उनको अपना बनने ही नही देती।

कोई किसी का हुआ न होगा।
कर्म साथ नही रहने देगा।।

अनाथी मुनि ने दीक्षा लेकर अपना और अनेक मनुष्यो की आत्मा का उद्धार किया।

शक्ति है केवल निज कर्मो मे
सुख देने की शुभ कर्मो मे
दु.ख देने की पाप कर्म मे
अशुभ कर्म उदय जब आता
अन्य कोई सुख दे नही पाता
कर्म पुत्र को दूर हटाता
कर्म पिता को शत्रु बनाता
शक्ति है केवल निज कर्मो मे।

चण्डकौशिक

भगवान महावीर के जीवन काल की घटना है। एक साधुजी थे। वे तपस्या तो बहुत करते थे लेकिन स्वभाव के चिडचिडे और क्रोधी उनके एक शिष्य था जो बहुत वाचाल था और गुरुजी की छोटी-छोटी गलती पर उन्हे प्रायश्चित कराता रहता था। इससे गुरुजी का क्रोध अधिक तेज हो जाता। एक दिन गुरुजी अपने शिष्य के साथ आहार के लिए गोचरी पधारे। रास्ते मे गुरुजी का पैर एक मेढक पर पड शिष्य ने कहा–"गुरुजी आपके पैर से दबकर यह मेढक मर गया, लिए प्रायश्चित कीजिए।" गुरुजी ने कहा–"मेढक मेरे पैर से नही है।" गृहस्थो से भोजन लेकर जब दोनो अपने स्थान मे पहुँचे तो गु को प्रायश्चित लेने के लिए चेले ने फिर कहा कि मेढक आपके पैर से था, आप प्रायश्चित ले लो लेकिन गुरु ने कहा मेढक मेरे पैर से नही है, प्रायश्चित लेने की कोई जरूरत नही है। शाम को प्रतिक्रमण के जब चेले ने प्रायश्चित लेने की बात फिर दोहराई तो गुरुजी को बहुत आया और गुरुजी ओघे का डडा लेकर चेले को मारने उठे। खिड छज्जा बहुत नीचे था और गुरुजी के तेजी से उठने के कारण उनका पत्थर से टक्करा गया और उसी समय उनका देहान्त हो गया। म देव बने। वहाँ की आयु पूर्ण कर मनुष्य अवस्था प्राप्त की और तापस मे तापस बन गया। उसका नाम कौशिक था। परन्तु वह बडा ही क्रो उसकी चण्ड प्रकृति के कारण सब उसे चण्डकौशिक कहते थे। उस

क्रोधी स्वभाव के कारण आश्रमवासी उसे अकेला छोडकर अन्यत्र चले गये। वह अकेला रहता था। एक बार एक राजकुमार ने उसे चिढाया, जिससे वह चिढ कर उसे मारने के लिए दौडा। वह क्रोध मे बेभान था और गड्ढे मे गिरकर मर गया।

क्रोध से मरण के कारण वह सर्प बन गया और जगल मे मार्ग के पास ही एक बिल मे रहने लगा, जो कोई मनुष्य उस रास्ते से जाता उसे वह सर्प विष दृष्टि से देखता और उसके देखते ही व्यक्ति मर जाता। अत उसका नाम भी चण्डकौशिक पड गया।

एक दिन भगवान महावीर उस चण्डकौशिक को समझाने के लिए जा रहे थे। लोगो ने उन्हे रोकना चाहा लेकिन वे रुके नही और जहॉ सर्प था वहॉ चले गये। चण्डकौशिक ने उन्हे विष दृष्टि से मारना चाहा, लेकिन इससे कुछ नही हुआ। तब सर्प ने उन्हे काटा। जब इसका भी कोई प्रभाव नही हुआ तब सर्प ने महावीर स्वामी को आश्चर्य से देखा।

भगवान महावीर ने कहा–"अरे चण्डकौशिक ! समझ कि तू पहले कौन था और अब तू कौन हो गया है और क्या करता है।" भगवान के इन वचनो को सुनकर चण्डकौशिक को ज्ञान हो गया और उसने सोचा कि इससे पूर्व जन्म मे मै एक साधु था किन्तु क्रोध के कारण मै सर्प बन गया। मैने अनेक मेढक, चूहो, पशुओ और मनुष्यो की हत्या की है। मैने सर्प बन कर नरक ले जाने वाले पाप किये है। ये सच है कि क्रोध नरक ले जाने वाली सीढी है। क्रोधी मनुष्य मरकर सर्प बन जाता है। क्रोध मनुष्य को भले बुरे काम की पहचान नही सीखाता। मेरे किसी पूर्व जन्म मे किये हुए पुण्य से मुझे भगवान महावीर के दर्शन हुए और यह अपूर्व ज्ञान मिला। अब मै पूर्ण समता रखकर अपने कर्मो को काटूगा और अपना जीवन सुधारूगा।

चण्डकौशिक ने अपना सिर बिल मे रख लिया और शरीर बाहर रख लिया। लोगो ने उसे बिलकुल शात देखकर यह समझा कि यह चण्डकौशिक देवता हो गया है। उन्होने उस पर दूध और बताशे चढाए जिससे चीटियॉ आकर उसके शरीर को काटने लगी। इस भयकर दर्द मे भी चण्डकौशिक ने क्रोध न करके पूर्ण समता रखकर सहन किया जिससे उसके अनेक पाप कट गये।

सच है क्रोध से प्राणी के अच्छे-अच्छे गुण नष्ट हो जाते है और वह मुक्ति पाने का अधिकार खोने लगता है।

क्रोधी मुनि नम्र शिष्य

एक संत बहुत क्रोधी थे। उनको क्रोध बहुत जल्दी आता था। ए दिन एक शातिचद्र नामका आदमी जिसकी शादी 10 दिन पहले हुई अपने साले लहरचन्द के साथ शाम के समय इन्हीं सत के दर्शन कर आया। लहरचन्द बहुत मजाक करने वाला था। उसने मजाक-मजाक तीन-चार बार महाराज को कहा कि मेरे बहनोई शातिचन्द्रजी को साधु बन दीजिए। इससे साधुजी को बहुत क्रोध आया और शातिचन्द्र को पकड़ उनके बाल नोच दिये और साधु बना दिया। यह देखकर लहरचन्द बहनो को छोडकर घर भाग गया। मुनि शांतिचन्द्रजी ने गुरुजी से कहा कि ससुराल वाले आदमी अभी आयेगे और झगडा करेगे। इसलिए रात मे हम लोग किसी दूसरी जगह चले जाये तो अच्छा रहेगा। रात मे आप कम दीखता है और आप तपस्या के कारण दुबले-पतले है। आप मेरे क पर बैठ जाइये। मै आपको ले चलूगा।

गुरुजी मुनि शान्तिचन्द्रजी के कधे पर बैठ गये। रात थी और रा कही ऊँचा-नीचा था। इसलिए मुनि शान्तिचन्द्रजी के पैर कभी ऊपर क नीचे पडते थे इससे गुरुजी को धक्के लगते थे। धक्का लगने पर गुरु अपने चेले को लातो और मुक्को से पीठ पर मार भी देते थे। किन्तु शान्तिचन्द्रजी ने समता, शाति और विनय रखा, जिससे उनको केवल हो गया। अब ऊँची-नीची जमीन उनको अधेरे मे भी साफ दिखाई दे लगी। अत. गुरुजी को धक्के लगने बद हो गये। तब गुरुजी ने कहा-"मार खाने से क्या सब कुछ दीखने लगा है।" चेले ने कहा-"यह सब आप कृपा का फल है।" यह बात सुनकर गुरुजी के मन मे कुछ विचार आ और उन्होने दुबारा पूछा-"क्या तुम्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया है।" मु शान्तिचन्द्रजी ने फिर वही उत्तर दिया-"यह आपकी कृपा का ही फ है।" यह सुनकर गुरुजी चेले के कधे से नीचे उतर गये और उनसे क्ष मॉगी। उन्हे बडा दु ख हुआ कि मैने केवलज्ञानी का अपमान किया उन्हे दु.ख दिया। गहरा और हार्दिक पश्चात्ताप होने से उन्हे भी केवल हो गया।

विनय से और सच्चे पश्चात्ताप से पाप कर्म नष्ट होकर केवल प्राप्त हो जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

कालसौकरीक कसाई

एक बार राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से कहा–"मेरे पापो के नष्ट होने का कोई उपाय बताने की कृपा करे। भगवान महावीर ने कहा– "तुम कालसौकरीक कसाई से जो एक दिन मे 500 भैसे मारता है, भैसो को एक दिन के लिए मारना बद करवा दो तो तुम्हारे पाप कर्म नष्ट हो सकते हैं।" राजा श्रेणिक ने उस कसाई को बुलाया और कहा–"मेरे कहने से तुम एक दिन के लिए भैसो की हिसा बद कर दो तो मै तुम्हे बहुत धन दूगा।" कसाई ने कहा–"धन लेकर मै अपने नियम को नही तोड सकता।" राजा श्रेणिक बहुत नाराज हुआ और उसने उसे एक जेल मे बद करवा दिया।

दूसरे दिन राजा श्रेणिक भगवान महावीर के पास गये और कहा– "भगवन् मैने उस कसाई को भैसे मारने से रोक दिया।" यह सुनकर भगवान महावीर ने कहा–"महाराजा श्रेणिक, उस कसाई ने वैसे तो एक भी भैसा नही मारा किन्तु भावना से उसने 500 भैसे मार दिये और उसने 500 भैसे मारने का पाप कर लिया।" राजा वापस महलो मे आया और कसाई से पूछा–"तुमने भैसे कैसे मारे ? कसाई ने उत्तर दिया–मैने अपने शरीर का मैल उतार कर उसकी भैसे की आकृति बनाकर नाखून को छूरी समझकर उसे काट दिया। इस तरह 500 बार करके 500 भैसे मारने का कार्य कर लिया।

हम चाहे एक भी जीव के शरीर को नही छुएँ, वह चाहे हमसे हजारो किलोमीटर दूर सुरक्षित और सुखपूर्वक बैठा रहे किन्तु हम अपने घर पर बैठे हुए ही विचारो द्वारा, कल्पना द्वारा या भावना द्वारा किसी मिट्टी के ढेले को या गोबर के टुकडे को या गूदे हुए आटे के टुकडे को या किसी कपडे को या कागज को या लकडी की गुडिया बनाकर या किसी भी प्राणी को या वस्तु को जीवित प्राणी मानकर काट दे, मार दे, या जला दे तो यह भाव हिसा कहलाती है। भाव हिसा से सचमुच मे जीव तो एक भी नही मरता किन्तु मारने का पाप लग जाता है। "मै दस आदमियो को मारूगा" ऐसा विचार भाव हिसा है और इससे 10 आदमियो को मारने का पाप लग जाता है। ऐसे ही बडे कामो की इच्छा करने वाले या बडी-बडी हिसक योजनाएँ बनाने वाले भी चाहे कुछ न करे वे पाप के भागी तो बन ही जाते है। जो मनुष्य विचार करता है कि यदि मेरे पास एटम बम या अणु बम हो तो मै शत्रु के नगरो को और शत्रु की सेना को मार दूगा, ऐसा विचार करने वाला किसी को नही मारता किन्तु भावना के कारण वह भी दुर्गति मे चला जाता है।

बाहुबलीजी और अहम् भाव

बाहुबलीजी ने दीक्षा ले ली किन्तु वे भगवान आदिनाथ के पास न गये क्योकि उनके छोटे भाइयो ने उनसे पहले दीक्षा ली थी और वहाँ से बाहुबलीजी को अपने छोटे भाइयो को जो दीक्षा मे उनसे बड़े नमस्कार करना पडता। बाहुबलीजी इस प्रकार एक वर्ष तक वन में रहे। वे तपस्या करते रहे किन्तु अहकार के कारण उनको केवलज्ञान प्राप्त नही हुआ। एक दिन उनके कानो मे एक गीत सुनाई दिया–

वीरा मोरा गजथकी उतरो
गज चढ्यॉ केवल ना होसी रे।
बाधव गज थकी उतरो।

उन्होने आवाज पहचान ली। यह आवाज उनकी साध्वी बहिनो ब्राह्मी तथा सुन्दरी की थी। उन्होने विचार किया–"मै तो जमीन पर खडा हूँ हाथी पर नही चढा हुआ हूँ फिर मै किस हाथी से नीचे उतरू।" फिर उन्हें समझ मे आया कि मै अहकार रूपी हाथी पर चढा हुआ हूँ। इसी अहकार के कारण इतनी लम्बी और कठोर एक वर्ष की तपस्या होने पर भी केवलज्ञान की प्राप्ति नही हुई। उन्होने विचार किया कि अब मै अहकार छोडूगा और भगवान ऋषभदेव के पास जाकर सभी सतो को वदना करूगा। ज्योही उन्होने वदना करने को जाने के लिए पैर उठाया त्योंही उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अहंकार से केवलज्ञान नही हो सकता केवलज्ञान विनय से प्राप्त होता है।

बच्चो की शिक्षा

प्राचीन काल मे मदालसा नाम की एक महासती थी। उसने इस शर्त पर विवाह किया था कि मै पुत्रो को जैसा चाहूंगी वैसा ही बनाऊंगी।

जब बच्चा सती मदालसा के गर्भ मे रहता था तब वह सतो के प्रवचन सुनती, धार्मिक बातो का चिन्तन-मनन करती। धार्मिक भजन गाती इसका सीधा प्रभाव गर्भ के बच्चे पर पडता। जब लडका हो जाता तो दासी को नही सौपती किन्तु स्वयं ही उनकी पूरी देख-भाल करती। उन्हें झूला झुलाते हुए वैराग्य भरी लोरियॉ सुनाती। वह कहती–

सिद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरजनोऽसि।
संसार माया परिवार्जितोऽसि।।

इन गीतो का छोटे बच्चे के मन पर ऐसा प्रभाव पडता कि वह बड़ा

होकर साधु बन जाता। इस प्रकार उसके लडके साधु बन गए। जब सातवा लडका गर्भ मे आया तो राजा ने कहा–"महारानी छह बच्चे तो साधु हो गए इसे तो राजा बनाओ नही तो राज्य कौन सँभालेगा।" तब उसने इस बच्चे को गर्भ से ही राजनीति और वीरता की बाते सिखाई। अत यह सातवा पुत्र पिता की तरह ही बडा प्रतापी, सुखी और प्रसिद्ध राजा हुआ।

अभिमन्यु भी जब वह माता के गर्भ मे था तभी चक्रव्यूह भेदना सीख गया।

बच्चो की शिक्षा उनके बचपन से पहले ही शैशव काल के पहले ही और जन्म के पहले ही उनके माता-पिता की शिक्षा और सुसस्कृति से दी जाती है।

पापी कौन धर्मी कौन

एक दिन धर्म की सभा मे बहुत से आदमी बैठे थे। उस समय एक आदमी ने धर्म गुरु से पूछा–"गुरुदेव विलायत मे रोबिन हुड नाम का एक डाकू हुआ था जो अमीरो को लूटता था तथा गरीबो को धन देता था। मै भी ऊपर से साहूकार दिखाई देता हुआ व्यापार मे अन्याय से, मिलावट से चोरी करके धनिको को लूटकर गरीबो की मदद करता हूँ और आपकी धर्म सभा मे भी दान देता हूँ। मुझे बताने की कृपा करे कि मुझे धर्म अधिक हुआ या पाप ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया–"धर्म और पाप कम या अधिक होना तो भगवान ही बता सकते है क्योकि यह बात कुछ तो मनुष्य की भावनाओ पर और कुछ सारी परिस्थितियो पर निर्भर करती है किन्तु आप यह बताये कि एक मनुष्य मल-मूत्र के नाले मे बार-बार हाथ डालता है और बार-बार उन्हे धोता है तो उसे आप अच्छा कहेगे या बुरा। यदि धन कमाकर और उसे दान देने मे अधिक धर्म होता तो लोग धन देने वाले से साधु को ज्यादा श्रेष्ठ क्यो समझते। दान देने वाले को प्रथम तो यह पता नही चलता कि दान लेने वाला सच्चा गरीब है या दिखावटी गरीब है। दूसरा यह भी पता नही चलता कि वह धन का उपयोग किस रूप मे करेगा। यह तो साफ है कि लूटना तो पाप है और महापाप है। भावना शुद्ध है और क्रिया गलत है तो कायिक पाप तो होगा ही। मन, वचन और काया तीनो शुद्ध है तो धर्म होगा और अगर इन तीनो मे से कुछ भी गलत है तो पाप तो लगेगा ही। अत वकील, डॉक्टर, अध्यापक आदि कोई भी अगर हो सके तो बिना फीस लिए मदद करेगा तो उसे बहुत धर्म होगा।

तब एक दूसरा आदमी खडा हुआ और उसने कहा–गुरुदेव मै शे
चिल्ली या जीर्ण सेठ की तरह हमेशा नवीन-नवीन योजनाएं दिन मे ह
बार बनाता हूँ लेकिन मै सादगी से ही रहता हूँ। क्या मुझे भी पाप लगेगा
गुरुदेव ने उत्तर दिया–"तुम सादगी से रहो या न रहो किन्तु योजना बन
के कारण तुम कालसौरिक कसाई की तरह या तन्दुल मत्स्य की त
सातवीं नरक मे पहुँचाने वाले भारी पाप कर्मों का बधन कर लेते हो। कि
जीर्ण सेठ की तरह शुभ भावनाओ का सचय करने से मोक्ष मार्ग के पथि
भी बन सकते हो क्योकि शुभ भावना से मोक्ष और अशुभ भावना से नर
मिलता है। पाप और पुण्य भावना पर निर्भर है।"

तब एक तीसरे आदमी ने कहा–"गुरुदेव मैने सुना है कि पाप
केवल भावनाओ से ही लगता है। मैं छत पर खडा था। ऊपर से ईंट नी
फेक रहा था। एक ईट किसी रास्ते मे चलते हुए बच्चे के ऊपर गिरी औ
वह मर गया। बताइये क्या मुझे भी पाप लगेगा ?

गुरुदेव ने उत्तर दिया–"यह बताओ कि तुम रास्ते से जाओ औ
एक आदमी बंदूक चलाना सीख रहा हो, यदि उसकी गोली से तुम्हे ग
लग गयी तो तुम उसे पापी मानोगे या नही। सावधानी न रखने से, प्रमा
से, अयतना से पाप लगता है।

तब एक चौथे आदमी ने पूछा–"गुरुदेव मे किसी का बुरा तो न
करता लेकिन जब किसी का बुरा होता है तो मुझे खुशी होती है।

गुरुदेव ने जवाब दिया यह दुर्भावना है, यह बहुत बडा पाप है। ऐस
आदमी नरको मे जाता है और सातवी नरक तक जाता है। अच्छे काम
अच्छा समझना और उससे खुश होने वाला धर्मात्मा होता है और बुरे क
को अच्छा समझने वाला या उससे खुश होने वाला पापी होता है।

सारे धर्म का सार यही है कि मुनि गजसुकुमाल की तरह
अर्जुनमाली की तरह या मुनि दृढ प्रहारी की तरह किसी पर क्रोध मत क
और अपने शरीर के ऊपर आये हुए कष्टो को दु ख मत मानो और नवका
मत्र या सिद्धो का ध्यान और सिद्धांत का चितन यानी ज्ञान का चितन क
से शुद्ध भावना आने से कर्म कटते है।

संसार की चार घाटियाँ

क्रोध	परिवार मोह	अहकार	इच्छा
(1) (2)	(3) (4) (5) (6)	(7)	(8)

1 मुझे दु ख देने की मूल भौतिक शक्ति केवल मेरे ही अशुभ कर्मो मे है। निमित्त शत्रु पर क्रोध क्यो किया जाय।

2 परिवार के किसी सदस्य के साथ मेरे पूर्व जन्म के वैर के कारण यदि मेरे अशुभ कर्म उससे मुझे दु ख दिलावे या जहर पिलावे तो भी उस निमित्त पर मुझे क्रोध नही करना चाहिए। जैसे कि मुनि उदाई ने, भक्त मीराबाई ने, कृष्णाकुमारी ने जहर पिलाने वालो पर भी क्रोध नही किया।

3 परिवार का कोई भी सदस्य मेरे अशुभ कर्मो को शुभ कर्मो मे और दु ख को सुख मे नहीं बदल सकता। परिवार की शक्ति सीमित है।

4 मुझे मेरे शुभ कर्मो से परिवार के द्वारा जो सुख मिलता है उसको अधिक बढाने की शक्ति परिवार मे नही है।

5 अन्तराय कर्म के उदय के समय मेरे अन्तराय कर्म को तोडकर मुझे सुख देने की शक्ति परिवार मे नही है।

6 मै परिवार के अशुभ कर्मो को शुभ कर्मो मे नही बदल सकता अत मेरा परिवार के लिए चिता, मोह करना व्यर्थ है। भौतिक सुख दु ख देने की भौतिक शक्ति केवल प्राणी के स्वय के कर्मो मे ही है। परिवार तो केवल निमित्त ही बनता है।

7 मनुष्य के शुभ कर्मोदय के समय कम बुद्धि वाले को भी सफलता मिल जाती है किन्तु अशुभ कर्मोदय के समय, विनाश काल के समय बडे-बडे बुद्धिमान मनुष्यो को स्वय की बुद्धि भी उनका साथ नही देती है। बुद्धि का अहकार करना भूल है। अपनी बुद्धि अहकार छोडकर विनयपूर्वक बडो से राय लेना ही बुद्धिमानी है।

8 प्रथम इच्छा शोधन और अन्त मे इच्छा निरोध यही मोक्ष का मार्ग है।

अशुभ कर्म से है दु ख आया।
क्रोध न कर, कर कर्म सफाया।।
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
चिता मोह मै व्यर्थ ही करता।।
भौतिक शक्ति है, निज कर्मो मे।
सुख देने की शुभ कर्मो मे।।
दु ख देने की पाप कर्म मे।
बुद्धि वैसी ही बन जाती।।
जैसी कर्मो की गति चाहती।।

धारिणी रानी की परिवार सेवा

महारानी धारिणी ने अपने गर्भ की सेवा मोह भाव से न करके अनुकम्पा भाव से की थी। इसके कारण मोह से होने वाले पाप से वह बची रही और उसे अनुकम्पा भाव से धर्म लाभ हुआ।

1. उसने अपने गर्भस्थ बालक के बारे मे कभी यह ख्याल नहीं किया कि यह मेरी सतान है किन्तु वह मोह भाव से दूर रहकर यही सोचती थी कि मेरे गर्भ मे जो संतान है वह एक आत्मा है, स्वतत्र आत्मा है, मुझसे अलग है। मुझे उसे 'मेरा' नही समझ कर केवल आत्मा समझ कर उसका पोषण करना चाहिए। इस प्रकार वह ममत्व से दूर रही।

2. उसमे स्वार्थभाव नही था, उसने कभी यह विचार नहीं किया कि यह बडा होकर मेरी सेवा करेगा, मुझे सुख देगा। वह सिर्फ यही सोचती थी कि पूर्व जन्म के कर्मो के संबध से आत्मा मेरे निकट आयी है, उसकी सेवा नही करना महापाप और उसकी सम्यक् सेवा करना मेरा धर्म है।

3 उसके मन मे हमेशा अनुकम्पा भाव रहता था कि मेरे सोने-जागने उठने-बैठने, चलने-फिरने और खाने-पीने से या किसी भी शारीरिक क्रिया से इस आत्मा को दुख न पहुँचे। यह अनुकम्पा का प्रथम चरण है।

4 वह यह ध्यान रखती थी कि इस आत्मा के शारीरिक पोषण मे कमी नही आवे। इसका स्वस्थ जीवन-निर्माण होता रहे, यह अनुकम्पा का दूसरा चरण है। वह अपने चितन-मनन मे, प्रवचन सुनने मे, वार्तालाप मे यह ध्यान रखती थी कि इस आत्मा को ध्यान की प्राप्ति हो, आत्म ज्ञान का [illegible] हो और आत्मोन्नति हो। यह अनुकम्पा का तीसरा चरण है। अपने गर्भ की आत्मा के हित मे निमित्त बनने के लिए उसने अपनी सुख-सुविधा का त्याग कर दिया। जिस प्रकार कि राजा मेघरथ कबूतर की रक्षा के लिए अपनी देह को त्यागने के लिए तैयार हो गये थे, सेठ सुदर्शन ने रानी अभया पर अनुकम्पा करके मौन रखा और सूली पर चढने को तैयार हो गए, और मुनि मैतार्य ने सोने के यव (जौ) चुनने वाले पक्षी की अनुकम्पा के लिए मौन रखकर अपने प्राण त्याग दिए यही अनुकम्पा का चौथा और उत्कृष्ट चरण है।

प्राणी जब तक परिवार मे रहता है तब तक उसे मोह से बचकर अनुकम्पा भाव से परिवार की सम्यक् सेवा करना उसका परम धर्म है।

सत्यवादी हरिशचन्द्र

एक बार स्वर्ग लोक की अप्सराएँ पृथ्वी पर आकर मुनि विश्वामित्र के आश्रम मे खेलने लगी, जिससे उनके आश्रम की वाटिका मे फूलो के पेड और लताएँ क्षत-विक्षित हो गयी। जब मुनि विश्वामित्र वहाँ आए तो उन्हे बहुत क्रोध आया और उन्होने अप्सराओ को तप बल से लताओ से बाँध दिया। इस पर अप्सराएँ चिल्लाने लगी–"हमे बचाओ, हमे बचाओ।" उसी समय सयोग से महाराज हरिशचन्द्र का उधर आना हो गया। जब उन्होने यह पुकार सुनी तो उन्होने वहाँ आकर अपने सत्यबल की शक्ति से अप्सराओ को बधन मुक्त कर दिया। तपस्वी मे देवताओ से अधिक शक्ति होती है और तपस्वी से भी अधिक शक्ति सत्यवादी मे होती है। सत्य महातप है, महाव्रत है, इससे मनुष्य को महाशक्ति प्राप्त होती है। सत्यवादी को देवता भी नमस्कार और प्यार करते है और उस प्राणी के प्रार्थना किए बिना भी उसकी सहायता करते है।

सच बोलूगा, सच बोलूगा।
निश्चय ही मै सत्य बोलूगा।।
सुख आवे या दु ख आवे मै।
झूठ कभी नही बोलूगा।।

दुर्भावना से बचिए

बडे लोगो की बात अलग है किन्तु साधारण लोगो मे अशुभ कर्म बधन का एक बडा कारण है दुर्भावना का होना। दुर्भावना मे भी दो मुख्य बाते है। प्रथम दूसरो के पतन पर या दूसरो के दु खी होने पर हमारे मन मे हल्की-सी खुशी का होना। दूसरी बात है दूसरो को दु ख पहुँचाने की भावना। इन दो बातो को मिटाने का एक ही उपाय है कि "सबका भला हो, सबका भला हो" हम इस भावना का प्रतिदिन काफी समय तक चार छ महीनो तक स्वाध्याय करे अर्थात् इसका जप चितन-मनन करे।

इस उपाय से प्राणी बहुत से अशुभ कर्म बधन से बच सकेगा।

सबका भला हो, "सबका भला हो" इसके स्वाध्याय से दुर्भावना आनी बद हो जाएगी।

स्वाध्याय-संग्रह मोक्ष मार्ग

कषाय मुक्ति : पॉचवा भाग

स्वाध्याय के सूत्र

दुर्भावना

हमारे विचारो से सहमत नही होने वाले, हमारी इच्छा के अनुसार नही चलने वाले, हमारा विरोध और भारी अहित करने वाले, वे चाहे शत्रु हो या हमारे परिवार के सदस्य ही क्यो न हो, उनके प्रति कभी-कभी हमारे मन मे दुर्भावना पैदा होती है। दुर्भावना मे इतनी बडी शक्ति है कि उससे सातवी नरक तक जाना सभव हो सकता है। इस दुर्भावना को हमेशा के लिए अपने मन से दूर करने के लिये सद्भावना भाने का अभ्यास (साधना) करना आवश्यक है।

(मान लीजिए मूलशकर के प्रति हमारे मन मे दुर्भावना पैदा होती है। अत हमे इस प्रकार की भावना भानी चाहिए–1 मूलशकर का भला हो, भला हो, भला हो, 2 मूलशकर स्वस्थ हो, सुखी हो, 3 उसे आत्मबोध हो, उसके दिल मे मेरे प्रति व दूसरो के प्रति प्रेमभाव हो। उसका जीवन समतामय हो)।

इसमे से जो भावना भानी आवश्यक हो, उसका अभ्यास या स्वाध्याय आठ-दस महीने प्रतिदिन कई बार दोहराया जाए।

(यह स्वाध्याय एक तरह से इच्छा निरोध तप का साधन है और इससे मोक्ष की प्राप्ति होना भी सभव है। सम्भव है आपके इस स्वाध्याय से उसमे भी सद्भावना पैदा हो जाए और वह आपका मित्र बन जाए।)

शत्रु नहीं उपकारी मानो

जो प्राणी आपके दु ख मे निमित्त बने, उसे अपना शत्रु मानना भूल है क्योकि आपने इस जन्म मे या किसी पूर्वजन्म मे जान-बूझकर या अनजान मे उसको या किसी अन्य प्राणी को अवश्य ही दु ख दिया होगा, तभी तो आपको दु ख मिला है और शायद जिस प्राणी को आप शत्रु मान रहे हैं, उस प्राणी को उसकी इच्छा न रहते हुए भी दूसरे के बदले मे निमित्त

बनना पडा हो। जैसे—भगवान् महावीर को सगमदेव ने उपसर्ग (कष्ट) दिए थे। तीर्थकर महावीर ने इसका बदला नही लिया तो सगमदेव को दड देने के लिए इन्द्रदेव को निमित्त बनना पडा। इसी प्रकार जिससे आपको दु ख मिल रहा हो, उस व्यक्ति को शायद दूसरे के बदले मे निमित्त बनना पडा हो। इसलिए दड मे निमित्त बनने वाले को शत्रु मानना भूल है।

निमित्त को उपकारी मानने से प्रथम तो निमित्त पर क्रोध नही आता, रौद्रध्यान नही बनता, बदला लेने की दुर्भावना नही बनती, वैर नही बधता और अशुभ कर्म नही बधते। दूसरे, उपकारी मानने से दु ख नही होता, आर्तध्यान नही बनता, नये अशुभ कर्म नही बधते। तीसरे, समताभावी बनने मे बहुत सहायता मिलती है, जिससे बहुत से अशुभ कर्म कट जाते है।

निमित्त द्वारा दु ख मिलने से बहुत से लोगो को अप्रत्यक्ष रूप से कभी-कभी लाभ भी होता है। जैसे—1 भीम को कौरवो द्वारा जहर पिलाकर बेहोशी की दशा मे नदी मे बहा दिया गया। भीम को खिलाया गया जहर उसको सर्पो के काटने से दूर हो गया और उसे वहॉ वल्लरी का रस पीने को मिला जिससे उसमे हजार हाथियो का बल आ गया। 2 प्रद्युम्नकुमार का उसके जन्म होते ही एक शत्रुदेव द्वारा हरण कर लिया गया। उसे पहाडो मे एक पत्थर के नीचे दबाकर छोड दिया गया। किन्तु पुण्यशाली प्रद्युम्नकुमार पर एक विद्याधर की दृष्टि पडी। वह उन्हे अपने साथ ले गया और वहॉ पर प्रद्युम्नकुमार को अनेक विद्याओ की प्राप्ति हुई। राजा नल को जुए मे राज्य हारने के बाद वन मे भटकते हुए एक तक्षक द्वारा काट लिया गया जिससे उसके भाई कुबेर द्वारा उसके पकडे जाने और मारे जाने का खतरा दूर हो गया। कुछ वर्षो के बाद शुभ कर्मो के उदय से उसे राज्य की प्राप्ति हो गई।

साराश या स्वाध्याय सूत्र—कर्मो की गति बडी विचित्र होती है। कभी-कभी शत्रु द्वारा दिया गया दु ख भी मनुष्य की आत्मा का बहुत हित कर देता है। अत निमित्त को शत्रु नही मानकर अपना मित्र समझना चाहिए।

क्रोध (शत्रु भावना)

1 बुरा अपने अशुभ कर्मो से होता है। निमित्त को शत्रु मानकर उस पर क्रोध करना भविष्य के लिए शत्रुता की परम्परा को चालू रखने के सिवाय और कुछ नही है। 2 यदि हमारे अशुभ कर्मो का उदय हो तो शत्रु या किसी प्राणी के निमित्त बने बिना भी हमारा बुरा हो सकता है।

जैसे—सडक पर पैर फिसल कर हम गिर सकते है और हमारा सिर
सकता है। 3 हमारा बुरा होने पर हमे उस दु खानुभूति को दूर करने
प्रयास करना चाहिए, जो दु खानुभूति शीर्षक मे दिया गया है। 4 दु
निमित्त बनने वाले को भी अपना उपकारी, अपने कर्म-रोग की दवा दे
वाला डॉक्टर मानकर 'उसका भला हो, उसका भला हो' ऐसी सद्भा
भानी चाहिए। इससे दु ख और क्रोध दोनो ही से बचा जा सके
5 प्रतिदिन नियत समय पर कुछ समय के लिए क्रोध छोडने का नि
बनाये। यदि किसी दिन यह नियम भग हो जाए तो प्रायश्चित कर ले
चाहिए।

अहं भावना

1 अहकार से मनुष्य मे हठ, दूसरो के प्रति घृणा, द्वेष दुर्भाव
शत्रुता और क्रोध पैदा होता है। 2 अहकारी मनुष्य अपनी प्रशसा सुन
दूसरो से ठगा जाता है। जैसे—कौआ लोमडी से ठगा गया था। 3 अ
को बडा दिखाने के लिए व्यर्थ के दिखावे मे वह अपना धन व अपनी श
और समय को व्यर्थ खर्च करता है और उसका पतन होता रहता
4 अपने गुणो को देखने से, अपनी बडाई सुनने से, आदर-सत्कार पाने
और दूसरो के अवगुण देखने से मनुष्य मे अहकार पैदा होता है। अ
काम करने वाले को अपनी प्रशसा या अहभाव की भूख नही रखनी चाहि
5 अपने अवगुण देखने से, दूसरो के गुणो को देखने से, दूसरो की ब
या प्रशंसा करने से, दूसरो से सलाह लेते रहने से अहकार समाप्त हो
है। 6 अपनी सफलता का श्रेय दूसरो को, अपने से बडे आदमियो को
अपने मित्रो को या अपने अधीन काम करने वालो को देने से अहकार
नही होता। 7. अहकार से अशुभ कर्मो का बध और आत्मा का पतन हो
है, दु ख की प्राप्ति होती है और विनय से सुख, स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त हो
है। 8 अच्छा काम या धर्म करते समय असावधानी से यदि अहकार
जाए तो उस अहभाव के लिए तुरन्त ही पश्चात्ताप कर लेना चाहिए।
तक पश्चात्ताप नही किया जाएगा, तब तक उस धर्म कार्य का अच्छा फ
भी नही मिलेगा। जैसे—बाहुबलीजी को जब तक उनका अहकार नही छू
तब तक घोर तपस्या का फल मिलना भी रुका रहा। 9 कोई मनुष्य कि
दूसरे प्राणी का उसके अशुभ कर्मो के बिना बुरा नही कर सकता। अ
किसी कार्य का अहंकार करना भूल है। 10 मनुष्य अपने ही निकाचित क
बहुत से कर्मो को काट नही सकता है, उन्हे भोगना ही पडता है। फि

अहकार करना भूल है। 11 मनुष्य जब बहुत वृद्ध हो जाता है और उसके हाथ पैर काम नही देते तब उसे अनुभव होता है कि अहकार करना भूल है। 12 सारी शक्ति कर्मो के हाथ मे है। अत- अपने शरीर का, धन का, परिवार का या बुद्धि का अहकार करना भूल है। 13 अशुभ कर्मोदय के समय बुद्धि काम ही नही देती, किन्तु वह कर्मो के अनुसार उल्टा काम करा देती है। इसलिए अपनी बुद्धि का अहकार करना बडी भूल है।

कपट (माया)

1 किसी भी काम मे सफलता शुभ कर्मो से मिलती है। कपट करने वाले बहुत से आदमी अपने कामो मे असफल रहते है। 2 यदि कपट से सुख मिलता तो प्राय सभी लोग दु ख से बच जाते। 3 कपट अशुभ कर्म है। कपट के साथ किया हुआ अच्छा काम भी बुरा बन जाता है। 4 वह कपट का भेद खुल जाने के डर से हमेशा भयभीत और दु खी रहता है। 5 कपट करने वाले का कोई भी विश्वास नही करता है। सभी लोगो से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और उसका आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक पतन हो जाता है। 6 सत्य आचरण करने वाले की देवता भी सहायता करते है।

धन लोभ से बचिए

गृहस्थ को अपने और अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए धन तो कमाना ही पडता है। किन्तु यदि वह धन कमाते हुए भी अपनी विचारधारा को सही मार्ग पर चलाए और अपने विचारो मे हर्ष-विषाद न होने दे तो वह धन के लोभ से होने वाले अशुभ कर्मो के बध से और अशुभ कर्मो के बध से मिलने वाले दु ख से बच सकता है। जैसे—एक सेठजी को उनके मुनीमजी ने कहा कि जो एक लाख रुपये का माल गोदाम मे रखा गया था उसका भाव घट गया है और बहुत हानि हो गई है। यह सुनने पर भी सेठजी के चेहरे पर उदासी नही आई और उन्होने कहा—"जैसा योग था, वैसा हो गया। चिता करने की क्या जरूरत है ?" दूसरे दिन ही बाहर भेजे हुए माल के बाबत मुनीमजी ने कहा कि इसमे दो लाख का लाभ हुआ है। यह सुनकर सेठजी के मन मे कुछ भी हर्ष नही हुआ और उन्होने मुनीमजी से कहा कि लाभ और हानि तो कर्मो का खेल है। इसमे हर्ष और विषाद करने की क्या जरूरत है ? इस प्रकार की भावना वाले लोग ही अशुभ कर्मो के बध और अशुभ कर्मो से मिलने वाले दु ख से बच सकते हैं।

धन के लोभ को या किसी भी पदार्थ के लोभ को दूर करने का सबसे बढिया उपाय यही है कि उन बातो का या उन उदाहरणो का बार-बार चिंतन-मनन किया जाए, जिससे धन की या उस पदार्थ की शक्ति मे श्रद्धा दूर हो जाए और उसके विपरीत भाव मे श्रद्धा बढ जाए।

धन से मनुष्यो के सब दु ख दूर नही होते। धन की शक्ति बहुत ही सीमित है। कोई नेत्रहीन है, कोई गूगा है, जन्म से ही बोलता नहीं, कोई बहरा है, किसी के मृगालोढा की तरह हाथ-पैर नही है, कोई बीस वर्ष का है किन्तु वह पगु है और अभी तक चल नही सकता। क्या ये कमियाँ धन से पूरी की जा सकती है ? कोई गलित-कुष्ठ से दु ख पा रहा है, किसी का आधा अग पक्षाघात (लकवा) से पीडित है, किसी को कैसर हो गया है, किसी का दिमाग विक्षिप्त (आधा पागल) है। क्या ये असाध्य रोग धन से दूर हो सकते है ?

धन मे दूसरा अवगुण यह है कि धन से मिलने वाले सुख के बदले मे नये दु ख आते है। धन से भौतिक सुख ही मिल सकता है और भौतिक सुख के विषय मे 'दशवैकालिक सूत्र' मे बताया गया है कि 'खणमेत् सोक्खा, बहुकाल दुक्खा' अर्थात् क्षण भर के थोडे से भौतिक सुख के बदले मे बहुत काल तक भारी दु ख सहना पडता है।

मनुष्य धन के लिए महाआरम्भ, महापरिग्रह, महाहिसा और कभी-कभी महाघृणित कार्य करने से नही चूकता। किन्तु धन का आना या जाना मनुष्य के हाथ की बात नही है। यदि शुभ कर्मो का उदय हो और अन्तराय कर्म की बाधा न हो तो लोभ व अन्याय के बिना भी धन की वर्षा होने लगती है और यदि अशुभ कर्मो का उदय हो तो पुरुषार्थ करते हुए भी धन चला जाता है। रोकने से रुक नही सकता। धन का आना या जाना और सुख-दु ख का आना या जाना तो मनुष्य के शुभ व अशुभ कर्मो का खेल है। इसलिए धनवान् बनने की इच्छा या धन का लोभ और मोह छोडकर नीति और धर्मपूर्वक जो धन आवे, उसी से अपना और अपने परिवार का जीवन-निर्वाह करना ही मानव का धर्म है।

धन के लोभ मे महाआरम्भ महापरिग्रह और महाहिसा के कार्यो का जब-जब और जितनी-जितनी बार चितन किया जाएगा, तब-तब और उतनी-उतनी बार ही कार्य किए बिना भी केवल चितन से ही नवीन अशुभ कर्मो का बध होगा।

भगवान् महावीर ने मोक्ष मार्ग मे सहायक अपने पच महाव्रतो मे अपरिग्रह को प्रमुख स्थान दिया है। इसलिए पच महाव्रतधारी साधु तो धन को छूते भी नही, किन्तु गृहस्थ का काम धन के बिना नही चलता। इसलिए उसके लिए परिग्रह-परिमाण-व्रत का उपदेश दिया गया है जिसका अर्थ है कि श्रावक अपने धन की, जमीन की, वस्त्रो की और खाने-पीने की चीजो की सीमा निर्धारित कर ले, जिससे कि उसका लोभ बढने न पाए।

श्रावक को धन-सग्रह का लोभ छोडकर जो कुछ उसके पास है, उसमे से दूसरो के जीवन-निर्वाह के लिए, ज्ञान-प्राप्ति के लिए और आत्म-सिद्धि के लिए दान देकर दूसरो को सहयोग देना चाहिए। यही है सच्चे सुख की प्राप्ति का मार्ग।

स्वाध्याय सूत्र–1 धन से मनुष्य के सब दु ख दूर नही होते। 2 धन से मिलने वाले थोडे सुख के बदले मे बहुत समय तक दु ख भोगना पडता है। 3 धन का लोभ छोडना और सतोष रखना ही मोक्ष का मार्ग है।

धन का लोभ

1 अनेक धनवान व्यक्ति घर मे अपार धन होते हुए भी बहुत दु खी देखे जाते है। सुख धन से नही मिलता किन्तु सुख मिलता है शुभ कर्मो से। 2 घर मे बहुत धन होते हुए भी यदि परिवार मे कोई रोगी हो, विकलाग हो, किसी का दिमाग खराब हो गया हो, कोई झगडालू हो, दुर्व्यसनी हो, कुछ आलसी हो तो सुख कहॉ से मिलेगा। 3 धन का आना या जाना मनुष्य के हाथ मे नही है, यह तो कर्माधीन है। जो भी न्यायपूर्वक मिले, उसी मे सतोष करके धन का सदुपयोग दान मे और दूसरो की सम्यक् सेवा मे करना चाहिए। 4 यदि पुण्य का उदय हो तो गरीब मजदूर धन के बिना भी सुखी रहता है। साधुओ का काम तो बिना धन के ही चलता है। सुख धन या धन के लोभ से नही मिलता, सुख मिलता है–सतोष और त्याग से।

थोडा सुख बहुत दु ख

आज हम लोग इस शरीर को ही आत्मा मानकर इस शरीर को सुख देने मे लगे हुए है, किन्तु यह हमारी भूल है। एक तो, हमारा शरीर अलग है और हमारी आत्मा अलग है और दूसरे, यह भौतिक शारीरिक सुख सच्चा सुख नही है। यह सुखाभास है। और तीसरे, इस थोडे से भौतिक सुख के बदले मे उसी समय या कुछ समय बाद बहुत दु ख भोगना पडता है। अगर

हम दूसरो के जीवन या सुख या धन का हक छीन ले तो उस अशुभ कर्म और पाप के बदले मे हमारे अशुभ कर्मो का बध होता है और उससे हमे बहुत समय तक दु ख भोगना पडता है।

जैन आगम "दशवैकालिक" कहते है 'खणमेत् सोक्खा, बहुकाल दुक्खा' अर्थात् थोडे समय के थोडे से सुख के बदले मे बहुत समय तक बडा दु ख भोगना पडता है। इससे हम छूट नही सकते।

भौतिक शारीरिक सुख के पाने से, उसके लिए धन पाने से, पुराने सुखो को याद करने से, उनकी कल्पना करने से, उनकी बाबत विचार करने से, उनकी इच्छा करने से और शेख चिल्ली की तरह मै ऐसा करूगा, वैसा करूगा इस प्रकार के मन के मोदक (लड्डू) खाने से चाहे काम कुछ भी न करे किन्तु केवल विचार करने से ही मन मे खुशी होती है। यह सुखानुभूति है। कभी-कभी दूसरो का पतन होने से, दूसरो के सकट मे फसने से या दूसरो को दु खो मे डालने के विचार से सुखानुभूति होती है। इसमे अशुभ कर्मो का बध होता है और प्रत्येक सुखानुभूति के लिए हमे दु ख उठाना पडता है।

साराश—प्रत्येक थोडे से भौतिक सुख के लिए भी बहुत काल तक दु ख उठाना पडता है। सुख मे रस नही लेने से नये कर्मो के बध से बच सकते है।

शरीर-निर्वाह की दृष्टि से आवश्यक साधनो का सहारा लेना पडता है। परन्तु उसमे जितना अधिक विवेक-सावधानी रहेगी, उतने ही कम कर्मो का बधन होगा।

सुखानुभूति

1 अपने शरीर से, धन से और अपने मन के विचारो से मिलने वाले भौतिक-शारीरिक-इन्द्रिय सुख को सुखानुभूति कहते है। 2 प्रत्येक थोडे से भौतिक सुख के बदले मे बहुत काल तक दु ख भोगना पडता है। 3 सुख भोगो मे डूबा रहने वाला मनुष्य ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की तरह सातवी नरक मे जाता है। 4 सुख-भोगो मे नीरसता रखने वाले (रस नहीं लेने वाले) जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष मे जाते है। 5. ये सुख-भोग उन गोलियो के समान है जो ऊपर से चीनी की चाशनी लगने के कारण मीठी और स्वादिष्ट लगती है किन्तु जिनके अन्दर हलाहल (जहर) भरा है और वे खाने वाले का प्राणात कर देती है। 6 ये सुन्दर और सुखद सवारियॉ है जो सवार को

नही सभलने से उसे नरक मे ले जाती है। 7 सुख-भोगो के समय यह विचारना चाहिए कि "खेद है कि मेरे कर्म बध रहे है, मेरे कर्म बध रहे है।" इस विचार से सुख की आसक्ति कम हो जाएगी।

दुःखानुभूति

1 सुख-भोगो मे बाधा पडने से या उनके लिए धन नही मिलने से या रोगो से घिर जाने पर या अप्रिय घटना घट जाने पर या उपसर्गो के आने पर मनुष्य को दु खानुभूति होती है। इससे अशुभ कर्मो का बध होता है जो दु ख का कारण बनता है। 2 अपने पति के मर जाने पर और इससे अपने सुख-भोगो मे बाधा पडने पर चक्रवर्ती की पटरानी छ मास तक दु ख और विलाप करके छठे नरक मे जाती है। 3 दु खानुभूति से बचने वाले और दु ख को कर्मो की निर्जरा मे सहायक समझकर समता रखने वाले समता से अपने कर्म काटकर मुनि गजसुकुमाल, मुनि उदाई की भाति मोक्ष मे जाते हैं। 4 दु ख मे दु खी होने और रोने से जो नवीन अशुभ कर्म बधते है, उनके बदले मे उसे पुन दु ख मिलता है। 5 दु ख के समय यह विचारधारा दु ख को कम करने मे सहायक होगी–"यह दु ख, दु ख नही है। यह मेरे कर्मो का फल है। यह मेरे कर्मो की निर्जरा है। मुझे हिम्मत रखनी चाहिए, मुझे समता रखनी चाहिए। इससे मेरे कर्म कटेगे। आज मेरा अहोभाग्य है कि मेरे कर्म कट रहे है और मै मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ।

इच्छा

जिन कामो के नही करने से अपना और दूसरो का आत्म-उत्थान रुक जाए, उसे कर्तव्य या आत्म-धर्म समझना चाहिए। जैसे–दान, तप या स्वाध्याय। इनका करना कर्तव्य है।

जिन कामो के नही करने से अपना और दूसरो का जीवन-निर्वाह रुक जाए, उसे आवश्यकता या अनिवार्य कार्य समझना चाहिए। जैसे–भूख मे सादे भोजन के लिए मन का चलना, शीत-ताप और वर्षा से बचने के लिए आश्रय की इच्छा।

जिस वस्तु या काम के किए बिना जीवन-निर्वाह या आत्म-उत्थान मे बाधा नही पहुँचे किन्तु जिससे भौतिक सुखानुभूति मिलती हो, उस वस्तु या काम के लिए मन का चलना इच्छा है। जैसे सादे भोजन के स्थान पर बढिया स्वादिष्ट पकवानो की इच्छा करना, साधारण आश्रय की जगह

बडे-बडे महलो या वातानुकूलित कमरो की इच्छा करना, थोडी दूर जाने के लिए भी पैदल न चलकर सवारियो की इच्छा करना।

इच्छाएँ आकाश के समान अनत है। उनका अत नही आता। यह याद रखने की बात है कि 1 शुभ कर्मोदय के समय सुख की इच्छा के बिना भी सुख की वर्षा होती है। 2 अशुभ कर्मोदय के समय सुख की इच्छा करने से भीं सुख नही मिलता। 3 महाआरम्भ, महापरिग्रह और महाहिसा के केवल विचारो से, केवल इच्छाओ से और केवल योजनाओ के बनाने से ही कुछ कार्य किए बिना भी अशुभ कर्मो का बध होता है और प्राणी सातवे नरक तक पहुँच सकता है। 4 अशुभ इच्छाओ से और कामो से बचना इच्छा निरोध, तप और मोक्ष का मार्ग है। 5 यदि किसी अशुभ बात की इच्छा दस बार की जावेगी तो दस बार ही कुछ काम किए बिना भी अशुभ कर्मो का बध होगा और प्रत्येक के बदले मे दु ख भोगना पडेगा। 6 समता, सादगी सत्याचरण, निर्लोभ और सतोष ये इच्छा शोधन और इच्छा निरोध के कार्य है और आत्मा को ऊपर उठाते है। 7 सुख भोगो की इच्छा दु ख और नरक का मार्ग है और इनसे बचना सुख और स्वर्ग का मार्ग है।

परिवार नाथ नही है साथ नही है

गृहस्थ भी यदि कषाय छोडे और सही मार्ग पर चलें तो उन्हे भी परिवार मे रहते हुए और परिवार की सम्यक् सेवा करते हुए कूर्मा पुत्र केवली की तरह गृहस्थ दशा मे भी केवलज्ञान प्राप्त हो सकता हे। जेन आगम मे 'गृहस्थ सिद्धा' शब्द आया है। उसका अर्थ है कि गृहस्थ दशा मे रहते हुए भी मनुष्य सिद्ध बन सकता है और यह तभी सभव है जबकि उसका मोह पूर्णतया दूर हो जावे और वह परिवार की सम्यक् सेवा करता रहे। परिवार मे मोह का होना या परिवार-मोह का टूटना मनुष्य के विचारो पर निर्भर करता है। मनुष्य अपने विचारो को सुधारकर परिवार मे रहता हुआ भी अपने विचारो के कारण परिवार-मोह से वच सकता है। किन्तु यदि विचार न सुधारे तो परिवार को छोडने के बाद भी परिवार के मोह मे फसा रह सकता है। अत इस सबध में उसे अपना दृष्टिकोण सुधारना पडेगा और इसके लिए कर्मो की शक्ति को और कर्मो की व्यवस्था को अच्छी तरह समझना जरूरी है। जिन-जिन प्राणियो ने अपने पूर्व जन्मो मे अच्छे या बुरे, जो-जो जैसे-जैसे काम किए हैं उनको वैसे-वैसे अच्छे या बुरे कर्मों के

अनुसार अच्छे या बुरे फल देने की व्यवस्था उनके कर्मानुसार होती है। क्योकि ये फल केवल भौतिक शरीर के माध्यम से ही भोगे जा सकते है, इसलिए उन-उन प्राणियो को फल भोगने के लिए देव या मनुष्य या नारकी पशु या पक्षी की, जैसी शरीर की आवश्यकता होती है, वैसा ही शरीर उन्हे कर्मानुसार मिलता है और किस-किस प्राणी को उस-उस शरीर मे कितने-कितने समय तक कब से कब तक रहना है, यह भी उनके कर्मो पर निर्भर है। इसके साथ-साथ किस-किस प्राणी को यानी उपादान को, किस-किस प्राणी से अर्थात् निमित्त से कैसे-कैसे और कितना-कितना सुख-दु ख मिलना है, इस व्यवस्था मे भी उनके कर्मो की प्रधानता होती है। और उस फल पाने वाले (उपादान) को फल देने वाले (निमित्त) का उतने समय तक एक परिवार मे जन्म द्वारा, विवाह द्वारा रहना या स्वामी-सेवक के रूप मे रहना या एक-दूसरे के शत्रु के रूप मे एक ही परिवार मे रहना या एक परिवार के रूप मे रहना भी उनके कर्मो पर आधारित है अर्थात् परिवारो की रचना प्राणियो के कर्मानुसार होती है। दो प्राणियो का सयोग तथा वियोग भी कर्मानुसार होता है। इस प्रकार परिवार की रचना का आधार भी उपादानो या निमित्तो का सयोग ही है।

साराश—जब तक सब कर्मो का क्षय नही होता है तब तक सभी मनुष्यो, पशुओ और पक्षियो को अपनी आयु समाप्त होने पर उनके कर्मो का फल भोगने के लिए कर्मो के आदेशो के अनुसार पुराने शरीर और परिवार को छोडकर नये शरीर और दूसरे परिवार मे जन्म लेना पडता है। किसी भी मनुष्य को उसके शुभ कर्मो के बिना उसके परिवार वाले उसके नाथ (रक्षक) नही बन सकते और हमेशा उसके साथ नही रह सकते। इसलिए परिवार के बाबत कहा जाता है—"नाथ नही है, साथ नही है।"

परिवार मोह

1 कोई भी प्राणी दूसरे प्राणी को उसके अशुभ कर्मो के फल से, दुख से, कष्ट से, हानि से और मौत से प्रयास करने पर भी बचा नही सकता। 2 पिता-पुत्र या पति-पत्नी एक-दूसरे का भला उनके शुभ कर्मोदय के बिना प्रयास करके भी नही कर सकते। 3 शुभ कर्मोदय के ' ५ किसी
का दूसरे शत्रु के द्वारा बुरा किए जाने पर भी न
ही होता है। 4 किसी को सुख देना या [illegible] ‌रना।

शक्ति मे नही है। केवल कर्माधीन है। 5 यादवों के अशुभ कर्मोदय के समय मे श्रीकृष्ण ने उनको और अपने माता-पिता को भी जलने से बचाने का पुरुषार्थ किया, किन्तु वे अपने अशुभ कर्मो के कारण बचाये न जा सके। 6. मुनि सर्वानुभूति और मुनि सुनक्षत्र की आयु-समाप्ति का प्रसग ज्ञान के आधार जानकर तीर्थकर महावीर ने उनको बचाने का विचार या प्रयास ही नही किया। 7. जब तक हम गृहस्थी मे परिवार के साथ रहते है तब तक हमे 'यह मेरा भाई है, यह मेरा भतीजा है' ऐसे मोह मे नही पडकर उनको 'यह आत्मा है, केवल आत्मा ही है' ऐसा मानकर उनकी सम्यक् सेवा करनी चाहिए। 8 परिवार-मोह छोडने वाली मरुदेवी माता मोक्ष गई।

आत्म-भावना

(केवलज्ञान प्राप्ति की साधना)

1. शरीर अलग है। मै (आत्मा) अलग हूँ। 2 इस हाड-मास, रक्त-चर्म के शरीर के सम्पूर्ण ढाचे मे मै (आत्मा) फैला हुआ हूँ। 3 इस शरीर मे जो जीवन है, शक्ति है, सवेदनशीलता है, ज्ञान है, चेतना है, वही मै चेतन (आत्मा) हूँ। (वे सब आत्म प्रदेश है।) 4 मै अमूर्त हूँ। इसलिए मुझे देखा नही जा सकता है। किन्तु मेरे अस्तित्व की अनुभूति मेरे जीवन और शक्ति आदि से की जा सकती है। 5 शरीर मरता है, मै (आत्मा) नही मरता। 6. मै शरीर से निकल जाता हूँ, क्योकि शरीर मेरा नही है। 7 मै ज्ञान का भंडार हूँ, शक्ति का भंडार हूँ, सुख का सागर हूँ और आनदघन हूँ। मेरा लक्ष्य सिद्ध पद पाने का है। 8 मै ही मेरा हूँ। मेरे सिवाय और कुछ भी मेरा नही है। यह शरीर, यह परिवार, यह धन कुछ भी मेरा नहीं है। ये तो कर्मो के शुभाशुभ के फल मिलते-बिछुडते हैं।

शरीर मेरा नहीं है

1 शरीर अलग है, मै (आत्मा) अलग हूँ। शरीर नाशवान है, शरीर मेरा नही है। 2 मरना (विनाश) इस शरीर का स्वभाव है। यह अनिवार्य नियम है। 3 यह शरीर कर्मो की देन है। मनुष्य को उसके कर्मो का फल शरीर के माध्यम से मिलता है। 4 प्राणी को उसके कर्मो के अनुसार मनुष्य पशु या पक्षी का शरीर मिलता है। 5 यदि समझदार मनुष्य कार्य करते हुए जीवो की यतना रखता है और शरीर से मोह नही करते हुए इसे दूसरो के कल्याण-कार्यो मे लगाता है तो वह मोक्ष का अधिकारी बनता है।

प्रतिदिन का स्वाध्याय

1 भला हो, भला हो, सबका भला हो, बुरा किसी का कभी नही हो। 2 इस ससार मे मेरे अशुभ कर्मो के सिवाय कोई मेरा शत्रु नही है। क्रोध का आना दिमाग मे कुछ खराबी होने की निशानी है। 3 मैने जो अच्छा काम किया है, उससे समाज का कर्ज चुकाया है। अभी और भी कर्ज चुकाना बाकी है। मेरे अन्दर अहकार का आना मेरे समझ की कमी है। 4 झूठ, कपट से धन आता नही, आता है तो ठहरता नही। ठहरता है तो बरबाद करके जाता है। और सत्याचरन वाले की देवता मदद करते है। 5 धन का आना और चला जाना दोनो ही कर्मो का खेल है। लोभ से अशुभ कर्मो का बध होता है। यह भविष्य मे दु खो को निमत्रण देना है। 6 प्रत्येक भौतिक सुख के बदले मे दु ख तो भोगना ही पडता है। 7 दु ख को दु ख मानने से और रोने से होने वाले आर्तध्यान के बदले मे नया दु ख फिर भोगना पडता है। 8 भौतिक सुख भोगो की केवल इच्छा से ही कुछ भी किए बिना भी अशुभ कर्म बधते है और इच्छा निरोध (रोकने) से कर्म कटते है। 9 परिवार मे कोई किसी का नाथ नही है और कोई किसी का साथी भी नही है। 10 यह शरीर अलग है और मै अलग हूँ। यह शरीर मेरा नही है। यह परिवार भी मेरा नही है और यह धन भी मेरा नही है। 11 तन तजना है सिद्ध बनना है। अर्थात् यह शरीर छोडकर सिद्ध बनना है। 12 प्रतिदिन बार-बार विचारिये कि कही क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ की भावना और अशुभ इच्छाओ का शिकार तो मै नही बना हूँ। यदि ऐसा हुआ हो तो उसका पश्चात्ताप करना जरूरी है। 13 सत्य बोलने वाले की देवता प्रार्थना किये बिना भी मदद करते है। दान देने से कर्मो की रेखा भी बदल सकती है।



धर्म विचार सार

कषाय मुक्ति : छठा भाग

समता के नौ सूत्र–

क्रोध छोडने के लिए हमेशा इस प्रकार स्वाध्याय किया जाए–

1 क्रोध छोडने के लिए दिन मे आधे घटे तक नियत समय पर क्रोध नही करने का नियम बनाया जाय। इसका सावधानी से पालन करने से क्रोध अवश्य ही छूट जाएगा।

2 भक्षक भीतर, दु ख का दाता।
क्रोध निमित्त पर व्यर्थ ही आता।।

3 मौन रहो अरु हट ही जाओ।
हठ छोडो अरु झुक ही जाओ।।

4 पानी पीओ क्रोध बुझाओ।
गुरु गुण गाओ शीश-झुकाओ।।

2 अहकार से बचने के लिए नीचे लिखे विचारो का स्वाध्याय किया जावे–

1 सेवा की सो कर्ज चुकाया।
अहम् भाव मन मे क्यो आया।।

2 अपने गुरुजनो से और बडो से सलाह लेने से, अपने भोजन मे, वस्त्रो मे, बातचीत मे, विचारो मे और जीवन के हर एक काम मे सादगी रखने से, दूसरो की सेवा करने से, सेवा के प्रत्येक काम को कर्ज चुकाने का काम मानने से, अपनी सफलता का और अच्छे कामो का श्रेय (बडाई) अपने गुरुजनो और साथियो को देने से, अपनी बडाई नही सुनने से और जहाँ अपनी प्रशसा हो रही हो वहाँ से उठकर थोडी दूर पर बैठ जाने से अह भावना से बचा जा सकता है।

3 कपट (माया)–कपट से यदि सुख मिलता तो रावण परिवार और

कौरव परिवार कभी दु ख नही पाते। कपट से धन आता नही, यदि आता है तो ठहरता नही और ठहरता है तो बरबाद करके जाता है।

4 धन का लोभ–परिवार के और अपने जीवन निर्वाह के लिए धन कमाना तो गृहस्थ का धर्म है किन्तु धन कमाना ही अपना लक्ष्य बनाना मोक्ष मार्ग छोडकर ससार के मार्ग पर चलना है। धन का आना और धन का जाना कर्मो का खेल है।

5 परिवार है साथी नही मेरा।
परिवार है साथी कर्मो का।।

परिवार वाले हमारे अशुभ कर्मो को शुभ कर्मो मे नही बदल सकते।

6 मनुष्य के शरीर की रक्षा उसके शुभ कर्मो से ही होती है। इसलिए मनुष्य को अपने शरीर की विशेष चिता नही करके अपना समय धर्म-ध्यान मे लगाना चाहिए।

7 दु ख के समय रोने से, आर्तध्यान करने से अशुभ कर्मो का बध होता है जिससे दु ख मिलता है। समता रखने से अशुभ कर्म नष्ट होते है।

8 भौतिक सुख भोग–भौतिक सुखो मे और मनोरजन मे अशुभ विचार और अशुभ काम करने से, उनमे रस लेने से अशुभ कर्म बधते है और दु ख मिलता है।

9 आत्म-भावना–मै भीतर हूँ, मै भीतर हूँ।
सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।

ऊपर लिखे हुए समता के नौ सूत्रो के सबध मे इस प्रकार चितन-मनन करना चाहिए–

10 क्रोध के सबध मे चितन-मनन–क्रोध अहकार का उग्ररूप है। अहकार से होने वाली सभी बुराइयॉ क्रोध मे है। अहकार छोडने से क्रोध छूट जाता है। क्रोध के समय मनुष्य प्राय पागल-सा बन जाता है। वह चीजो की तोड-फोड करता है। मनुष्यो से मारपीट करता है। दूसरो की तथा कभी-कभी अपनी भी हत्या कर लेता है। क्रोधी मनुष्य जीवन भर पछताता रहता है। क्रोधी मनुष्य अपने शत्रु के पीछे पड जाता है। उसके अपराध खोजता रहता है। अपराधो के लिए प्रमाण (सबूत) ढूढता है और उससे प्रतिशोध (बदला) लेता है। क्रोध आने का कारण है मनुष्य की इच्छापूर्ति मे बाधा पडना। जैसे–प्रशसा, धन प्राप्ति, भौतिक सुख प्राप्ति, परिवार से सुख प्राप्ति और उसके दु ख से भागने मे बाधा पडना।

क्रोध छोडने का अभ्यास कल्पना द्वारा भी किया जा सकता है। भविष्य के पॉच-सात दिनो मे आज या कल जिन घटनाओ के घटित होने की सभावना है उनकी कल्पना कीजिए और सम्भव है कि उनमे कुछ घटे ऐसी हो जिनसे आपको नाराजगी आवे या क्रोध आवे उनकी कल्पना कीजिए और फिर ये सोचिये कि आप उस समय क्रोध से बचने के लिए किन-किन बातो का विचार करेगे और किस प्रकार क्रोध करने से बचेंगे। इस प्रकार का अभ्यास प्रतिदिन सबेरे करते रहने से क्रोध से बचा जा सकता है। इसी प्रकार बीते हुए समय मे जब-जब क्रोध आया हो उन घटनाओ को याद कीजिए और भविष्य मे ऐसी घटना होने पर आप क्रोध से कैसे बचेगे इस पर गहरा चितन कीजिए।

क्रोध जीतने के उपाय है—प्रथम मौन रखना, दूसरे इन दो सूत्रों का बार-बार चिंतन-मनन करना "दड अशुभ कर्मो से मिलता है और दुख भी अशुभ कर्मो से होता है। मै क्रोध किस पर करू और क्यो करू।"

प्रतिदिन बार-बार जॉच करनी चाहिए कि मेरा क्रोध छूटा या नही। अगर नही छूटा तो मुझे पश्चात्ताप करना चाहिए। "धिक्कार है मुझे अभी मेरा क्रोध नही छूटा।"

11. अहंकार के सबध मे चिंतन—जिस मनुष्य के शरीर मे बहुत बल है, जिसके पास विशाल राज्य शक्ति है, जिसको विपुल धन मिला है जिसको महान् शक्तिशाली और आज्ञाकारी बडा परिवार मिला है, जिसकी बुद्धि की प्रशसा ससार करता है, ऐसा मनुष्य कभी-कभी अपनी शक्ति का अहकार करता है और कहता है कि मै जो चाहूँ सो ससार मे कर सकता हूँ किन्तु यह उसकी भूल है क्योकि जब जिस मनुष्य के अशुभ कर्मो का और असातावेदनीय कर्मो का उदय होता है तब उसकी सभी शक्तियाँ अशुभ कर्मो की एक ही चोट मे उसकी बुद्धि को विपरीत और विनाशकारी बना देती है और उस मनुष्य का विनाश कर देती है।

रावण के अशुभ कर्मो ने उसकी बुद्धि को विपरीत बनाकर सीता का हरण कराया। विभीषण को लात मरवाकर विद्रोही बनाया, सीता को नहीं लौटाने दिया। राम से युद्ध करवाया और रावण परिवार का विनाश करवाया। दुर्योधन के अशुभ कर्मो ने उसको पाडवो का शत्रु बनवाया, श्रीकृष्ण का सधि प्रस्ताव अस्वीकार करवाया, महाभारत का युद्ध करवाया

और कौरव वश का विनाश करवाया। पृथ्वीराज के अशुभ कर्मो ने उसको अहकारी बनवाया, उसे असावधान बनवाया, मोहम्मद गोरी को जेल मे कैद करवाया, पृथ्वीराज को अधा बनवाया और उसकी दुर्दशा करवायी। अशुभ कर्म अपनी पहली चोट मनुष्य की बुद्धि पर ही लगाते है और बुद्धि विपरीत बनाकर उस मनुष्य का विनाश कराते है। मनुष्य के शरीर को रोग और बुढापा बेकार बना देते है। मनुष्य के धन को धूर्त लोग और मनुष्य का दुर्भाग्य खा जाता है। अशुभ कर्मोदय के समय परिवार की शक्ति को परिवार की फूट खा जाती है। उसकी बुद्धि को उसके अशुभ कर्म विपरीत ओर विनाशकारी बना देते है। इस प्रकार मनुष्य की सभी शक्तियॉ बेकार बन जाती है। अत अहकार करना भयकर भूल है।

12 माया (कपट) के सबध मे चितन—साधारण मनुष्य से देवता मे और देवताओ से तपस्वियो मे और तपस्वियो से भी अधिक शक्ति सत्यवादी मे होती है, जैसा विश्वामित्र और हरिशचन्द्र की कथा से प्रमाणित होता है।

13 धन का लोभ—जो धन जब, जितना और जिस प्रकार से कर्मो के अनुसार आना है वे तो साधारण पुरुषार्थ से और बिना इच्छा के और लोभ की भावना के बिना भी आ ही जावेगा। समझदार मनुष्य धन का लोभ नही करता। वह इच्छा छोडकर 'इच्छा निरोध तप' से अपने अशुभ कर्मो को नष्ट करता है। साधारण स्थिति मे कभी-कभी मनुष्य अशुभ काम और पाप कर बैठता है जिससे साधारणतया आता हुआ धन भी बद हो जाता है। कभी-कभी शुभ कर्मो से दान देने से और पुण्य करने से तुरन्त ही अधिक धन आ सकता है। जैसे महापुरुष को दान देने से कभी-कभी धन की वर्षा होने लगती है या धन आने लगता है। इसलिए मनुष्य को जीवन मे हमेशा शुभ व्यवहार का ही पालन करना चाहिए।

14 परिवार के सबध मे चितन—क्या आप मोक्ष पाना नही चाहते ? परमात्म पद पाना नही चाहते ? यदि चाहते है तो यह स्पष्ट है कि आपकी अन्तरात्मा यह मान चुकी है कि परिवार आपका नही है। आप इसे मोक्ष पाने के लिए छोडने को तैयार है। मरते समय परिवार को छोडना ही पडता है। जब शरीर ही छोडना पडता है तो परिवार अपना होगा ही कहॉ से ? आत्म-भावना भाने वाला यही स्वाध्याय करता है कि मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मेरा नही होता। यह शरीर मेरा नही है, यह परिवार मेरा नही

है, यह धन, घर आदि मेरे नही है। ससार मे सब प्राणियो मे केवल मुख्यतया एक ही सबध होता है–निमित्त और उपादान कारण। एक प्राणी दूसरे प्राणी को सुख या दुख, अन्न या धन, ज्ञान या अज्ञान देने मे निमित्त कारण बन सकता है और दूसरा प्राणी उन्हे पाकर उपादान। एक दाता बनता है और दूसरा पाने वाला पात्र। संसार मे सभी प्राणियो मे केवल निमित्त और उपादान बनने का ही सबध होता है। परिवार के जिन प्राणियो में परस्पर ऐसा बनने का सयोग, कर्मो की प्रेरणा से नही होता, तो उन प्राणियो का पारिवारिक सबध भी टूट जाता है। कुती ने अपने पुत्र कर्ण को जन्मते ही छोड दिया था। करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहा आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पडा। इस दृष्टि से माता-पिता का सबध बनने का जीवन में इतना महत्त्व नही है जितना महत्त्व निमित्त उपादान सबध होने का होता है।

अत परिवार यदि कदाचित् अपना शत्रु या मित्र बन जाता है तो उसे शत्रु या मित्र नही समझना चाहिए क्योकि वह तो कर्मो की प्रेरणा से ही शत्रु या मित्र बनता है।

परिवार है साथी नही मेरा।
परिवार है साथी कर्मो का।।

15. शरीर भावना–शरीर की रक्षा हमारे कार्मण शरीर जो हमे हमारी आत्मा के साथ ही चिपका हुआ रहता है के द्वारा ही होती आदिनाथ भगवान के बारह महीने तक निराहार रहने के समय, बाहुबली के बारह महीने मे तपस्या मे रहने के समय, भगवान महावीर के 5 मा 27 दिन तक निराहार रहने के समय और मृगालोढा के हाथ पैर नहीं हुए भी उसके शरीर की रक्षा उनके कर्मो के द्वारा ही हुई। पशुओं पक्षियो की, गर्भ के भीतर के जीवो की और अडो के भीतर जीव की भी उनके कर्मो द्वारा और आयु द्वारा होती है। अत समझदार मनुष्य अ शरीर के लिए विशेष चिता नही करता और अन्याय, अनीति और अ उपायों और पाप कर्मो का सहारा नही लेता। वह साधारणतया अ जीवन निर्वाह करता हुआ अपने शरीर से अपना अधिक समय परमात भजन और धर्म ध्यान मे ही लगाता है।

16. दु:ख भावना के संबंध मे चितन–जो दुख जब, जितना,

प्रकार और जिस निमित्त से आना है वह या तो तप से नष्ट होता है या समताभाव पूर्वक भोगने से ही नष्ट होता है। समताभाव पूर्वक दु ख भोगने से मोक्ष मिलता है। जो सेवा जब, जितनी, जिसकी, जिस प्रकार निकाचित कर्मो की गति के अनुसार करने का योग है वह तो चन्दनबाला की तरह करनी ही पडती है। दु ख के समय कषाय से बचने और विचारो मे और आचरण मे समता रखने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय और चितन-मनन किया जा सकता है–

दु ख के समय दु ख को दु ख मानना, रोना और आर्तध्यान करना अशुभ क्रिया है। इससे अशुभ कर्म बध होता है फिर उन अशुभ कर्मो के उदय होने पर दुबारा दु ख मिलता है। इस दुबारा दु ख भोगते समय रोने से और आर्तध्यान करने से फिर नये सिरे से अशुभ कर्मो का बध होता है। इस प्रकार दु ख और आर्तध्यान करते रहने से दु ख के आने का अत होता ही नही। अधिक रोने वाला और आर्तध्यान करने वाला नरक मे जा सकता है। पति के वियोग मे छ माह तक मोह वश आर्तध्यान करने वाली चक्रवर्ती की पटरानी छठे नरक मे चली जाती है। .

17 सुख भावना के सबध मे चितन-मनन–भौतिक सुख को सुख मानने से, उसमे आसक्त होने से और अशुभ कार्य करने से अशुभ कर्मो का बध होता है और थोडे सुख के बदले मे बहुत समय तक दु ख मिलता है। जैन ग्रन्थो मे यह भी बताया गया है कि भौतिक सुखो मे लीन रहने वाला ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सातवे नरक मे चला गया। यह बात भी विशेष ध्यान देने की है कि सुख भोगना दु ख के आने का कारण नही होता किन्तु सुख भोगते समय दु ख प्राप्ति के अशुभ कार्य करने से और अशुभ विचार करने से दु ख का कारण बनता है। यदि सुख भोगते हुए भी शुभ कार्य और विवेक रखा जाय तो दु ख का आगमन नही हो सकता है। दु ख का आना तभी बद होगा जबकि दु ख और सुख दोनो मे समता रखी जावे। सुख मे रस नही लेने वाला, नही हॅसने वाला जम्बू स्वामी की तरह मोक्ष मे जाता है।

18 अशुभ कर्मो का बध कराने वाले नीचे लिखे हुए भौतिक सुखो के स्रोत मे रस नही लेकर मनुष्य को कर्म बध से बचना चाहिए। वे स्रोत ये है–

1 ऑखो से टी वी , सिनेमा, नाटक, नृत्य, मेले, उत्सव, दुर्भावना से

स्त्री पुरुषो को और उनके चित्रो को देखना आदि। 2 कानो से अश्ले गदे गाने सुनना। 3 नाक से इत्र आदि को सूघना। 4 जीभ से नहीं योग्य स्वादिष्ट और हिसा से बनी हुई चीजे खाना, जमीकन्द आदि और उसमे रस लेना। 5 कामभोग आदि मे डूबना। 6 मनोरजन पॉचो इन्द्रियो से मिलने वाले सुखो मे रस लेना, उन भोगे हुए सुखो को करना, भविष्य मे उनको भोगने की कल्पना करना या दूसरो को दु देखकर खुश होना।

19. आत्म-भावना–शरीर अलग है, मै अलग हूँ। शरीर मेरा नहीं यह नाश्वान है। मै आत्मा हूँ, मुझे सिद्ध बनना है। "आत्मा हूँ, आत्मा सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।"

आत्मा हूँ मैं देह भिन्न हूँ, मै अमूर्त हूँ चेतन हूँ।
मै अवद्य हूँ, मै अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ।
शक्ति पुज हूँ, ज्ञानरूप हूँ, आनन्दघन हूँ, चेतन हूँ।
निराकार हूँ निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।

आत्म भावना भाने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई जैन और वैदिक दोनो संस्कृतियो मे देहात्मभेद और आत्म भावना को ही महत्त्वपूर्ण माना गया है।

20 णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण–इसका हमेशा जाप करते रहने यदि मृत्यु के समय भी ऐसी भावना बनी रह जाय तो मनुष्य का सफल बन सकता है। जैसे दृढ प्रहारी और अर्जुनमाली के पाप परमात्मा के भजन से ही कट गए।

21 सेवा बिना मुक्ति नही–महासती चन्दनबाला राजा की लडकी उसे भी पूर्व कर्मो के कारण रथी के घर पर सेवा करनी पडी। पॉचो पाण्डव और द्रौपदी को विराट राजा के यहॉ, महाराज हरिशचन्द्र ओर महारानी तारा को काशी मे और महाराज नल को महाराज ऋतुपर्ण के यहॉ सेवा करके कर्म काटने पडे। पूर्व जन्मो के कर्मो के कारण सेवा तो करनी ही पडती है किन्तु जो प्राणी हस-हस कर सेवा करता है उसके कर्म नष्ट हो जाते है किन्तु जो प्राणी रो-रोकर और उसे बेगार समझकर सेवा करता है उसके नए अशुभ कर्म बध जाते है।

दूसरो की यथायोग्य सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है किन्तु दूसरो से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है।

दूसरो के प्रति सद्भावना, दु खी को सात्वना देना, भटकते हुए प्राणी को सही मार्ग बताना, दूसरो की आत्म-शुद्धि मे और जीवन निर्वाह मे सहयोग देना तथा अपने सामने आये हुए कार्यो को अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हुए यथाशक्ति, यथा सभव पूर्ण करना आदि सेवा कार्य है।

22 कर्मो की प्रधानता—हमारे इस जीवन के पहले वाले जीवन की समाप्ति के समय उदय मे आने वाले कर्मो ने ही हमारा वर्तमान शरीर, परिवार, जीवन साथी, वर्तमान परिस्थिति और वर्तमान उद्योग धधा अर्थात् पेशा दिया है। हमारा कार्मण शरीर ही हमारी रक्षा करता है। मृत्यु को बुलाता है, वही कही पर उपादान व कही पर निमित्त बनाता है, वही सुख और दु ख को खीचकर हमारे पास लाता है और वही हमारा सरक्षक है, वही हमारे प्राय सभी भौतिक कार्यो मे प्रधान रहता है, उसके विधान को बदलना कठिन है। अत चिता और राग-द्वेष छोडकर सतोष और समता रखकर, शुभ और शुद्ध पुरुषार्थ मे लगा रहना ही मानव धर्म है।

23 ज्ञानवार्ता—(क) जब कर्मो के प्रभाव से होने वाली पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार रुक नही सकते तो क्रोध करने से क्या लाभ ? (ख) जब मनुष्य बडा नही किन्तु समय मनुष्य से अधिक बलवान है तो अहकार करने से क्या लाभ ? (ग) जब कार्मण शरीर ही इस औदारिक शरीर का सरक्षक है तो यह औदारिक शरीर मेरा नही हो सकता। (घ) जब प्रत्येक जीव का सरक्षक ही अलग-अलग है तो उनका एक परिवार मे होने का कोई अर्थ ही नही रहता। इन भावनाओ को लाख-लाख बार जपने से जीवन मे परिवर्तन अवश्य ही आता है।

24. मोक्ष प्राप्ति मे कुछ बाधाएँ—

1 मोक्ष प्राप्ति मे प्रथम बाधक विकार है—क्रोध। इससे बचने के लिए इस प्रकार स्वाध्याय कीजिए—"क्रोधी कौशिक, चण्डकौशिक सर्प बना और समताधारी मुनि गजसुकुमाल सिद्ध बने।" बहुत दिनो तक ऐसा स्वाध्याय करने से क्रोध अवश्य ही कम होगा। क्रोध के समय मौन रहना और वहाँ से उठकर दूर चले जाना आवश्यक है।

2 दूसरी बाधा है—मान (अहम् भाव)। इसके लिए चितन और

स्वाध्याय इस प्रकार करना चाहिए—(क) मैं बडा नही हूँ, समय बडा ब
होता है। (ख) शुभ कर्मो के उदय के समय मनुष्य का काम बनत
(ग) शुभ कर्मो के उदय का समय मनुष्य का शरीर, बल, धन बल,
बल, बुद्धि बल आदि को विपरीत बनाकर मनुष्य का विनाश भी करा
है, अहकार के कारण ही कौरवो का विनाश हुआ। अर्जुन ने महाभारत
युद्ध जीता, लेकिन जब भीलो ने गोपिकाओ को लूटा तब वही अर्जुन
बचा नही सका, मनुष्य बडा नही होता समय बडा 'बलवान होता है।

रहिमन नर को कहा बडा, समय बडो बलवान।
काबा लूटी गोपिका, वही अर्जुन वही बाण।।

3 (क) परिवार मोह छोडने के लिए वर्षो तक यह स्वाध्याय
चितन करना जरूरी है कि "परिवार मेरा नही है" जिन्होने परिवार
छोडा वे मोक्ष मे गए, जिन्होने परिवार मोह नही छोडा वे मोक्ष नहीं
सके। (ख) परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष चली गई। (ग) परि
मोह मे मरने वाले कुछ लोग गाय, भैस, भेड, बकरी, कुतिया, बिल्ली
पशु बन जाते है। महेशदत्त का पिता भैंसा और माता कुतिया बनी। इस
कारण परिवार मोह था।

विशेष चिंतन—(क) परिवार मे साथ-साथ रहने से मोह पैदा
होता, साथ-साथ रहने वाली सास-बहू मे, देवरानी-जेठानी मे, कभी-क
भाई-भाई मे और पिता-पुत्र मे भी शत्रुता बन जाती है। (ख) हमारे अ
अनादिकाल से परिवार को अपना मानने की भावना बनी हुई है। इ
कारण मोह पैदा होता है। (ग) इस मोह को हटाने का सबसे उत्तम उप
यही है कि यह चितन बार-बार किया जाय कि—"परिवार मेरा नही
मृत्यु के समय तो इससे अलग होना ही पडेगा।

4. चौथी बाधा है—शरीर मोह की (देहात्म शक्ति की)। इसके लि
इस प्रकार स्वाध्याय किया जाय—"यह शरीर मेरा नही है। मैं (आत
अलग हूँ, शरीर अलग है और यह शरीर नाशवान है।"

कुछ वर्षो तक प्रतिदिन इन चार भावनाओ का स्वाध्याय करने
महान शाति प्राप्त हो सकेगी और सभव है कि किसी दिन सिद्ध पद
प्राप्ति हो सकेगी।

'णमो सिद्धाण'

दोष मत दो निमित्त को

कषाय मुक्ति : सातवा भाग

(सिद्ध पद प्राप्ति की साधना)

यह स्वाध्याय जीवन भर प्रतिदिन कई बार करना चाहिए। सामायिक ' या किसी भी खाली समय मे दुकान मे, मैदान मे, मकान मे, किसी भी ागह, दिन मे या रात मे, किसी भी समय बिस्तर पर लेटे हुए किसी भी शा मे, बिना स्नान किए भी किया जा सकता है। हजारो लाखो बार ताध्याय करने से सिद्ध पद की प्राप्ति होती है।

ोष मत दो निमित्त को सप्त-सूत्री-स्वाध्याय

ក) दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।

ब) भला हो, भला हो, सबका भला हो।

ा) नमस्कार है सब सिद्धो को, नमस्कार है सब सतो को।

1) शरीर अलग है, मै अलग हूँ, शरीर नाश्वान है।

ร) परिवार निमित्त ही बनता है।

1) धन कर्माधीन है।

ऊ) मै सिद्ध बनूगा।

थम भावना—अद्वेष भावना अक्रोध भावना

इस भावना का प्रतिदिन अधिक से अधिक स्वाध्याय करने से यह ावना मनुष्य के अवचेतन मन मे, रोम-रोम मे अपना स्थान बना लेगी और स्कार रूप मे अनतकाल तक साथ रहेगी।

इनमे प्रथम भावना के हजारो या लाखो बार स्वाध्याय करने से, सके अर्थ का चितन करने से, इस भावना को जीवन मे उतारने वाले मुनि जसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि दृढ प्रहारी, नि खदक जिनकी जीवित अवस्था मे चमडी उतारी गई थी और पॉच सौ

संत जिनको घाणी (कोल्हू) मे पेरा गया था आदि की घटनाओ का बार-बार अनुमोदन करने से और हर समय पूरी सावधानी रखकर इन्हे जीवन मे उतारने से क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त हो सकती है।

लोग कहते है कि जो मनुष्य क्रोध को जीत लेता है वह ससार को जीत लेता है। क्रोध पर पूर्ण विजय प्राप्त करने से पचहत्तर प्रतिशत से अधिक साधना सफल मानी जाती है। सर्वप्रथम क्रोध को जीतने का अभ्यास कुछ महीनो तक करना चाहिए। इससे बुराइयो को जीतना सरल हो जाता है। यदि अपने मन मे दूसरे मनुष्य को दोष देने का विचार नही आवे तो क्रोध को पैदा होने के लिए स्थान ही नही मिलेगा।

"दोष मत दो, दोष मत दो, दोष मत दो निमित्त को।
निज कर्म फल ही है मिला,
तब निमित्त बेचारा क्या करे।

"क्षमा दस लाख मासखमण से भी बढकर है।" इस भावना का स्वाध्याय भी क्रोध के हटाने मे समर्थ है। क्रोध को जीतने के लिए निम्न भौतिक उपाय भी सहायक होते हैं–

मौन रखो अरु हट ही जाओ।
हठ छोडो अरु झुक ही जाओ।।
पानी पीओ क्रोध बुझाओ।
गुरु गुण गाओ शीश झुकाओ।।

सुख या दु:ख या कोई चीज पाने वाला उपादान कहलाता है और दूसरो को सुख या दु:ख या कोई चीज देने वाला निमित्त कहलाता है।

सिद्धों को छोडकर संसार के दूसरे प्राणियो से हमे सुख या दु:ख मिलता है। इसलिए वे सब हमारे लिए निमित्त ही हैं।

मेरे लिए मेरे घर के लोग, बाहर के लोग, पशु-पक्षी, कीडे-मकोडे मक्खी-मच्छर आदि सभी निमित्त हैं। उनसे मिलने वाले दु:ख के लिए उनको दोष नही देना चाहिए और उन पर क्रोध नही करना चाहिए। मेरे अन्तराय कर्म के उदय से यदि मुझे परिवार से सहयोग नहीं मिले तो मुझे परिवार वालो को दोष नही देना चाहिए और उन पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

दूसरी भावना—परहित भावना

"भला हो, भला हो, सबका भला हो" इस भावना के स्वाध्याय से द्वेष, दुर्भावना, क्रोध, प्रतिशोध अर्थात् बदला लेने की भावना धीरे-धीरे दूर हो जाती है और मैत्री, अनुकम्पा, सम्यक् सेवा, समता आदि की भावना आने लगती है।

एक लेखक ने कहा है कि दूसरो का भला करने वाला और भला चाहने वाला भी तीर्थकर बन सकता है। क्षण भर के अपध्यान से तन्दुल मत्स्य सातवी नरक जाता है तो दूसरो का भला चाहने वाला जीव मोक्ष क्यो नही पहुँच सकता ? हमारे इस सूत्र के स्वाध्याय से चाहे दूसरो का भला नही हो तो भी हमारी शुभ भावना के कारण हमारा भला तो अवश्य होगा। जिससे हमे बाधा पहुँचती है उसका नाम लेकर बार-बार कहना चाहिए कि श्री   का भला हो, भला हो, भला हो। हमारी इन भाव तरगो से वह हमारा हित करने वाला मित्र भी बन सकता है।

तीसरी भावना—नमस्कार या विनय भावना

घर बैठे हुए भी इस भावना को भाते समय कल्पना मे दोनो हाथ जोडकर सतो को या सिद्धो को कल्पना मे सिर झुकाकर और उनके चरण छूकर भाव-वदना करनी चाहिए और मन मे यह कहना चाहिए—"नमस्कार है सब सिद्धो को, नमस्कार है सब सतो को।" इस भावना से पाप नष्ट होते है। इससे अहकार और क्रोध भी दूर होते है। इससे पुण्य, विनय, केवलज्ञान तक की प्राप्ति होती है। बाहुबलीजी को अहकार पूर्वक बारह महीनो तक कठोर तप करने से भी जो केवलज्ञान अविनय के कारण प्राप्त नही हुआ था, वह केवलज्ञान उनके अहकार छोडते ही और विनय पूर्वक छोटे सतो को वदना करने जाने के लिए एक पैर उठाते ही प्राप्त हो गया। विनय से केवलज्ञान की प्राप्ति भी होती है। विनय बारह महीने के लगातार उपवास से भी बढकर है।

विनय के सबध मे एक कविता भी है—

मैत्री भाव जीवो पर रखते।
मानवता का आदर करते।।
नमस्कार संतो को करते।

धार्मिकता के अह से बचते।।
विनयवान् भगवान है बनते।

यदि हम सिद्धो को या सतो को घर बैठे हुए भी बीस बार भाव-वदन करे तो बीस बार ही पाप का क्षय होगा और पुण्य का लाभ होगा और विनय भावना मजबूत बनेगी। यदि अहभाव आ जाये तो उसके लिए पश्चात्ताप करके आत्मा को शुद्ध करना चाहिए।

चौथी भावना—शरीर-भावना, आत्म-भावना

"शरीर अलग है। मै अलग हूँ। शरीर नाशवान है। शरीर मेरा नहीं है।" मै आत्मा हूँ। मै देह भिन्न हूँ, मै अमूर्त हूँ, मै चेतन हूँ, मै अवद्य हूँ, मै अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ, ज्ञान रूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ, निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमलज्योति हूँ, आत्मा हूँ। यह शरीर भावना है। यह देहात्म भेद ज्ञान है, यही आत्म भावना है। इसको भाते रहने से शिवभूति मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। शुरू-शुरू मे यह भावना अटपटी, विचित्र और अविश्वसनीय लगती है। किन्तु आठ-दस महीनो तक इसे भाते रहने से, इसमे पूर्ण विश्वास जम जाता है।

पांचवी भावना—परिवार मोह

मुक्तात्माओ को छोडकर ससार के सभी प्राणियो मे (देवता, मनुष्य, तिर्यच आदि में) उपादान निमित्त-सबध के कारण ही पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, मित्र-शत्रु आदि के सबध बनते है।

प्राणी के मन, वचन, काया के हलन-चलन से भिन्न-भिन्न कर्म-वर्गणाओं के पुद्‌गल आते है और कषाय के कारण आत्मा के साथ कर्म रूप मे जुड़ जाते है और इसी कारण प्राणियो मे उपादान निमित्त सबध बनते है। यदि मनुष्य मे कषाय नही हो तो उपादान निमित्त सबंध भी नही बनते। उपादान निमित्त का संबध घनिष्ट होने के कारण या अधिक साथ-साथ रहने के कारण भी प्राणियो मे प्रशस्तराग या अप्रशस्तराग या मोह तथा द्वेष आदि पैदा होते है।

सिद्धो का जन्म-मरण नही होता, उनके शरीर नहीं होता और उनके उपादान-निमित्त सबध भी नहीं बनते। वे सब अलग-अलग होते हैं। इसी प्रकार सभी प्राणियो की आत्मा मूल रूप मे अलग-अलग होती है। किन्तु

का किसी के साथ सबध नही होता। जब तक स्थूल शरीर होता है तभी तक उपादान निमित्त सबध बनते और टूटते रहते है।

उपादान-निमित्त सबध सम्यक् द्रव्य सेवा, भाव सेवा, शुद्ध भावनाओ, पश्चात्ताप, तप और समता से समाप्त हो जाता है।

मोह पर विजय पाने के लिए 'परिवार मेरा नही है।" इस भावना का हजारो बार स्वाध्याय करने से भी मोह टूट जाता है। कभी-कभी किसी भावनात्मक चोट लगने से या किसी विशेष घटना से भी मोह टूट जाता है। जिस प्रकार कि मरुदेवी माता, भरत चक्रवर्ती, बाहुबलीजी, नमिराजर्षि आदि का मोह टूट गया था।

परिवार के सभी सदस्य मेरे लिए केवल निमित्त ही बनते है। वे अपने परिश्रम से मेरे कर्मो को नही बदल सकते, मुझे शरण नही दे सकते, मेरे सरक्षक नही बन सकते, क्योकि मेरे शरीर का सरक्षक तो मेरा कार्मण शरीर ही बनता है। वे तो केवल अस्थाई निमित्त ही बनते है। उन पर क्रोध करना, मेरे लिए ठीक नही है।

छठी भावना—धन का लोभ

"धन का आना और धन का जाना मेरे हाथ मे नही है, यह मेरे कर्मो के अधीन है।" शुभ कर्मोदय के बिना केवल भाग-दौड करने और "हाय धन, हाय धन" करने या रोने से धन नही आता है। दान-पुण्य, धर्म करने से इच्छा और लोभ के बिना भी साधारण पुरुषार्थ से भी धन की वर्षा होने लगती है।

सातवी अन्तिम भावना—संकल्प

"मै आत्मा हूँ, मै शरीर के भीतर हूँ, मै सिद्ध बनूगा। मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल-अवगाहना प्राप्त करेगे। मै आनन्दघन और अभय बनूगा। इस भावना का स्वाध्याय और कल्पना दोनो करनी चाहिए। कल्पना इस प्रकार की जाती है—"मुझ आत्मा के अमूर्त आत्म-प्रदेश सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल-अवगाहना प्राप्त कर चुके है और मै सिद्ध बन गया हूँ।" इस साधना से मनुष्य के मन से सासारिक बातो और कामो के चित्र मिट जाते है। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है। यह सिद्ध पद प्राप्ति की साधना है।

चौथी शरीर भावना और इस सातवी भावना का कुछ अभ्यास होने के बाद ये दोनो भावनाएँ केवल छ शब्दो मे इस प्रकार भायी जा सकती है—

"मै भीतर हूँ, मै सिद्ध बनूगा।"

इसी प्रकार शरीर परिवार और धन के मोह को दूर करने के लिए भी इस प्रकार स्वाध्याय किया जा सकता है—"शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नही है।

ज्ञानवार्ता

अपने जीवन मे जितने पाप किए हो उनको कभी-कभी याद करके पश्चात्ताप कर लेने से वे हल्के पड जाते है।

शील पालने के लिए हमे 'शील, शील, शील' इस प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिए। विजय सेठ, विजया सेठानी की कथाओ का अध्ययन व स्वाध्याय, अनुमोदना करते रहना चाहिए।

अकेली स्त्री को अकेले पुरुष के साथ एकान्त मे बैठना या एक-दूसरे के चित्रो का देखना या एक-दूसरे की कल्पना करना या मादक भोजन शराब आदि लेना नही चाहिए।

जैन ग्रन्थो मे सत्य को भगवान कहा गया है। धर्मात्मा (सत्यवादी) को देवता नमस्कार करते है। सत्यवादी देवताओ को प्रिय लगता है, वे उसकी सहायता करते है। सत्य पॉच महाव्रतो मे एक व्रत है। सत्य को महातप माना गया है। सत्यवादी राजा हरिशचन्द्र मे देवताओ से अधिक शक्ति थी।

'णमो सिद्धाण'

सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना

कषाय मुक्ति—आठवा भाग

"सिद्ध पद पाना ही जीवन का लक्ष्य है।"

—आचार्य श्री नानेश

1. सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना—

स्वाध्याय का पाठ—"मै भीतर हूँ, मै सिद्ध बनूगा।"

चितन-ममन-समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म सा ने "मै सिद्ध बनूगा" इस भावना को समीक्षण ध्यान मे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है, अत सिद्ध बनने का सकल्प करके हमेशा बहुत समय तक इस सकल्प को बार-बार दोहराकर इसे दृढ बनाना चाहिए और स्वय की (आत्मा की) सिद्ध होने की दशा की कल्पना करनी चाहिए। इससे मनुष्य के मन मे सासारिक बातो व कामो के चित्र मिट जाते है। उसका भौतिक जीवन आध्यात्मिक जीवन बन जाता है, यह सिद्ध-पद प्राप्ति की साधना है। ये सिद्धो का अरूपी ध्यान जीवन लक्ष्य प्राप्त करने मे सहायक हो सकता है।

2 अह छोडने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

"बडा मत समझो स्वय को।।
बडा समझो बडो को, गुरुजनो को, सतो को।
दयावान को, सत्यवान को, शीलवान को, धर्मी को।।"

चितन-मनन-स्वय को बडा अर्थात् बलवान, बुद्धिमान, धनवान व धार्मिक समझना और अपने बडप्पन का प्रदर्शन करना अह (अभिमान) है। बडो को अर्थात् गुरुजनो को, सतो को, धर्मात्माओ को बडा समझना व उनकी सुसेवा करना विनय है। अह का पश्चात्ताप करने से अह और पाप नष्ट हो जाते है। अह से हानि होती है और दु ख मिलता है। विनय से बाहुबलीजी की भांति मोक्ष मिलता है। "विनयवान भगवान है बनता।"

3. क्रोध छोडने के लिए स्वाध्याय करने का पाठ—

दोष मत दो निमित्त को, दोष दो तुम स्वय को।
निज कर्म फल ही है मिला, तब निमित्त बेचारा क्या करे।।

चितन—मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली मुनि दृढ प्रहारी आदि ने निमित्त को दोष नही दिया, स्वय को ही दोषी माना, इसलिए वे मोक्ष चले गये।

4. देहासक्ति (शरीर का मोह छोडने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

"शरीर मेरा नही है, शरीर नाश्वान है, यह मुझसे अलग है, मैं इस शरीर से अलग हूँ, मै (आत्मा) सारे शरीर मे फैला हुआ भी शरीर से अलग हूँ।"

शरीर मोह छूटने के स्वाध्याय का दूसरा पाठ—"सुख मे फूल मत दुख मे रो मत, सिद्ध बनेगा।"

चितन—शरीर मेरा नही है, यह नाश्वान है, इससे सुख और दुख की अनुभूति होती है। इन अनुभूतियो से बचने वाला सिद्ध बन जाता है।

5 आत्मध्यान का पाठ—

आत्मा हूँ मै, देह भिन्न हूँ, मै अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।
मै अवद्य हूँ, अदाह्य हूँ, अजर-अमर हूँ, शाश्वत हूँ।।
शक्ति पुज हूँ, ज्ञानरूप हूँ, आनन्दघन हूँ, जीवन हूँ।
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ, विमल ज्योति हूँ, आत्मा हूँ।।

6. परिवार-मोह छोडने के लिए स्वाध्याय का पाठ—

"परिवार अपना न हुआ न होगा।"

चितन—जीव अपने कर्मो का फल भोगने के लिए और अपना कर्ज चुकाने के लिए उपादान या निमित्त बन कर परिवार मे आता है और परिवार वालो से लेना-देना समाप्त होने पर उनसे अलग हो जाता है। कर्ण, कबीर शकुन्तला, अजापुत्र आदि को जन्मते ही माता-पिता से अलग होना पड़ा। बाली-सुग्रीव को, रावण-विभीषण को भाई कैसे माना जाए ? उग्रसेन और कस को, हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद को पिता-पुत्र कैसे माना जाए ? किसी भी जीव का किसी भी जीव के साथ हमेशा के लिए स्थायी पारिवारिक सम्बन्ध नही होता।

परिवार मोह छोडने का स्वाध्याय का दूसरा पाठ–

परिवार अपना नही बना रहता।

चितन–परिवार हमे हमारे कर्म दड से नही बचा सकता। परिवार हमे हमारे कर्मफल से मिलने वाले सुख से अधिक सुख दे नही सकता। उपादान–निमित्त-सबध अर्थात् लेना-देना समाप्त होने पर परिवार हमे अपने साथ रख नही सकता। आत्माओ मे पारिवारिक सबध होते ही नही। परिवार मोह मे मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी और परिवार मोह छूटते ही मरुदेवी माता मोक्ष को प्राप्त हुई।

7 लोभ छोडने के लिए स्वाध्याय का पाठ–

"सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा, धन का लोभी नही बनूगा।"

चितन–ससार मे लोभ ही पाप और सब दुखो का मूल है। धन के लिए दूसरो का शोषण नही करना चाहिए। जैसे मधुमक्खियॉ फूलो से शहद इकट्ठा करती है वैसे ही गृहस्थ को साधारण लाभ (मुनाफा) या वेतन लेना चाहिए।

8 "णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण" या नमस्कार मत्र का बार-बार जप करना और ध्यान करना सब पापो को नष्ट करता है। इसमे णमो सिद्धाण पद का, सिद्धो की अटल अवगाहना का, सिद्धो के अमूर्त भाव का और उनके आठ गुणो का ध्यान किया जा सकता है।

9 ऊपर वाले ध्यान और चितन की विस्तृत सामग्री कषाय-मुक्ति तीसरा भाग, सातवां भाग और ध्यान एक अनुशीलन मे दी गई है।

10 सद्भावना–"नही दुख हो, नही पतन हो। किन्तु सुख सग आत्मोन्नति हो।"

अर्थ–जिस काम को हम करे उनसे किसी को दुख नही पहुँचे और उनका और हमारा दोनो का पतन भी नही हो किन्तु दूसरो को सुख पहुँचे और साथ-साथ उनकी और हमारी दोनो की आत्मा का भी उत्थान हो, वही काम सद्भावना युक्त होगा।

11 दान मे प्रथम स्थान अभयदान का है। इससे सुख और मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। दान मे सुपात्रदान और अनुकम्पा दान का भी बडा महत्त्व है। किसी भी जीव को अपनी आत्मा के समान समझ कर सहयोग दिया जाय या उसकी सम्यक् सेवा की जाय तो यह भी सुख और मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। किसी भी प्राणी को बाहरी दीन-हीन, करुणाजनक

दयनीय स्थिति देखकर करुणाभाव से उसको कुछ दान दिया जाय तो उस करुणादान से भी पुण्य और शुभ कर्मो की प्राप्ति हो सकती है। यश और कीर्ति पाने की भावना से किसी को कुछ दिया जाय तो उस दान का शुभफल मिलना रुक जाता है। अशुभ भावना से दिए गए दान का फल बहुत बुरा होता है।

12 अनुकम्पा और करुणाभाव से दिए गए दान का यदि पात्र द्वारा दुरुपयोग होता हो तो उसका अशुभफल दाता को नहीं मिलता किन्तु अशुभ क्रिया करने वाले को मिलता है। दानदाता को तो उसकी भावना के अनुसार ही फल मिलता है। मनुष्य अपनी भावनाओ व कर्मो का फल ही पाता है, दूसरो की भावना व कर्मो का नही पाता।

13 परिवार के निमित्त से व्यवहार मे हमे जो कुछ मिलता है वह निश्चय दृष्टि मे हमारे किए हुए कर्मो का फल ही होता है। उससे अधिक हमे परिवार से या किसी से भी नही मिलता क्योकि अकृत का फल अर्थात् जो काम हमने नही किया उसका फल बनता ही नही, पर-कृत का अर्थात् दूसरो के द्वारा किए हुए काम का फल उस काम के कर्ता को ही मिलता है, हमे नही मिलता।

"किया स्वय का ही नर पाता, अधिक नही परिवार से पाता।
पर-कृत का फल पर को जाता, अकृत का फल कुछ नही बनता।

14. धन–यदि हमारे अन्तराय कर्म का उदय हो तो कोई भी निमि मनुष्य या देव हमे कुछ नही दे सकता। यदि शुभ कर्म का उदय हो तो सुख और धन की वर्षा होने लगती है। साधारण पुरुषार्थ के बदले उदरपूर्ति तो हो जाती है परन्तु बहुत सुख और धन तो शुभ कर्म के उदय से ही आता है।

15 हरेक कर्म का फल भोगना पडता है। दिया हुआ व्यर्थ नही जाता और लिया हुआ व्यर्थ नही आता।

16 यदि धन अशुभ कर्मो से भी आ सकता होता तो ससार मे कोई भी मनुष्य गरीब नही रहता। अन्याय, अनीति, झूठ, कपट, हिंसा, पर शोषण, भ्रष्टाचार, अधर्म, अत्याचार और अशुभ कर्म तो सभी लोग कर सकते है फिर भी वे लोग शुभ कर्मोदय के बिना गरीब ही रहते है। मनुष्य चाहे शुभ पुरुषार्थ करे या अशुभ किन्तु धन आता है शुभ कर्मो के उदय होने से तथा धन जाता है अशुभ कर्मो के उदय होने से।

17 अशुभ कर्म के उदय को रोकना और शुभ कर्म को उदय मे लाना हमारे हाथ मे नही, महापुरुषो की बात अलग है। वे कभी-कभी केवली समुद्घात के समय या कर्मो की उदीरणा करने के लिए उन कर्मो को उनके उदयकाल से पहले उदय मे लाकर और भोग कर समाप्त कर लेते है।

18 धन का आना और धन का चला जाना कर्मो का खेल है। अत मनुष्य को लोभ मे न पडकर हमेशा शुभ पुरुषार्थ ही करना चाहिए।

19 कभी-कभी झूठ, कपट, हिसा आदि से धन आ जाता है तो हम समझते है कि अशुभ पुरुषार्थ से धन आ गया है, इसलिये अशुभ पुरुषार्थ करते रहे। लेकिन यह हमारा भ्रम है। हमे पापकर्म से जो धन वर्तमान मे मिलता है वह धन वास्वत मे पापकर्म से नही मिला। वह तो पूर्व मे किए हुए किसी शुभ कर्म के उदय से मिला है, जिसका हमे हमारे अल्पज्ञान के कारण पता ही नही चलता। इस शुभ कर्म के उदय के समय यदि हम अशुभ कर्म नही भी करे तो भी उस पूर्वकृत शुभ कर्म के प्रभाव से यह धन आ ही जाता है। शुभ कर्मो के प्रभाव से कभी-कभी चुपचाप बैठे हुए मनुष्य के पास भी धन आ जाता है। जैसे शालिभद्रजी या धन्नाजी को मिला करता था। तीर्थकरो को जब वे वार्षिक दान देते है उस समय उनके पास देवताओ द्वारा धन पहुँच जाता है, करोडपतियो के घर मे जो बच्चे जन्म लेते है वे बच्चे उसी समय करोडो रुपयो के मालिक हो जाते है। गोद या वसीयत आदि से भी बिना कमाए धन आ जाता है।

20 यदि दुख धन से दूर हो सकता होता तो ससार के लाखो धनवान मनुष्य दुखी नही रहते। वे धन से सुख खरीद लेते। हमारे द्वारा किए अशुभ कर्मो का और असाध्य रोगो का इलाज धन होते हुए भी नही हो सकता। अधिक धन के सग्रह से कुछ लोगो मे बुरी आदते पड जाती है और घर मे फूट और कलह हो जाती है। चोर, डाकुओ, धोखेबाजो और हत्यारो का भय बना रहता है।

21 सुख मिलता है सातावेदनीय नामक शुभ कर्म के उदय से। हम देखते है और सुनते है कि हजारो साधारण और गरीब मनुष्य, मजदूर आदि धन के अभाव मे भी सुखी है। उसका कारण उनके सातावेदनीय कर्म का उदय ही माना गया है।

22 लोगो का यह भ्रम है कि धन के बिना बहुत से काम रुक जाते

है किन्तु जो शुभ कर्म माता के गर्भ के अन्दर या अडो के अन्दर भी ... की रक्षा करते है और खुले आकाश मे पेडों पर घोसलो मे छोटे-छोटे ... की रक्षा करते है और पहाडो की चट्टान आदि मे भी चीटी आदि ... भोजन पहुँचाते है। वे शुभ कर्म ही मनुष्य से शुभ पुरुषार्थ करवाकर ... जीवन की रक्षा करते है। यह शरीर कर्मो की ही देन है। कर्म ही ... सरक्षक है और वे ही शरीर की रक्षा करते है। यदि मनुष्य के ... अन्तराय असातावेदनीय कर्मो का उदय हो तो उसे बहुत समय ... निराहार रहना पड सकता है। प्राणी ने जैसे कर्म किए हैं उन्हीं कर्मों ... फल के अनुसार उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था होती है। इसीलिए अशुभ कर्मो से बचना चाहिए और शुभ कर्म ही करने चाहिए।

23 लोग अपनी कन्या के विवाह के लिए पाप आदि करके ... कमाते है, किन्तु लडकियो के सुख या दु ख की व्यवस्था उनके कर्मों के अनुसार ही होती है। धनवान ससुराल मे भी रोग कलह आदि कई ... से दु ख मिल सकता है और गरीब ससुराल मे भी पुण्यवान लडकी को ... सुख मिल सकता है। माता-पिता का कर्तव्य है कि लडकी के लिए ... वंश व घर की समानता वाला अच्छा घर और योग्य वर तलाश करे ... उसको दहेज देने के लिए झूठ, कपट आदि पाप कर्मो से धन कमा... उसको दहेज देने का विचार उचित नही है। जिन कर्मो ने लडकी को ... शरीर दिया है या जिस परिवार मे जन्म दिलाया है, वे कर्म ही उसके ... होने या न होने या दीक्षा लेने आदि की व्यवस्था करते है। चिकित्सा ... लिए आवश्यकता होने पर धन आदि की व्यवस्था भी उन्ही शुभ कर्मों ... प्रभाव से ही हो जाती है।

24 यदि धन ही जीवन का लक्ष्य होता तो शालिभद्रजी, धन्ना ... जम्बू स्वामी, भरत चक्रवर्ती और अनेक राजा-महाराजा, सेठ-साहूकार ... धन छोडकर दीक्षा नही लेते, वास्तव मे त्याग ही मोक्ष का मार्ग है।

25 जिन लोगो को अपने परिश्रम के बिना माता-पिता द्वारा कमा... हुआ धन विशेषकर माता-पिता द्वारा पाप कर्मो से कमाया हुआ धन ... मे मिलता है, उनमे से अधिकाश लोग मानवता से भी गिर जाते है ... उनका भारी पतन हो जाता है।

26 प्रत्येक मनुष्य या जीव का सरक्षक उसका परिवार नहीं ... उसका सरक्षक कार्मण शरीर ही होता है। वह कार्मण शरीर ही जीव ...

उस जीव की इच्छा न होते हुए भी उससे अच्छा या बुरा पुरुषार्थ करवाता है, उसको हितकारी या अहितकारी निमित्त से मिलाता है, उसको क्षणभर मे अमीर या गरीब बना देता है, उसे कभी सुखी या कभी दु खी बनाता हे और उसके जीवन की सारी सुव्यवस्था या कुव्यवस्था करता है। अत सुख या दु ख आने पर भी किसी से भी राग-द्वेष नही करना चाहिए क्योकि हमारे अपने कर्मो से ही हमे सुख-दु ख मिलता है।

27 कभी-कभी किसी पूर्वजन्म के पाप से धन का आना रुका हुआ हो तो वर्तमान के शुभदान, पुण्य, धर्म या शुभकर्म करने से धन की वर्षा होने लगती है।

28 "बाहर कुछ नही, सब कुछ भीतर।
रक्षक भीतर, भक्षक भीतर।

चितन–शरीर के भीतर हमारी आत्मा के साथ चिपके हुए सूक्ष्म शुभ कर्म पुद्गल सज्जनो को हमारे सुख का निमित्त बनाते है और अशुभ कर्म पुद्गल दुर्जनो को हमारे दु ख का निमित्त बनाते है। इसलिए किसी से राग-द्वेष करना भूल है।

29 अप्रत्यक्ष रूप से धर्मात्मा, पुण्यात्मा, सच्चा समाज सेवक उस मनुष्य को समझा जाय जो सामाजिक रीति-रिवाजो मे जैसे विवाह आदि मे दहेज, रोशनी, बाजा, बहुत बडी बारात, बहुत खर्चीले भोजन आदि की व्यवस्था मे धन के खर्च को घटाता है जिससे हजारो साधारण मनुष्यो को खर्चा घट जाने से अनीति, पाप और हिसा द्वारा धन कमाने के लिए मजबूर नही होना पडे।

30 ज्ञानवार्ता–1 शुभ कर्मो के प्रभाव से शत्रु द्वारा की हुई हानि लाभ मे बदल जाती है। जैसे–कौरवो द्वारा दिए गए जहर से भीम को लाभ ही हुआ। 2 प्रद्युम्नकुमार के जन्मते ही देवता द्वारा हरण किया जाना और उसे जगल मे भारी पत्थर की शिला के नीचे दबाया जाना प्रद्युम्नकुमार के लिए बहुत लाभ का कारण बना। 3 मुनि गजसुकुमालजी को उनके सिर पर अंगारे रखे जाने का दड निन्यानवे लाख भव के बाद मिला। 4 अच्छी भावना से की गई सम्यक् सेवा का फल बहुत बडी मात्रा मे मिलता है। 5 सत्य बोलने के कारण महाराजा हरिशचन्द्र मे तपस्वियो और देवताओ से भी अधिक ताकत थी। 6 अहिसा, सयम, तप और धर्म पालने वालो को देवता भी नमस्कार करते है। 7 अपने माता-पिता, वृद्धो और सतो की सेवा

और उनको प्रणाम करने से पुण्य बढता है। 8 मनुष्य जब तक परिवार रहे तब तक यथाशक्ति परिवार की आवश्यक सम्यक् सेवा करता रहे इस परिवार का और ससार का कर्ज उतरता है। 9 प्रसन्नचन्द्र मुनि ने समय मे तीव्र अशुभ भावो से सातवे नरक पहुँचने वाले कर्म पुद्गलों उपार्जन कर लिया किन्तु उनका बध होने से पहले ही उन्हे अपने पश्चात्ताप के भावों से नष्ट करके केवलज्ञान उपार्जन कर लिया और को प्राप्त किया। 10 धन साथ नही जाता किन्तु शुभदान के द्वारा दि हुआ धन शुभ कर्म रूप मे उसी जन्म मे या मरने के बाद अलगे जन्म सुख पहुँचाता है। 11 श्रीपाल राजा का कोढ और मैनासुन्दरी का दु:ख करने से दूर हो गया। 12 जिस मनुष्य के पास धन ठहरने का योग नहीं है, तीर्थकरो द्वारा उसको दिया गया दान भी देवताओ द्वारा उसकी मुट्ठी से छीन लिया जाता है। 13 तन्दुल मत्स्य एक जीव को भी नही मारता फि भी महादुर्भावना के कारण सातवे नरक मे जाता है। 14. किसी भी जीव को थोडा-सा दु:ख दिए बिना भी केवल बुरी भावना से भी मनुष्य पाप कमा लेता है और छोटे-बडे जीवो की रक्षा करने की भावना से भी बहुत बडा पुण्य कमा लेता है। 15 पाप करके खुश होने वाला मनुष्य अधिक पाप कमा लेता है। 16 मनुष्य से पाप हो जाने पर उस पाप के लिए पश्चात्ताप करने से उसका पाप हल्का हो जाता है या कभी-कभी नष्ट हो जाता है। 17 मृगा लोढा के पिता राजा थे, उनके पास बहुत धन था, फिर भी धन से मृगा लोढा का दु:ख दूर नही कर सके। 18 जिस मनुष्य का धन और अन्न दूसरों के उचित उपयोग मे नही आता वह मनुष्य सहज मे ही पापी बन जाता है। 19. किसी का कुछ भला करके, अहकार नही करना चाहिए और ऐसा सोचना चाहिए कि मै इस प्राणी का कर्जदार था और आज मेरा कर्ज उतर गया। 20. यदि मनुष्यो मे कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) न हो तो उपार्जित अशुभ कर्मो का बध नही होता। वे तुरन्त झड जाते हैं। 21 'शील, शील, शील' ऐसा जप नित्यप्रति करने से मनुष्य शील पालने में दृढ बनता है। 22 'समता, समता, समता' ऐसा हमेशा जप करने से मनुष्य समतावान बनता है। 23 'सत्य, सत्य, सत्य' ऐसा प्रतिदिन जप करने से मनुष्य सत्यवान बनता है। 24. 'क्षमा, क्षमा, क्षमा' ऐसा नित्य जप करने से मनुष्य का क्रोध नष्ट हो जाता है। 25 हमेशा सन्ध्या के समय या किसी भी समय या उसी समय दिन भर किए हुए पापो का पश्चात्ताप किया जाय तो वे पाप

प्राय नष्ट हो जाते है। 26 अशुभ कर्मो का बध अहकार के कारण निकाचित बन सकता है। 27 किसी से अपनी अनावश्यक सेवा कराना पाप है और दूसरो की आवश्यक सुसेवा करना धर्म है। 28 कपट से किसी के पास धन नही आता। यदि आता है तो ठहरता नही, यदि ठहरता है तो वह धन उसे बरबाद करके चला जाता है। 29 शुभ कर्मो के उदय होने पर ही देवता, तान्त्रिक या मित्र आदि सुख के निमित्त बन सकते है। 30 मनुष्य चाहे डॉक्टर, इजीनियर, वकील या बहुत् बडा व्यापारी आदि कुछ भी बन जावे किन्तु शुभ कर्मो के उदय के बिना उसे स्वस्थ शरीर, सुखद परिवार, शुभचितक, मित्र, मन की शाति, धन और सुख नही मिलता। 31 सदा दूसरो का भला करने वाला तीर्थकर बन जाता है। 32 टेलीविजन से ऑखे बहुत जल्दी खराब हो जाती है। कम से कम बारह फुट दूर बैठकर देखना चाहिए। 33 बडो की तथा अनुभवी लोगो की राय लेने वाला अहकार, दु ख व हानि से बच जाता है। 34 मनुष्य अपने परिवार वालो के कर्म को नही बदल सकता इसलिए वह व्यर्थ मे ही उनके लिए चिता करता है। 35 गृह कार्य के कार्य का बॅटवारा हो जाने से सदस्यो मे मन मुटाव नही होता। 36 माता-पिता द्वारा घर की जमीन और सम्पत्ति का बॅटवारा हो जाने से उनकी सतान मे झगडा नही होता। 37 मनुष्य के बत्तीस दॉत है इसलिए भोजन के हर एक ग्रास को बत्तीस से ज्यादा बार चबा-चबा कर ही खाना चाहिए। दूध आदि पीने की चीजो को धीरे-धीरे पीना चाहिए। 38 जो मनुष्य दूसरो मे गुणो को ही देखता है और उनकी सराहना करता है, वह गुणवान और विनयवान बन जाता है।

31 इस पुस्तक के प्रारम्भ मे दिए गए आठ पाठो का प्रतिदिन नियमित रूप से स्वाध्याय करने के साथ-साथ उन्हे आचरण मे उतारने का अभ्यास कीजिए और बार-बार दोहराइए, चितन कीजिए और याद रखिये।

1 चौथा पाठ–"शरीर मेरा नही है। यह नाशवान है।" भोजन, रोग, चोर, दु ख-दर्द, तप, उपसर्ग, मनोरजन या खुशी आदि के समय इन्हे याद रखने से दु खानुभूति-सुखानुभूति, हर्ष-विषाद और राग-द्वेष से मनुष्य बच जाता है और नये कर्म नही बधते।

2 छठा पाठ–परिवार अपना हमेशा बना नही रहता। परिवार वालो के साथ या उनके बारे मे बातचीत या किसी कार्य के समय इस पाठ को दोहराने और याद रखने से परिवार मोह छूट जाता है।

3 दूसरा और तीसरा पाठ–"बडा मत समझो स्वय को, दोष ... निमित्त को।" इस पाठ से अहकार और क्रोध दूर होते है।

4 सातवा पाठ–"धन का लोभी नही बनूगा।" इसे व्यापार ... वेतन, मजदूरी, फीस, ब्याज आदि के और क्रय-विक्रय मे लाभ लेते ... याद रखने से लोभ लालच नही होता।

5 पहला, पॉचवा, आठवा पाठ–"मै आत्मा हूँ, मै सिद्ध बनूगा।" "णमो सिद्धाण।" इनका स्वाध्याय, जप और ध्यान सवेरे शाम ... जब-जब समय मिले तभी करना चाहिए।

इन आठो पाठो का स्वाध्याय और चितन सिद्ध पद प्राप्ति का ... है।

32 ग्रन्थ पथ सब जगत के, बात बतावत तीन,
राम हृदय मन मे दया, तन सेवा मे लीन।
– जवाहर विचार सार की दो पंक्ति

33 भौतिक सुख मे फूल मत, दु ख मे रो मत।
सिद्ध बनेगा, इस बात को हर पल याद रख।।

34 भौतिक सुख या धन आदि प्राप्त होने पर फूलने या खुश ... के बजाय धन्नाजी और जम्बू स्वामी की तरह यह सोचना चाहिए कि इससे मेरी आत्मा को तो कुछ प्राप्त नही हुआ है। मै हर्ष किस बात का मनाऊँ और कुछ खो जाने या दु ख आने पर रोने के बजाय मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह यह सोचना चाहिए कि इससे मेरी आत्मा को तो कुछ नुकसान नही हुआ है। अत मै दु ख क्यों करू।

धन तथा सुख प्राप्ति

धर्म के मर्म को जानने वाले और आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले ... पुरुषो को छोडकर ससार के प्राय अधिकाश लोग दिन-रात धनोपार्जन ... लिए भाग-दौड करते है फिर भी सब धनवान नही बनते हैं। इस प्रकार ... दौड लगाने वाले मे कुछ लोग तो ऐसे भी मिलेगे जिनको पेट भरने को ... पूरा भोजन भी नही मिलता।

जिन लोगो ने पूर्व जन्मो मे या इस जन्म मे खटमल या पर-... जन्तु की तरह दूसरो का खून चूसा है, गरीबो का शोषण किया ... सीधे-साधे लोगो को ठगा है, दूसरो का धन लूट-लूट कर उन्हें ...

वनाया है, केवल अपने स्वार्थ की पूर्ति की है और दूसरो के काम मे बाधा ओर अन्तराय पहुँचाई है, उन लोगो ने अन्तराय कर्म और असातावेदनीय अर्थात् दु ख देने वाले अशुभ कर्मो का बध किया है। उनको उनके अशुभ कर्म और अन्तराय कर्म धन और सुख को प्राप्ति नही होने देते।

अन्तराय कर्म करने वालो को बाधा ही बाधा मिलती है। दूसरो के धन लाभ मे अन्तराय डालने वाले को लाभान्तराय के कारण धन का लाभ नही होता। दूसरो के भोजन मे अन्तराय डालने वाले को भोगान्तराय के कारण धन होते हुए भी भोजन की प्राप्ति नही होती है। वह वीमार पड जाता है और कुछ खा नही सकता। दूसरो के शिक्षा और ज्ञान प्राप्ति मे अन्तराय डालने वाले को विद्या और ज्ञान की प्राप्ति नही होती।

अन्तराय कर्म मे महान शक्ति है। तीर्थकर ऋषभदेव को भी बारह महीनो तक निराहार (भूखा) रहना पडा। तीर्थकर महावीर को भी पॉच महीने सताईस दिन तक अभिग्रह पूरा न होने के कारण निराहार रहना पडा। जब तक अन्तराय कर्म की अवधि समाप्त नही होती तब तक दिन-रात कठोर परिश्रम करने पर भी मनुष्य को धन और सुख का लाभ नही होता।

धन और सुख उन्हे मिलता है जो दूसरो को दान, भूखो को भोजन, प्यासो को पानी, वस्त्रहीन को वस्त्र, आश्रयहीन को आश्रय, रोगी को दवा, दु खी को सात्वना देते है और निराश्रित, पीडित, विकलाग, रोगी आदि की सेवा करते है। ऐसे परोपकारी लोगो मे भी जो अधिक पुण्य करते है उनको साधारण पुरुषार्थ करने पर और कभी-कभी बिलकुल पुरुषार्थ नही करने पर भी केवल पूर्वकृत पुण्य के कारण धन और सुख की प्राप्ति हो जाती है। शालिभद्र को उनके पूर्वकृत महापुण्य के कारण परिश्रम किए बिना भी देवलोक से धन आता रहा। धन्नाजी को साधारण पुरुषार्थ से ही हमेशा धन की प्राप्ति होती रही। तीर्थकरो को वार्षिक दान देने के लिए पूर्वकृत महापुण्य के कारण देवो द्वारा बिना किसी परिश्रम के धन प्राप्त होता था।

करोडपति के घर मे जन्म लेने वाला बच्चा जन्म लेते ही करोडो रुपयो का स्वामी बन जाता है। कारकुण्ड जिसका बचपन चाडाल के घर मे बीता, उसको भी आसानी से ही राज्य मिल गया। किसी को वसीयत से और किसी को जमीन मे गडा हुआ धन मिल जाता हे। इस धन की

प्राप्ति मे पुरुषार्थ और बुद्धि प्रधान नही है। केवल धन पाने वाले के
कर्मो की प्रधानता रहती है।

धन की प्राप्ति हो न हो किन्तु मनुष्य के जीवन की रक्षा भी
पुरुषार्थ किए बिना भी उसके पूर्वकृत पुण्यो से होती है। जैसे कौरवो द्वारा
भीम को जहर खिलाने के बाद भी उसके जीवन की रक्षा और महाबल
प्राप्ति भी उसके पूर्वकृत पुण्य के कारण हुई। प्रद्युम्नकुमार की रक्षा
अनेक विद्याओ की प्राप्ति इसी प्रकार हुई। अर्जुनमाली के मुदगर से
सुदर्शन की रक्षा भी केवल उसके पूर्वकृत पुण्य से हुई।

जिस पुरुषार्थ से और बुद्धि से मनुष्य धन कमाता है वही पुरु
और बुद्धि अशुभ कर्मोदय के कारण धन के विनाश का कारण बन
है। वह धन किसी धूर्त ग्राहक द्वारा ठग लिया जाता है, बाजार के
गिरने से उसमे हानि हो सकती है, वह धन आग मे जल सकता
चोर-डाकुओ द्वारा छीना जा सकता है या मनुष्य बीमार पड जाता है
उसका सारा धन रोग खा जाता है। यदि मनुष्य के भाग्य मे धन की प्राप्ति
न हो तो तीर्थकरो द्वारा दीक्षा लेने से पहले दिया गया दान भी देवता
द्वारा बीच मे ही छीन लिया जाता है। यदि अन्तराय कर्म और अशुभ क
कारण किसी मनुष्य के उपादान (भाग्य) धन के आने या ठहरने का
हो तो संसार की कोई भी शक्ति या स्वर्ग के देवता भी उसे धन नहीं
सकता। मनुष्य धन कमाने के लिए अपने पुरुषार्थ और बुद्धि का
करता है किन्तु यह उसका भ्रम ही है क्योकि "बुद्धि वैसी ही बन जाती
जैसी कर्मो की गति चाहती।" बुद्धि तो प्राय कर्मो के खेलने के लिए
सुन्दर मैदान तैयार करती है। जिस प्रकार साइकिल के दोनो पहिये हैंडल
के साथ ही मुडते रहते है उसी प्रकार बुद्धि और बल रूपी दोनो पहिये
रूपी हैडल के साथ-साथ ही मुडते रहते है। बुद्धि और बल की अपेक्षा
मे अधिक शक्ति है।

यह मनुष्य का केवल भ्रम ही है कि कपट या हिंसा या अशुभ
से धन कमाया जा सकता है या जाते हुए धन को रोका जा सकता
कपट से यदि धन आता तो कोई भी मनुष्य गरीब नही रहता। कपट से
आता नही, यदि आता है तो ठहरता नहीं, यदि ठहरता है तो वह धन
स्वामी को बरबाद करके चला जाता है।

कर्म सिद्धात का यह अटल नियम है कि मनुष्य दूसरो को सुख या दु ख, अन्न या धन जो कुछ जैसा देता है वह वैसा ही सुख या दु ख अन्न या धन उसी रूप मे या अन्य किसी रूप मे पाता है और यदि एक देता है तो उस दान के बदले मे सौ या हजार या लाख या करोड गुना पा सकता है। सेठ धनावह के घर मे तीर्थकर महावीर को उडद के बाकले बहराये गये। उसके बदले मे वहॉ सोने की वर्षा हो गई। धन्नाजी को पूर्वभव मे साध्वीजी को खीर बहराने के बदले धन, सुख और सिद्ध पद की प्राप्ति हुई। जो दान देता है, शील पालता है, तप करता है, समता भाव रखता है, शुभ भावना भाता है, स्वाध्याय करता है और दूसरो की सम्यक् सेवा करता है वह उसके बदले मे धन, सुख, स्वर्ग और मोक्ष भी पा सकता है।

नही रोऊंगा, सिद्ध बनूगा

आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा ने अपने एक प्रवचन मे फरमाया है कि जीव की जैसी भावना उसकी मृत्यु के समय होती है, वैसी ही उसकी गति बन जाती है। महापुरुष तो अपने गहरे ज्ञान से और मर्यादित जीवन से महाव्रतो का पालन करते हुए अपनी मति और गति सुधार लेते है, किन्तु हम साधारण श्रावक हमेशा बहुत समय तक शरीर की आसक्ति और परिवार मोह छूटने की भावनाओ का स्वाध्याय करे और अभ्यास भी करे तो हमारी भी मति और गति सुधर सकती है। स्वाध्याय सबसे बडा तप है और इसमे भावनाओ को सुधारने की महान शक्ति है।

मनुष्य को साधारणतया उसके अन्तिम समय मे या तो शरीर का कष्ट सताता है या परिवार का मोह बॉध रखता है। शरीर का मोह छोडने के लिए इस प्रकार का चितन किया जा सकता है–"यह शरीर मेरा नही है। इसकी रक्षा होना या नही होना कर्मो के हाथ मे है।" इसके लिए स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है–"शरीर के कष्ट व दु खो के समय चिता नही करूगा। मुनि गजसुकुमाल शरीर कष्ट से नही रोये, वे सिद्ध बने। मै भी सिद्ध बनूगा।"

परिवार का मोह जीव को ससार मे बॉधे रखता है। कभी-कभी नरक मे भी भेज देता है। परिवार का मोह छोडने के लिए इस प्रकार का चितन करना चाहिए–"परिवार बधन किसी को कर्मो के दड से नही बचा सकते।

महासती अजना कहती है कि मेरे अशुभ कर्मो ने उदय मे आकर बहुत
तक मुझे व मेरे पतिदेव को दूर-दूर रखा। उसके बाद मेरे ससुराल
व पीहर वालो को भी बहका दिया और मुझे घर से निकलवा दिया।
और धन भी किसी को सातावेदनीय कर्मो के उदय के बिना सुख न
सकते। परिवार के और ससार के सभी जीवो को उनके कर्म अपने-
कमरो मे बद रखते है। उन कर्मो की आज्ञा के बिना कोई किसी
भी सहायता नहीं कर सकता है।" परिवार की चिता ओर मोह छोडने
ही सिद्ध बनता है। इसके लिए यह स्वाध्याय किया जा सकता है-
जीवो का भला या बुरा करना या उनको सुख या दु ख देना उन
कर्मो के हाथ मे है। उनके परिवार के हाथ मे नही है। मै परिवार
छोडूगा और मरुदेवी माता की तरह सिद्ध बनूगा।"

संक्षेप मे अपनी मति और गति सुधारने के लिए इस प्रकार
किया जा सकता है–(क) शरीर कष्ट मे और दु खो मे नही रोऊगा
बनूगा। (ख) परिवार मेरे कर्मो की स्वीकृति के बिना मेरी सहायता नहीं
सकता। (ग) मरुदेवी माता परिवार मोह छोडकर सिद्ध बनी।

इनके साथ-साथ जीवन को ऊँचा उठाने व सिद्ध-पद पाने के
इस प्रकार का चितन व स्वाध्याय किया जा सकता है–(क) "दोष
निमित्त को" इस भावना के स्वाध्याय से मनुष्य क्रोध से मुक्त हो जाता
(ख) स्वय को अधिक बुद्धिमान् या धनवान या धर्मात्मा समझने
अहकारी बन जाता है और वह फूल उठता है। बाहुबलीजी ने अ
छोडा और वे केवली और बाद मे सिद्ध बने। (ग) "णमो सिद्धाण
सिद्धाण" व नवकार का ध्यान करने वाला सब पापो से मुक्त हो जाता
और (घ) अपने किए हुए पापो का पश्चात्ताप करने वाला भी अपने पा
प्राय नष्ट कर देता है। पश्चात्ताप करन से महासती मृगावतीजी,
चण्डरुद्राचार्य और मुनि कूरगडुक को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी।



'समीक्षण ध्यान' मेरी दृष्टि में

कषाय मुक्ति   नवा भाग
समीक्षण ध्यान एव स्वाध्याय सग्रह

1 आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म सा ने समता दर्शन और समीक्षण ध्यान पर प्रकाश डालकर मानव जीवन का बहुत उपकार किया हे। समीक्षण ध्यान का अर्थ है–अपने आत्मा के उद्धार और सुधार हेतु अपने विचारो और कार्यो को देखना, अपने पाप और पुण्य का हिसाब देखना, पिछले किये हुए अशुभ कर्मो से बचते हुए अपने जीवन का नवनिर्माण और सिद्ध पद प्राप्त करने के लिए स्वाध्याय और अभ्यास करना।

2 समीक्षण ध्यानकर्ता का यह लक्ष्य होता है कि उसकी विचारधारा व आचरण ऐसे बन जावे कि उसके शरीर, वचन व मन से दूसरो का बुरा न हो, किसी की हिसा न हो। उसके किसी भी कार्य से दूसरो को दु ख नही हो, उनका पतन नही हो, उनको सुख मिले और उनकी आत्मा का उत्थान हो।

न ही दु ख हो न ही पतन हो।
किन्तु सुख सग आत्मोन्नति हो।।

इसके साथ ही साथ स्वय की आत्मा का उत्थान हो और इसके लिए अपनी तरफ से कुछ त्याग करने की जरूरत हो तो वह त्याग करे।

यह अखेद, अद्वेष, अभय, अभिमानहीन, मोहहीन, चिताहीन, रागहीन बनने की साधना है। वह बाहर की प्रतिकूल या अनुकूल स्थितियो से प्रभावित नही होता और भीतर से विचलित नही होता। वह पूर्ण वीतराग बनने का प्रयास करता है। ये कार्य भी तभी हो सकता है जबकि हम अपने जीवन के लक्ष्य को समझ ले और स्वाध्याय, जप द्वारा उसे पुष्ट बना ले।

3 इस दृष्टि से समीक्षण ध्यान को तीन भागो मे बाटा जा सकता है। सर्वप्रथम मानव जीवन के लक्ष्य को समझना और उसे पुष्ट करना। दूसरे नम्बर पर अपने पहले किए हुए अशुभ कर्मो को पश्चात्ताप द्वारा ओर समतापूर्वक भोग-भोग कर उनको क्षय करना। तीसरे नम्बर पर नये अशुभ

कर्मो से बचते हुए जीवन का नवनिर्माण करना अर्थात् अपने शरीर ... धन आदि की चिंता, मोह से बचना।

4 लक्ष्य का स्थिरीकरण–मनुष्य को धन और सुख की चिंता ... सताती है तथा विद्वानो और पडितो को अपनी प्रसिद्धि और पूजा की ... लगी रहती है। मनुष्य को धन और सुख के सम्बन्ध मे छ बातों का ध्यान रखना चाहिए, जिससे वह धन व सुख के लोभ से बच ... (क) जाने वाला धन चला ही जाता है। इसे चले जाने से रोकने वाले ... ससार मे नही है। अमीर आदमी भी पापोदय से गरीब हो जाता ... (ख) अन्तराय कर्म का उदय हो तो कठिन से कठिन मेहनत करने पर ... धन नही आता। कभी-कभी तो बुद्धि विपरीत बनकर मनुष्य के धन ... सुख दोनो का विनाश कर देती है। (ग) धन होते हुए भी सातावेदनीय ... के उदय के बिना सुख नही मिलता। (घ) सातावेदनीय कर्म के उदय ... से साधारण आमदनी होते हुए भी मनुष्य सुखी बना रहता है। (ङ) ... किसी काम के होने का योग नही हो तो अपार धन के होते हुए भी ... नही बनता। (च) यदि किसी काम के बनने का योग हो तो धन नहीं ... हुए भी कही से सहायता मिलकर वह कार्य बन जाता है। इन छ बातों ... ध्यान रखकर मनुष्य को धन और सुख का लोभ छोडना चाहिए और ... को हमेशा दान और शुभ कार्यो मे लगाना चाहिए। दान से धन और ... दोनो ही मिलते है। दान मे महान शक्ति है।

5 विद्वान, पडित और धार्मिक लोगो को प्रसिद्धि और पूजा की ... सताती है, जिससे अहम् भाव से उनकी बुद्धि विपरीत बनकर उनका ... और विनाश करा देती है।

6 मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है सिद्ध पद पाना और सिद्ध पद ... पा सकता है, जो धन और सुख का लोभ छोड दे और प्रसिद्धि व पूजा ... लोभ छोड दे।

7 पुराने अशुभ कर्मो का व पापो का क्षय जिस प्रकार किसान ... मे बीज बोता है, उससे पहले वह खेत को साफ करता है। इसी प्रकार ... पद पाने की इच्छा करने वाला प्राणी अपने पुराने पापो को याद कर ... उनके लिए पश्चात्ताप व प्रायश्चित करता है और उदय मे आने ... को समतापूर्वक भोग-भोग कर क्षय करता है।

8. जीवन का नवनिर्माण–समीक्षण ध्यान मे तीसरी मुख्य बात ... नवीन कर्मो को आने से रोक देना। यह तभी हो सकता है जबकि ...

कषाय को और मोह-ममता को छोड दे। इस कार्य को करने के दो उपाय हैं। प्रथम उपाय है स्वाध्याय और दूसरा उपाय अभ्यास। साधारणतया शरीर की आसक्ति, परिवार का मोह, क्रोध और अहकार इन चारो अवगुणो को छोडने से जीवन का नवनिर्माण हो सकता है और वह कभी न कभी सिद्ध पद पा सकता है।

9 शरीर की आसक्ति को छोडने के लिए नीचे लिखी भावनाओ का हमेशा वर्षो तक स्वाध्याय, चितन करना चाहिए।

(क) दु ख मे रो मत, भौतिक सुख मे फूल मत, सिद्ध बनेगा।

(ख) शरीर बनेगा मिट्टी, मै बनूगा सिद्ध।

(ग) मै भीतर हूँ, मै सिद्ध बनूगा, सिद्ध लोक मे सिद्ध दशा मे अटल अवगाहना प्राप्त करूगा।

(घ) शरीर कष्ट मे, उपसर्गो मे रोना छोडो, सिद्ध बनोगे। मुनि गजसुकुमाल नही रोये, वे सिद्ध बने।

10 परिवार के मोह से मुक्ति पाने के लिए इन भावनाओ का स्वाध्याय किया जा सकता है।

(क) मनुष्य के उपादान मे अर्थात् भाग्य मे यदि धन और सुख पाने का योग नही हो तो उसे परिवार से भी धन और सुख नही मिलता है।

(ख) कर्म परिवार वालो को क्षण भर मे दूर-दूर कर देता है।

(ग) कौन है अपना ? कोई नही अपना।

11 क्रोध से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है–दोष मत दो निमित्त को, यह कर्म-फल ही है मिला, निमित्त बेचारा क्या करे।

12 अहकार से मुक्ति पाने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय किया जा सकता है। अहकार बुद्धि को विपरीत बना कर बडो-बडो का विनाश कर देता है।

बडा मत समझो स्वय को।
बडा समझो बडो को, गुरुजनो को, संतो को।

13 सक्षेप मे समीक्षण ध्यान के लिए प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल बनाने का स्वाध्याय कीजिए और इसकी कला सतो से सीखिए और उनका अभ्यास कीजिए। रो मत दु ख मे, फूल मत सुख मे, सिद्ध बनेगा। इस भावना का भी हमेशा बहुत देर तक स्वाध्याय कीजिए।

14 ध्यान हमेशा निश्चित समय पर शातिपूर्ण एकात स्थान म सुखपूर्वक बैठकर करना चाहिए। किन्तु जीवन का नवनिर्माण करने वाले भावना को अनाशक्त बनाने वाला, वीतराग भाव को मजबूत करने वाला समीक्षण ध्यान 24 घंटो मे जब-जब भी समय मिले तब-तब ही किया जा सकता है। इसके लिए स्थान की भी कोई पाबदी नही होनी चाहिए। यह घर मे, दुकान मे या बाहर कही भी किया जा सकता है। यह कमजोरी या बीमारी की अवस्था मे लेट कर भी किया जा सकता है।

याद रखिए–

शरीर की आसक्ति छोडनी है, परिवार का मोह छोडना है क्रोध से बचना है और अहंकार से दूर रहना है। इन चार बातो से जीवन निर्माण हो सकता है।

प्रतिकूल और अनूकूल

जो बात हमे अच्छी नही लगे, उसे हम प्रतिकूल स्थिति कहते है। ऐसे समय मे हमारे मन मे दुर्भावना आती है ओर हम हिसक विचार और हिसक काम करने लगते है। जो मनुष्य प्रतिकूल को अनुकूल और अनुकूल को प्रतिकूल समझने की कला को सीख लेते है वे मनुष्य समीक्षण ध्यान की साधना कर सकते है। मृत्यु, रोग, चोट, अपमान, हानि आदि के समय हमे दु ख होता है और हम हिसक बन सकते हैं। ऐसे समय मे हम उस दु ख की अनुभूति को भुलाना, दु.ख को समतापूर्वक सहने के लिए अपने विचारो को स्वाध्याय द्वारा दूसरी तरफ मोड देना ही प्रतिकूल को अनुकूल बनाना है।

उस समय यह स्वाध्याय करना चाहिए कि–1 यह दु ख, दु ख नही है। 2 यह हमारे कर्मो का फल है। 3 इसे तो भोगना ही पडेगा। 4 इससे बचने का कोई उपाय नही है। 5 इससे आत्मा का कुछ बिगडता नही है। 6. इससे आत्मा का लाभ ही होता है। 7 इस समय समता रखने से कर्म कटते है। 8 कर्म कटने से जीव को सिद्ध पद मिलता है।

महासती चन्दनबाला को जब मूला सेठानी ने उसका सिर मुंडा कर उसे कमरे मे बद कर दिया था, तब चदनबाला ने यही भावना भायी कि मेरे लिए यह अच्छा हुआ। मुझे तपस्या करने और स्वाध्याय करने के लिए समय मिल गया। धन्य है मूला सेठानी, उसने मुझे मेरे कर्म काटने में सहायता दी।

इसी प्रकार अनुकूल को प्रतिकूल समझ कर सुख भोगो से बधने वाले कर्मो से बचा जा सकता है। उस समय इस प्रकार स्वाध्याय करना चाहिए कि–

1 यह सुख सच्चा सुख नही है। 2 यह आर्तध्यान है। 3 इद्रियो से मिलने वाले सुख से तृप्ति नही होती है। 4 उससे तृष्णा बढती है। 5 इससे आत्मा की हानि होती है। 6 इससे आत्मा को लाभ नही होता है। 7 इन सुखो मे रस लेने से नये कर्म आते है। 8 इसमे रस लेने वाला ससार मे भटकता रहता है। 9 भौतिक सुखो को सुख नही समझकर इनमे रस नही लेने वाला ही सिद्ध बनता है।

प्रतिकूल को अनुकूल समझना और अनुकूल को प्रतिकूल समझना समीक्षण ध्यान का महत्त्वपूर्ण अग है।

सक्षेप मे नीचे लिखी भावना को हमेशा बहुत देर तक भाते रहिये–"शरीर की, परिवार की चिता छोडो, ममता छोडो, दु ख-दर्द मे रोना छोडो, भौतिक सुख मे फूलना छोडो, परिवार और शरीर की चिता छोडो क्योकि दोनो की रक्षा केवल कर्मो के हाथ मे है, ममता छोडो क्योकि आयु कर्म और दूसरे कर्म जीव को परिवार से दूर कर देते है, दु ख-दर्द मे रोना छोडो क्योकि रोने से दु ख दूर नही होता, रोने से नवीन अशुभ कर्म आते है और वे बाद मे दु ख देते है, भौतिक सुख मे फूलना छोडो क्योकि यह भौतिक सुख खाज-खुजली की तरह है, जितनी खाज शरीर पर करेगे उतनी ही अधिक खाज करने की इच्छा बढती जावेगी, सुख भोगो से कभी तृप्ति नही होती है। इससे नवीन अशुभ कर्मो का बध भी होता है।

"शरीर बनेगा मिट्टी–मै बनूंगा सिद्ध'

कुछ लोग अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे पछताते हुए और यह कहते हुए पाये गये है–हमने अपना जीवन शरीर के मोह मे और सुख भोगो मे खो दिया। हमने अपनी आत्मा के साथ ले जाने के लिए कुछ भी नही कमाया। इस पछतावे से बचने के लिए आप आज से ही प्रतिदिन कम से कम डेढ-दो घटे नीचे लिखे हुए चार सूत्रो का जाप (स्वाध्याय) और चितन-मनन कीजिए–

1 शरीर बनेगा मिट्टी। इस सूत्र के स्वाध्याय के समय अपनी मृत्यु के बाद अपने शरीर के मिट्टी बन जाने की दिशा मे कल्पना भी कीजिए।

2. शरीर अलग है, इस शरीर से मै (आत्मा) अलग हूं। इस शरीर के अन्दर अपने आत्मा के होने की अनुभूति या कल्पना कीजिए।

3 मै (आत्मा) ही मेरा हूँ। इस सूत्र के स्वाध्याय के साथ केवल अपने आत्मा की कल्पना कीजिए और किसी भी दूसरी चीज की कल्पना मन मे नही आनी चाहिए।

4. मै बनूगा सिद्ध। आप अपनी आत्मा की सिद्ध रूप मे होने की कल्पना कीजिए।

ऊपर वाले चार सूत्रो के भावार्थ के चिंतन-मनन की सामग्री कुछ नीचे दी जा रही है, कुछ सत महात्माओ से पूछिए, कुछ दूसरी पुस्तको से प्राप्त कीजिए और शेष अपनी आत्मा से पूछिए जो अनत ज्ञान का भण्डार है।

5. शरीर बनेगा मिट्टी। ससार मे कोई मनुष्य अमर नही रहा। तीर्थकरो को भी देह छोडनी पडी। सभी जीवो के शरीर मिट्टी बन जाते है। मेरा शरीर भी किसी दिन मिट्टी बनेगा। शरीर के दु.ख मे रोना और सुख मे फूलना अज्ञान है और नवीन अशुभ कर्मो के बध का कारण है। शरीर के कष्ट से आत्मा कुछ खोता नही है। इसलिए दु.ख मे रोना भूल है। उस समय समता भावना के स्वाध्याय मे लीन होकर मुनि गजसुकुमालजी की तरह समतामय बन जाना मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। भोतिक सुख से आत्मा को कुछ मिलता नही, इस सुख के समय फूलना नहीं चाहिए किन्तु स्वाध्याय मे लीन होकर समतामय बन जाना चाहिए। शरीर के लिए मोह छोडने वाले और मोह छोडने वाले को मोक्ष मिलता है।

6 संदूक अलग है और इसके भीतर वाले कपडे उससे अलग है। ढोल अलग है और उसके अन्दर वाला सामान अलग है। इसी प्रकार शरीर अलग है और शरीर के भीतर फैला हुआ मै (आत्मा) शरीर से अलग हूं।

7 मै आत्मा ही मेरा हूँ। यह शरीर, परिवार, धन आदि गुजरा मात्र है। ये मेरे नही है। इनकी चिंता व मोह छोडो। मोह राग छोडने से, वीतराग बनने से, अनासक्त बनने से मोक्ष मिलेगा।

8 मै सिद्ध बनूंगा। मै संसार की सब चीजों को छोडकर सिद्ध ... मे सिद्ध दशा मे अटल अवगाहना प्राप्त करूगा। इस समय केवल अपने आत्मा के सिद्ध दशा मे होने की कल्पना ही मन मे होनी चाहिए।

उपरोक्त सूत्रो के जाप और चिंतन से ये विचार प्रथम ... बनकर ज्ञान का रूप धारण करते हैं। उसके बाद साधना ...

दूसरे चरण मे यह ज्ञान दर्शन अर्थात् दृढ श्रद्धा का रूप ले लेते हे और तीसरे चरण मे यह दर्शन आचरण मे आकर चारित्र का रूप ले लेता हे। यही मोक्ष का मार्ग है। यह स्वाध्याय आभ्यन्तर तप भी है। इससे कर्मो की निर्जरा भी होती है। एक विद्वान ने लिखा है कि किसी विचार का दस लाख बार जप हो जाने से वह अनन्त काल तक जीव के साथ उसके आचरण मे वना रहता है।

"शरीर बनेगा मिट्टी, मै बनूगा सिद्ध।" इन दो सूत्रो का अधिक से अधिक स्वाध्याय कीजिए।

साधना की विधि

वहुत से लोगो ने सतो के बहुत से प्रवचन सुने है किन्तु उन्हे उनमे से बहुत कम बाते याद है और जो याद है उनमे से बहुत कम बाते उनके जीवन मे, आचरण मे आती है। यदि प्रवचन सुनकर उनमे से कुछ वाते घर आकर कॉपी मे नोट कर ले तो कभी-कभी इनकी पुनरावृत्ति भी हो जाती है और यदि किसी विचार को साधना के लिए हमेशा कुछ महीनो तक प्रतिदिन कुछ समय तक बार-बार दोहरावे, उसे तोते की तरह रटे, इनकी पर्यटना करे, उसका जाप करे, उसके अर्थ और भावार्थ का चितन-मनन करे, उस विचार की दृष्टि से अपने कार्यो और घटनाओ का चितन-मनन करे तो यह विचार या भावना उस साधक के अवचेतन मन मे जम जाती हे, आदत का रूप ले लेती है और कुछ महीनो तक इस साधना को जारी रखने से उस साधक का मनचाहा पूर्ण रूपान्तरण भी हो जाता है।

मुनि अर्जुनमाली ने भगवान महावीर द्वारा दिए गए उपदेश की बातो का इसी प्रकार स्वाध्याय किया और साधना से उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हो गया। उन्होने उन उपदेशो को शायद कुछ-कुछ इस प्रकार सूत्रो मे वॉध लिया होगा–"ससार मे कोई भी जीव किसी का या मेरा शत्रु नही है, मै अपने ही अशुभ कार्यो का फल पा रहा हूँ, यक्ष के प्रभाव मे मेरे आ जाने से, मेरे इस निमित्त से 1141 आदमियो की हत्या हुई है, इसके बदले मे मुझे कठोर दड मिलना चाहिए था, किन्तु ये लोग तो बहुत दयालु दिखते है, मुझे थोडा-सा दण्ड देकर ही छोड देते है। मुझे समता रखनी चाहिए। मे इन्हे दोष क्यो दू ? समतापूर्वक कष्ट सहन करने से मेरे अशुभ कर्म कट जाएँगे ।" मुनि अर्जुनमाली ने छ महीने तक उपर्युक्त विचारो का स्वाध्याय किया होगा और कष्ट सहने का अभ्यास किया होगा। छ महीने की इस साधना से उन्हे केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

मुनि दृढ प्रहारी ने भी नगर के दरवाजो पर खडे रहकर [illegible] तक राहगीरो के द्वारा दिए गए उपसर्गो और कठोर वचनो को समता [illegible] पूर्वक स्वाध्याय करते हुए सहन किया और इस प्रकार स्वाध्याय [illegible] अभ्यास के द्वारा साधना करने से उन्हे भी केवलज्ञान हो गया। [illegible] करने मे समय अवश्य लगता है, मुनि गजसुकुमाल जैसे प्राणी की [illegible] तो एक ही दिन मे सफल हो सकती है किन्तु जिन पर कर्मो का भारी [illegible] लदा हुआ हो, उनको तो साधना मे 2-4 वर्ष और इससे भी कुछ [illegible] समय लग सकता है।

कुछ लोग कहते है–"क्रोध छूटता नही। समय पर क्रोध आ [illegible] जाता है। जो लोग अभ्यास मे बार-बार चूकते है, ऐसे लोग यदि [illegible] छोडने के लिए ही स्वाध्याय करते रहे तो उन्हे भी 2-4 वर्ष मे सफ[illegible] अवश्य मिल सकती है। एक सूत्र की टीका मे लिखा है कि एक [illegible] "धम्मो मगल मुक्किट्ठ" इस सूत्र का लगातार स्वाध्याय किया तो उसे 12 साल बाद केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। एक विचार का बार-बार [illegible] करने से उस विचार मे श्रद्धा उत्पन्न होती है और यह श्रद्धा चारित्र [illegible] ले लेती है। साधना का यही मत्र है।

स्वाध्याय तोता रटत नही है, तोता अबोध पक्षी है, उसका [illegible] बेकार जा सकता है किन्तु मनुष्य तो समझदार होता है। उसका [illegible] स्वाध्याय रूप जीवन सूत्र को शुद्ध भावना से रटना कभी भी व्यर्थ नही [illegible] सकता। उसका फल इस जन्म या भविष्य के किसी जन्म मे अवश्य मि[illegible] है। रटना स्वाध्याय का एक अंग है। यह आभ्यन्तर तप है। इससे कर्मो [illegible] निर्जरा होती है और आत्मा मोक्ष तक प्राप्त कर सकती है।

धार्मिक शिविरो मे क्रोध, मान, माया, लोभ, चिता, मोह, [illegible] विकथा आदि से मुक्ति पाने का अभ्यास अवश्य कराया जाना चाहि[illegible]

परिवार भावना

(क) सभी जीवो के मुख्य-मुख्य भौतिक काम उनके [illegible] शरीर के आदेशानुसार होते है। (ख) कोई भी जीव किसी भी दूसर[illegible] के कर्मो को नही बदल सकता। (ग) परिवार का या ससार का [illegible] जीव किसी दूसरे जीव को उसके कर्मो के दण्ड से बचा नही [illegible] (घ) इसीलिए परिवार का मेरे लिए और मेरा मेरे परिवार के लि[illegible] करना व्यर्थ है। (ङ) परिवार के सदस्यो का एक दूसरे से वियोग [illegible]

निश्चित है। (च) इसलिए परिवार को अपना समझना और परिवार का मोह करना व्यर्थ है। (छ) परिवार की चिता छोडो, मोह छोडो। (ज) मनुष्य के ऊपर,परिवार का कर्जा हो सकता है। उसे सम्यक् सेवा द्वारा अपने परिवार व माता-पिता का कर्जा चुकाना चाहिए। प्राणी मात्र की सम्यक् सेवा करना मनुष्य का धर्म है। (झ) चिता और मोह को छोडने वाला अनासक्त बन सकता है और मरुदेवी माता की तरह मोक्ष पा सकता है।

शरीर भावना

शरीर भावना इस प्रकार भायी जा सकती है–

(क) यह शरीर अलग है, मै अलग हूँ, शरीर नाशवान है। यह मेरा नही है।

(ख) शरीर पर कष्ट आने के समय इस कष्ट को भूलने के लिए उस समय नीचे लिखी हुई भावना मे लीन हो जाना चाहिए–यह कष्ट मेरे कर्मो का फल है, यह मुझे भोगना ही पडेगा। इसको भोगते समय समता रखने से ये कर्म कट जाएगे और चिता व आर्तध्यान न होने से नवीन अशुभ कर्म नही बधेगे। इससे मेरी आत्मा का कुछ भी नही बिगडा है, मैंने कुछ भी नही खोया है, किन्तु मेरा आत्महित ही हुआ है। कर्मो की निर्जरा हो रही है, मे मोक्ष के नजदीक पहुँच रहा हूँ, इसलिए शरीर की चिता छोडो व शरीर का मोह छोडो, इससे मुनि खन्दक, मुनि गजसुकुमाल आदि की तरह मोक्ष मिलेगा।

उपर्युक्त भावना को और अधिक मजबूत बनाने के लिए 8-10 महीनो तक डेढ-दो घटे प्रतिदिन स्वाध्याय और चितन-मनन करना चाहिए। इसी प्रकार भौतिक सुख के समय भी मनुष्य को फूलना नही चाहिए, खुशी नही मनानी चाहिए किन्तु स्वाध्याय करना चाहिए कि–"यह सुख भी सच्चा सुख नही है, इससे अशुभ कर्मो का बध होगा।" इस भौतिक सुखानुभूति से बचने वाला ही अनासक्त बन सकता है।

धन, परिवार, शरीर की चिता करने से अशुभ नारकीय कर्मो का बध होता है। अनासक्ति भावना की तरह समता भावना, बारह भावनाएँ, आत्मध्यान, आत्म-भावनाएँ, कषाय मुक्ति की भावनाएँ, भगवान का भजन आदि भी मोक्ष प्राप्ति के मार्ग है।

चिता छोडो, मोह भी छोडो।
अनासक्त को मोक्ष मिलेगा।।

अनासक्ति भावना को बार-बार दोहराने से, इसका जप ... अनासक्ति के सूक्ष्म शुद्ध परमाणु का कवच-सा बन जावेगा, जो ... आसक्ति से बचावेगा। सक्षेप मे इस भावना का सूत्र इस प्रकार है। ... हमेशा एक-डेढ घटे भाने वाला सब कर्मो से मुक्त होकर मोक्ष मार्ग ... पथिक बनता है।

धन, परिवार, शरीर की,
चिंता छोडो, मोह छोडो,
अनासक्त को मोक्ष मिलेगा।

कर्म निर्जरा

जीवन लक्ष्य पाने के लिए कर्मो की निर्जरा करना बहुत जरूरी ... इसका प्रथम उपाय है शुभ और शुद्ध कर्मो का अनुमोदन करना। ... अनुमोदन से मनुष्य के विचार और उसकी भावना शुद्ध बनती है और ... कठिन परिश्रम के बिना आसानी से धर्म का लाभ होता है। चन्दनबाला ... भगवान महावीर स्वामी को दान दिया और सुबाहुकुमार ने सुगुरु ... के भव मे साधुजी को दान दिया और सगम ने साधुजी को खीर ... इससे वे मोक्षमार्ग के अधिकारी बने। इसका अनुमोदन करने ... अनुमोदन करने वाले को दान देने का फल मिलता है और वह भवजल ... पार भी कर सकता है।

विजय सेठ और विजया सेठानी के शीलपालन की, सेठ सुदर्शन ... शीलपालन की और दूसरो के शीलपालन की कथा का अनुमोदन ... शीलपालन मे दृढता आती है और अशुभ कर्मो की निर्जरा होती है ... रानी, महाकाली रानी, सुकाली रानी, धन्ना मुनि आदि के तप की ... अनुमोदना करने से, तप करने से होने वाले धर्म-लाभ का फल मि... मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदाई, मुनि अर्जुनमाली, ... प्रहारी, मुनि खण्दक आदि के समता भाव और क्षमा भाव का अनुमोदन ... चितन करने से हमारे अशुभ कर्म नष्ट होते है।

कर्म निर्जरा का दूसरा उपाय है—अपने किए हुए पापो का ... करना और हो सके तो उनका प्रायश्चित लेना। इससे बहुत से कर्म ... पड जाते है और कुछ कर्म तो नष्ट ही हो जाते हैं।

कर्म निर्जरा का तीसरा उपाय है—समता भाव रखना। ... स्वाध्याय का सूत्र है—"रो मत दु ख मे, फूल मत सुख मे, ...

कर्म निर्जरा का चौथा उपाय है—शुद्ध ज्ञान, ध्यान मे लीन रहना। शुद्ध ज्ञान के चितन से मन अशुद्ध कामो की तरफ नही जाता है और इससे ज्ञानावरणीय कर्मो का क्षय भी होता है और मनुष्य के विचार निर्मल (शुद्ध) वनते जाते है।

तीन बाते

स्व आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने पद्य की दो पक्तियो मे थोडे शब्दो मे जीवन को ऊँचा करने वाला सब धर्मो का सार बता दिया है—

ग्रथ पथ सब जगत् के, बात बतावत तीन,
राम हृदय, मन मे दया, तन सेवा मे लीन।

'राम हृदय' इन शब्दो का भाव है कि मनुष्य भगवान का अर्थात् सिद्धो का गुणगान, ध्यान और सिद्ध बनने का सकल्प करे तो सिद्धो का ध्यान और सिद्ध बनने का सकल्प करने वाला और इस भावना को दृढ बनाने वाला कर्मो की बहुत निर्जरा करता है। इसके साथ-साथ सिद्धो का ध्यान करते हुए और 'णमो सिद्धाण' इस पाठ का जप करते हुए मनुष्य ससारी वातावरण से निकलकर आध्यात्मिक वातावरण और शुद्ध ध्यान मे लगा रह सकता है। यह भक्ति मार्ग है और परमात्मा की भक्ति करने वाला मुनि दृढ प्रहारी की तरह परमात्मा बन जाता है।

इस पद्य मे दूसरी बात यह बताई गई है कि "मनुष्य को अपने मन मे सब जीवो के प्रति दया रखनी चाहिए।" दया अर्थात् अनुकम्पा, करुणा आत्मा का सबसे बडा गुण है। जो मनुष्य सब जीवो पर पूर्ण दयाभाव रखता है, धर्मरुचि अणगार की तरह क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह से बच जाता है। उसकी आत्मा स्वच्छ, निर्मल और शुद्ध बन जाती है। सभी धर्मो ने दया को, अहिसा को मनुष्य का प्रथम व सबसे बडा धर्म बताया है।

इस पद्य मे तीसरी बात 'तन सेवा मे लीन' बताई गई है। जैन दर्शन मे सेवा धर्म को तप से भी ऊँचा स्थान दिया गया है। अगर कोई साधु तपस्या करता है और इससे उसके दूसरे सतो की सेवा करने मे बाधा आती हो तो वह तप को छोड दे किन्तु दूसरे सतो की सेवा अवश्य करे। दूसरो की सेवा करने से मनुष्य का अभिमान दूर होता है। सेवा वही कर सकता है जो अपने शरीर, परिवार और धन के लोभ को छोडता है। सेवा मे गृहस्थ और साधु अपनी-अपनी मर्यादाओ का ध्यान रखते हुए अपने आत्म धर्म ‾ग और पॉच महाव्रतो का भी पालन कर सकते है। इस प्रकार ५२म।

भजन, सब जीवो पर दयाभाव और उस दयाभाव के अनुसार दूसरो की सम्यक् सेवा करना सिद्ध पद प्राप्ति का एक मार्ग बन जाता है।

अंजना का चिंतन

महासती अजना को ससुराल वालो ने और पितृगृह वालो ने घर से निकाल दिया। तब वन मे पहुँचकर वह अपनी सखी वसन्तमाला से कहने लगी–"सखी ! कर्मो का खेल बडा विचित्र है। कर्मो के साथ न देने पर कोई भी प्राणी दु ख से बच नही सकता। मैंने पहले ही कहा था कि वन मे जाना ही ठीक है, मेरे अशुभ कर्मो के उदय ने मुझे अपना अशुभ फल देने के लिए, मेरे परिवार वालो को निमित्त बनाकर मुझे घर से निकलवाया। वन में भिजवाया ताकि मै उन कर्मो का दु ख भोग सकू, उन्ही कर्मो ने मुझसे प्यार करने वाले मेरे माता-पिता के विचारों को भी बदल दिया और मुझे घर मे ठहरने भी नही दिया। जब तक उन अशुभ कर्मो का फल मै भोग नही लूंगी तब तक मुझे वन मे ही रहना पडेगा। उन कर्मो की अवधि समाप्त होने पर मेरे ससुराल वाले और पीहर वाले दोनो ही मुझे प्रेम से अपने पास बुलायेगे। परिवार वालो को मेरा नही किन्तु मेरे कर्मो का साथ देना पडता है। अतः परिवार का मोह करना व्यर्थ है।"

परिवार है साथी नही मेरा।
परिवार है साथी कर्मो का।

ज्ञान की बातें

नीचे लिखे हुए विचार सम्यक् ज्ञानवर्धक है। इनका हर समय और विशेषकर सवेरे, शाम स्वाध्याय किया जा सकता है। इनके स्वाध्याय के लिए सभी समय और सभी स्थान उपयुक्त है। इनका स्वाध्याय सामायिक मे या दुकान पर बैठे हुए भी किया जा सकता है। इनके स्वाध्याय के लिए स्नान आदि करने का भी कोई नियम नही है। इनके स्वाध्याय करने से ज्ञानावरणीय कर्मो का क्षय होता है और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

1. जीव (मनुष्य, पशु-पक्षी आदि) अपने इस जन्म मे या किसी पूर्व जन्म मे किए हुए कर्मो का फल ही पाते है।

2 यह फल जिस जीव को हमने पूर्व में सुख या दु ख दिया, वो उस निमित्त से या उस निमित्त के मोक्ष आदि मे चले जाने पर किसी दूसरे निमित्त से या प्रकृति से (जैसे गिर जाने से, टॉग के टूट जाने पर) मिलता

है। इसलिए ससार मे किसी को अपना शत्रु समझना या निमित्त को दोष देना भूल है। जो किसी को दोष नही देता है, वह क्रोध और द्वेष से बच जाता है।

3 परिवार या धन किसी जीव को अशुभ कर्मो के दड से नहीं बचा सकता इसलिए परिवार के मोह या धन के लोभ से बचना ही राग से बचना है।

4 राग और द्वेष से बचने वाला ही वीतरागी बनता है और वही मोक्ष पाता है।

5 ससार मे एक जीव का दूसरे जीव के साथ उपादान निमित्त का सम्बन्ध कर्मो के द्वारा, कर्मो के कारण और कर्मो के विधानानुसार बनता है। इसी उपादान निमित्त का सम्बन्ध निभाने के लिए एक जीव दूसरे जीव के साथ पति-पत्नी, पिता-पुत्र, भाई-बहन, स्वामी-सेवक आदि के रूप मे परिवार मे या मित्र-शत्रु के रूप मे आते है और उपादान निमित्त सम्बन्ध के समाप्ति के साथ ही साथ ससार के दूसरे सारे सम्बन्ध समाप्त हो जाते है और एक जीव का दूसरे जीव से वियोग हो जाता है। परिवार केवल उपादान निमित्तो का एक स्थान पर सयोग ही है। इसके स्वाध्याय से मोह से बचा जा सकता है।

6 मनुष्य कर्माधीन है। जीवो को अपने कर्मो का फल भोगने के लिए उपादानो और निमित्तो के रूप मे प्राय एक परिवार मे आना पडता है। इस प्रकार जन्म के लिए परिवार का चुनाव करना जीव के हाथ मे नही किन्तु उनके कर्मो के हाथ मे है।

7 जब-जब पुराने कर्मो का योग समाप्त हो जाता है और दूसरे नवीन कर्मो का उदय होता है तब-तब जीव को परिवार से अलग होना पडता है या मृत्यु जन्म द्वारा दूसरे परिवार मे जाना पडता है। इस प्रकार मृत्यु और जन्म का समय कर्मो द्वारा साधारणतया नियत होता है।

8 जीव अपने कर्मो का फल जिस उद्योग धन्धे से भोग सके उसे वैसा ही धन्धा करने की या उसे बार-बार बदलने की योजना भी प्राय कर्मो से बनती है, सम्भव है कभी-कभी कोई बहुत हल्के कर्मो वाला जीव इसमे अपनी उच्च भावना के अनुसार परिवर्तन भी कर सके।

9 भिन्न-भिन्न अन्तराय कर्मो के उदय द्वारा जीव के ज्ञान प्राप्ति मे, धन प्राप्ति मे, सुख प्राप्ति मे, स्वास्थ्य प्राप्ति मे बाधाएँ भी कर्मो द्वारा आती

है और सुख-दुःख भी साता-असाता वेदनीय कर्मो के उदय और सत्ता पर निर्भर करता है।

10 साधारणतया सभी मोटे-मोटे भौतिक कार्यों की योजना कर्मों के हाथ मे रहती है फिर भी कभी-कभी किसी अज्ञात उच्च भावना के आने पर जीव सब कर्मो को दबाकर ऊपर उठ जाता है और फिर आत्महित कर लेता है।

11 सभी जीव अपने ही शुभ कर्मो से ऊँचे उठते हैं और अपने ही अशुभ कर्मो से नीचे गिरते है। निमित्त तो केवल निमित्त ही रहता है निमित्त किसी को ना तो ऊँचा उठा सकता है ना ही किसी को नीचा गिरा सकता है। अत. जीव को अपनी ही भावनाओ को उच्च और मजबूत बनाने की जरूरत है।

12 द्रव्य क्रिया दुर्भावना से जीव को नीचे गिराती हे और शुद्ध भाव से जीव को ऊँचा उठाती है।

13 काया से मनुष्य जितना पाप, पुण्य या धर्म करता हे उससे हजारो, लाखो, करोडो गुणा पाप-पुण्य या धर्म वह केवल अपनी ही भावनाओ से कर लेता है। तन्दुल मत्स्य एक जीव को भी नहीं मारता है फिर भी दुर्भावना से सातवे नरक में जाता है और वीतराग अनासक्त भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है।

14. जीव को हमेशा दान, शील, तप, समता भावना आदि का अनुमोदन और अपने पापों का प्रायश्चित करते रहना चाहिए। इससे जीव ऊँचा उठता है।

15 दान, शील, तप, समभाव, सेवा, परसेवा ओर अपने धर्म क्रियाओ का अहंकार करने वाले जीव को इन सब क्रियाओं का शुभ किंचित मात्र मिलता है अत. अहकार आने पर अहकार का प्रायश्चित करना चाहिए। अहकार छोडने के निम्नलिखित विशेष सूत्र हं–

(क) अहकार से रावण जैसे महापण्डित का और हिरण्यकश्यप जैसे महाशक्तिशाली व्यक्ति का पतन हो गया। मनुष्य अपने-आप को कर्म-दण्ड से नहीं बचा सकता।

(ख) मनुष्य कर्मो के हाथ का खिलौना हे। उसका किसी बात के लिए अहंकार करना भूल है।

(ग) शक्ति है थोडी, ज्ञान है थोडा, अह को छोडो।

(घ) मैने पर-हित नही किया है। अपना निज कर्ज चुकाया है। इसके लिए अह भाव मन मे आना भूल है।

(ङ) बडा मत समझो स्वय को, बडा समझो बडो को, गुरुजनो को, सतो को।

16 मोक्ष जाने मे शरीर आसक्ति ही बाधक है। इसे किसी स्वाध्याय से या तप से दूर करने वाला ही मोक्ष पा सकता है। इसका एक सूत्र यह है–"शरीर बनेगा मिट्टी, मै बनूगा सिद्ध।" दो-चार वर्ष हमेशा इसका स्वाध्याय और इसके भावार्थ का चितन-मनन करते रहना चाहिए।

17 (क) धन का आना और धन का चले जाना कर्मो के हाथ मे है। इसका लोभ करने वाला और इसके लिए चिता करने वाला मनुष्य कभी सुख नही पा सकता।

(ख) जिस घर मे छोटे, बडो का आदर और उनकी सेवा करते है और बडे, छोटो मे अच्छे धार्मिक सस्कार डालते है किन्तु उन्हे धार्मिक उन्माद से बचाते है, उस घर मे सभी लोग यदि उनके पूर्व के अशुभ कर्मो का उदय न हो तो प्राय सभी सुख पाते है।

18 महाहिसा, महाआरम्भ, महापरिग्रह और बडे-बडे हिसा के कारखानो की योजना बनाना अशुभ कर्म बध का कारण है। जितने दिन तक जिनती बार ऐसे कार्यो का विचार किया जाता रहेगा उतने दिन तक उतनी ही बार अशुभ कर्मो का बध होता रहेगा और उनका उदय होने पर दु ख पाना होगा।

19 इन चार बातो का हमेशा चितन करना चाहिए–

(क) किसी को दोष न देने वाला क्रोध से बच जाता है।

(ख) ज्ञान है थोडा, शक्ति है थोडी, इसका स्वाध्याय करने वाला अहकार से बच जाता है।

(ग) परिवार और धन किसी को कर्म बध से नही बचा सकते। इसका स्वाध्याय करने वाला परिवार के मोह और धन लोभ से बच जाता है।

(घ) "शरीर बनेगा मिट्टी, मै बनूगा सिद्ध" इसका स्वाध्याय करने वाला सभी आसक्तियो से बच जाता है और मोक्ष प्राप्त करता है।

20 किया हुआ व्यर्थ नही जाता, दिया हुआ व्यर्थ नही जाता और मुफ्त मे कुछ नही मिलता।

21. परमात्मा की भक्ति, दीनो के प्रति दया भावना और सभी जीवों की यथाशक्ति सम्यक् सेवा करना ही मानव मात्र का धर्म है।

सम्यक् सेवा–

सम्यक् सेवा के तीन लक्ष्य और चार विवेक हैं–

जीव को जीविका लायक, ज्ञान प्राप्त करने लायक और मोक्ष प्राप्त करने लायक बनाना। ये तीन लक्ष्य है और आत्मा को केवल आत्मा समझना अर्थात् उनको भाई-भतीजा आदि समझकर मोह नही करना, नि स्वार्थ भाव से सेवा करना, किसी तीसरे जीव को दु ख नही देना और अपने स्वार्थ का भी कुछ त्याग करना–ये चार विवेक है, अपनी आत्मा का ज्ञान होना ही ज्ञान योग है और आत्म भावना भाने वाला मोक्ष प्राप्त करता है। आत्मभावना ये है–मै ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मुझ आत्मा का नही है। यह शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नही हैं। इनकी चिंता छोडने वाला और मोह छोडने वाला मोक्ष पाता है।

22 मनुष्य शुभ कर्म करके बहुत से अशुभ कर्मो को शुभ मे बदल सकता है।

23 कपट से धन आता नहीं, अगर आता है तो ठहरता नही, यदि ठहरता है तो वह उस व्यक्ति को बरबाद करके चला जाता हे।

24 सत्य आचरण और धर्मात्मा व्यक्ति को देवता भी नमस्कार करते है, सहयोग करते है।

25 शुभ या अशुभ कर्मो का फल यदि उनके करते समय नही मिले तो कभी-कभी बाद मे इस जन्म या अलगे जन्मो मे मिलता हे।

26 यदि आप किसी जीव को दु ख देना चाहते है या गाली देते है तो उस व्यक्ति का नुकसान तो उसके अशुभ कर्मो के उदय के बिना नहीं होगा किन्तु आपकी दुर्भावना के कारण आपके अशुभ कर्मो का बंध तो हो ही जायेगा और उसका अशुभ फल आपको तो मिलेगा ही।

27 दूसरो का केवल हित चाहने वाला भी तीर्थंकर बन सकता है।

28. दोनों वक्त भोजन के समय और रात को सोते समय अपनी भूलों और पाप का पश्चाताप करने से कर्म निकाचित नहीं बधते और प्राय नष्ट हो जाते है।

29 दूसरो को गाली देने वाला, दूसरो का बुरा चितन करने वाला और बुरा करने वाला निश्चय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपने अशुभ भावो के कारण अपना ही बुरा करता है।

30 दूसरो का हित सोचने वाला और हित करने वाला निश्चय मे अप्रत्यक्ष रूप से अपने शुभ भावो के कारण अपना ही भला करता है और यह तीर्थकर नाम कर्म उपार्जन करने का एक उपाय है।

31 जिस घर मे माता-पिता अधिक धन कमाने की अपेक्षा बच्चो मे अच्छे सस्कार डालने पर ध्यान देते है और बच्चे माता-पिता को सवेरे नमस्कार करते है और माता-पिता मे पूरी श्रद्धा रखते है वह परिवार सुख समृद्धि से परिपूर्ण रहता है।

32 मनुष्य और कुछ नही कर सके तो 'णमो सिद्धाण', णमो सिद्धाण' इसका स्वाध्याय ज्यादा से ज्यादा समय तक करे, यह भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है।

33 दो मित्रो मे एक मित्र वेश्या के यहाँ गया किन्तु वहाँ जाकर पश्चात्ताप करने लगा—"हाय ! मै, कहाँ आ गया, धन्य है मेरा मित्र जो धर्म चर्चा सुन रहा है।" दूसरा मित्र सतो के प्रवचन सुनने गया किन्तु वह सोचने लगा कि "मै कहाँ इन रूखे शब्दो को सुनने आ गया। धन्य है मेरा मित्र, जो वेश्या के यहाँ जाकर मनोरजन कर रहा है।" ऐसा सोचकर पहले मित्र ने शुभ कर्मो का उपार्जन किया और दूसरे मित्र ने अशुभ कर्मो का उपार्जन किया। अत शुभ या अशुभ कर्म अपनी-अपनी भावना के अनुसार बनते है।

34 प्रत्येक धार्मिक क्रिया मे भावना के साथ विवेक रखने से धर्म होता है, किन्तु विवेक नही रखने से अर्थात् जीव रक्षा का ध्यान या यतना नही रखने से या उस क्रिया के परिणाम पर ध्यान नही रखने से पाप भी हो सकता है। जैसे उपवास करना धर्म है किन्तु गर्भवती महिला यदि उपवास करे तो उसे पाप लगता है।

35 दो साधु है, उनमे से एक बीमार है। यदि दूसरा साधु तप करता है और तप के कारण बीमार साधु की सेवा नही कर सकता है या बाधा पहुँचती है तो वह तप धर्म नही है।

36 कभी-कभी मनुष्य के मन मे बहुत निकृष्ट, दुष्ट-भावना आती है जिससे वह बिना कुछ किए हुए ही तन्दुल मत्स्य की तरह ओर प्रसन्नचद्र

मुनि की तरह केवल भावना-भावना से ही सातवी नारकी के कर्मों का उपार्जन कर लेता है। उस समय यदि वह प्रसन्नचद्र मुनि की तरह पश्चात्ताप कर लेता है तो उन सभी अशुभ कर्मो को उसी समय नष्ट कर सकता है। भावना मे इतनी महान शक्ति है कि पश्चात्ताप से प्रसन्नचद्र मुनि ने, कुरगडुक ने, चडरुद्राचार्य ने और चंडरुद्राचार्य के नवदीक्षित शिष्य ने केवल भावना-भावना से ही क्षण भर मे केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

37 धार्मिक चर्चा सिर्फ ज्ञान प्राप्ति के उद्देश्य से बहुत कम मात्रा मे करनी चाहिए। उसके हार या जीत की सीमा तक पहुँचने से वह झगडे का रूप धारण कर लेती है और पालक व स्कन्दकाचार्य की कहानी दन जाती है। पालक ने धर्मचर्चा मे हारने के कारण स्कन्दकाचार्य के पॉच सो शिष्यो की हत्या करवायी थी।

38. कम बोलो और अधिक सुनो। जो सुनो उस पर विचार करो उसे समझो तथा उसका पालन करो। इसी प्रकार जितना पढो उससे अधिक उस पर चितन करो और उससे अधिक स्वाध्याय करके उसे आचरण मे उतारो। इसीसे जीवन ऊँचा उठता है।

39 सुख मे फूलने का अर्थ यह है कि धन, पद, मान आदि पाकर अपने-आप को बडा समझना, जिससे अहं भाव पैदा होता है। अह भाव के कारण मनुष्य की बुद्धि दब जाती है। सच्ची और सही सलाह को सुनने के लिए उसके कान बंद हो जाते है, सही सलाह देने वालो के सामने उसकी ऑखे बद हो जाती है। उसके पख लग जाते है, वह जमीन पर नहीं चलता, वह आकाश मे ही उडता रहता है और अंत मे तूफानो मे घिर जाता है और थक कर गिर पडता है। भौतिक सुख मे फूलने वाले का पतन हो जाता है।

निन्मलिखित महाहिसक चीजों से बचिए

मोटे मुलायम चमडे के लिए जीवित पशुओ के ऊपर उबलता पानी डालकर उन्हे बेतो से पीटा जाता है तथा जीवित अवस्था मे ही उनकी खाल खीच ली जाती है। बढिया जूतो के लिए गर्भिणी मादा पशुओं का वध करके उनके गर्भ के बच्चो को निकाल कर उनका वध किया जाता है। असली रेशम जीवित कीडो को पानी मे उबालकर प्राप्त किया जाता है। लोरिस जानवर की ऑखे पीस कर सौदर्य प्रसाधन बनाए जाते है। इनको बनाने के बाद जिस लोशन का उपयोग किया जाता है उसकी जॉच गिनी पिग नामक जानवर की त्वचा पर की जाती है। सील मछली के शि

सिलाई घोप दी जाती है ताकि बेदाग व अखण्ड खाल निकल आए। इसके बच्चे के रोओ से कोट आदि बनते है। कस्तूरी मृग व सीवेट को कस्तूरी के लिए मारा जाता है। मृग की नाभि से कस्तूरी मिलती है। इसके चर्म से चप्पले, पर्स, खिलौने बनते है। कछुए के अवयवो से प्राप्त चर्बी से तेल बनाया जाता है जो सौदर्य प्रसाधन की तरह काम मे लेते है। सॉप के गॉल ब्लडर से शराब, दवाई बनाई जाती है। मधुमेह--डायबिटीज की इन्सुलिन नामक दवा भेड, बैल, गाय के अग्न्याशय से प्राप्त होती है।

शेम्पू की जॉच खरगोश की ऑखो मे की जाती है। टिड्डो को चर्बी मे मिलाकर चॉकलेट बनाई जाती है। दीमक को तलकर मसालो मे बघारा जाता है। मेढक की टॉगे विदेशो मे बडी स्वादिष्ट मान कर खाई जाती है। हाथी दॉत की बनी चीजे, मछली के तेल से बनी हुई दवाइयॉ, चरबी से बनी साबुन, शहद आदि हिसा से बनी हुई वस्तुऍ है। भैस की खाल मे चॉदी को पीसकर वर्क तैयार की जाती है।

अशुभ कर्मो को क्षय करने का सरल तरीका है–सिद्धो का ध्यान, स्वाध्याय और सेवा।

समीक्षण ध्यान के कुछ सूत्र

1 शरीर मेरा नही है, मै (आत्मा) भीतर हूॅ, मै सिद्ध बनूगा।
2 रो मत, रो मत, दु ख मे रो मत सिद्ध बनेगा।
3 फूल मत भौतिक सुख मे, सिद्ध बनेगा।
4 बडा मत समझो स्वय को, बडा समझो बडो को।
5 दोष मत दो किसी को।
6 'कोई लेनदार कोई देनदार।
परिवार नही होता अपना।'
7 शरीर बनेगा मिट्टी, मै बनूगा सिद्ध।

ऊपर लिखी हुई भावनाओ मे और अनित्य आदि बारह भावनाओ मे भी जिन भावनाओ का महीनो और वर्षो तक स्वाध्याय अर्थात्–चितन और जाप होने से उनमे साधक की अटूट श्रद्धा पैदा हो जावेगी और ये भावनाऍ साधक के आचरण मे स्वत उतर जावेगी। इन भावनाओ से पूर्णतया भावित होने वाला जीव अवश्य ही मोक्ष पाता है। जरूरत है एक-एक भावना को पॉच-पॉच, सात-सात बार जपने की।

इस कषाय मुक्ति की नववीं पुस्तक मे इन भावनाओ को पुष्ट करने की सामग्री दी हुई है।

जीवन निर्माण के कुछ उपाय

1 जो मनुष्य दूसरे जीवो की, अपने परिवार और विशेषकर अपने माता-पिता की सम्यक् सेवा करता है वह महा-महा पुण्यवान और महाभाग्यवान बनता है। सेवा और स्वाध्याय महातप है। इनसे पाप और अशुभ कर्मो का नाश होता है और मनुष्य स्वर्ग या मोक्ष की तरफ आगे बढता है।

2 जो मनुष्य दूसरो को बरबाद करता है वह मरने के बाद उस बरबाद घर मे जन्म लेकर या वहाँ पशु बनकर पहुँचता है और उस बरबादी का फल भोगता है या वह बरबाद होने वाला मनुष्य उस बरबाद करने वाले के घर मे पहुँचकर अपने बरबाद करने वाले मनुष्य को बरबाद करता है। कर्मो का फल तो भोगना ही पडता है।

3. जैन दर्शन कहता है उपादान को अर्थात् अपने-आप को सुधारो। केवल निमित्त तुम्हे ऊँचा नही उठा सकता। यदि उपादान ने शुभ कर्म नही किये हों तो उसके माता-पिता, उसके गुरुजन, स्वर्ग के देवता और तीर्थंकर भी उसे कुछ नही दे सकते और ऊँचा नही उठा सकते। यदि उपादान अशुभ पुरुषार्थ और अविवेक को छोडकर शुभ पुरुषार्थ विवेक के साथ करता है तो साधारण पुरुषार्थ से या कभी-कभी पुरुषार्थ के बिना भी केवल अपने पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से और कभी-कभी निमित्त के बिना भी स्वय बुद्ध की तरह ज्ञान और करोडपति के घर मे जन्म लेने वाले बच्चे की तरह धन आदि प्राप्त कर लेता है। मनुष्य कभी-कभी अशुभ कर्मो के उदय के कारण कठोर पुरुषार्थ करता हुआ भी धन आदि खो देता है। जैनागमो मे निमित्त से उपादान को अधिक प्रधानता दी गई है।

अभय बनूंगा, सिद्ध बनूंगा

कषाय मुक्ति : दसवा भाग

चितन की कुछ भावनाएँ–

{1 अद्वेष, 2 अखेद, 3 अभय,
4 अराग, 5 अलोभ, 6 अमान }

1 अभय बनूगा, सिद्ध बनूगा
दोष किसी को कभी न दूगा
क्रोध द्वेष से बचा रहूँगा।

2 दुख-दर्द मे दुखी न होता
अशुभ कर्म समता से धोता।

3 मौत का मै भय छोडूगा
अभय बनूगा, सिद्ध बनूगा।

4 किया स्वय का स्वय ही पाता
परिवार भी कुछ काम न आता।

5 लोभ से यदि धन है मिलता
जग मे कोई दीन न रहता।

6 मान-बडाई ईर्ष्या भावे
वह नर कैसे मोक्ष मे जावे।

7 अभय बनूगा, सिद्ध बनूगा
णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

उपर्युक्त भावनाओ का जितना अधिक स्वाध्याय और चितन किया जाएगा उतना ही शीघ्र मनुष्य सिद्ध पद पाने का अधिकारी बनेगा ओर जितना कम स्वाध्याय किया जाएगा उतना ही देरी से वह मोक्ष जाएगा, इन भावनाओ मे श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए चितन-मनन की सामग्री नीचे दी जा रही है–

(1) अद्वेष भावना–क्रोध मुक्ति

हम अपने ही कर्मो का फल पाते है। हम अपने ही अशुभ कर्मो का अशुभ फल पाते है, इसमे निमित्त का कोई दोष नही है। दूसरे जीव को हमारे कर्मो की प्रेरणा से जबरदस्ती निमित्त बनना पडता है। अत निमित्त को दोष देना अज्ञान है। यदि हम किसी को दोष नही देगे तो हमारे अन्दर किसी भी जीव के प्रति द्वेष भावना पैदा नही होगी। हम क्रोध से बचेगे, दुर्भावना से बचेगे, दूसरो के प्रति दुर्व्यवहार से बचेगे, ससार के सभी जीवो के साथ हमारे मन मे द्वेषभाव, शत्रुभाव भविष्य के लिए पैदा होना बद हो जाएगा। सारे ससार के जीवो के लिए हमारे मन मे मैत्री भावना आ जावेगी और अनेक अशुभ कर्मो का आना बंद हो जाएगा. मुनि गजसुकुमाल मुनि स्कन्दक, सेठ सुदर्शन आदि ने किसी को दोष नहीं दिया. वे सिद्ध बने।

(2) अखेद भावना–दु.ख चेतना से मुक्ति

मनुष्य सासारिक पीडा मे या अनेक प्रकार की प्रतिकूल अवस्था आने पर रोता है, विलाप करता है, आर्तध्यान मे डूबता है, दूसरो के प्रति द्वेष और भावहिसा के विचार अपने मन मे उठाता है और अनेक अशुभ कर्मो का उपार्जन करता है। यदि वह कर्म सिद्धात आदि के चितन मे लग जाता है तो अपने दु ख-दर्द को भूलकर अशुभ कर्मो का आना बद कर सकता है। वह विचार सकता है कि यह दु ख नही है। यह मेरे कर्मो का फल है। इनको समतापूर्वक भोगने से ही मोक्ष मिलेगा। यदि मैं शुभ चितन मे या शुभ कार्य मे लग जाऊगा तो अशुभ कर्मो का आना भी रुक जाएगा। इन दु ख और पीडा से मेरी आत्मा का कुछ बिगडता नही है। इससे मेरी आत्मा का अहित नही होता है। इससे आत्मा का हित ही होता है। कर्म कटते है और मै मोक्ष के नजदीक पहुँचता हूँ। इस विचारधारा से समता की प्राप्ति होगी और अशुभ कर्म नही आ पावेगे।

(3) अभय भावना–मौत के भय से मुक्ति

यह देखा गया है कि ससार मे मौत का भय सबसे बडा भय है और इस भय से भयभीत मनुष्य अनेक प्रकार की द्रव्य और भावहिसा के चितन मे डूबा हुआ बहुत लम्बे समय तक महामोहनीय अशुभ कर्मो का बध करता है। कस ने देवकी के आठवे पुत्र द्वारा अपने मृत्यु की भविष्यवाणी सुनकर बहुत वर्षो तक बहुत भयकर अशुभ कर्मो का उपार्जन किया। मृत्यु से स्वय को बचाने के लिए अनेक मनुष्य महापाप मे लगे रहते है किन्तु ...

मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है वह तीर्थकर महावीर की भाति, सेठ सुदर्शन की भॉति, भक्त प्रह्लाद की भॉति द्रव्य और भावहिसा के विचारो से दूर रहता हुआ अपनी आत्मा को नवीन कर्मो के बध से मुक्त रखता है। सेठ सुदर्शन को अभया महारानी ने धमकी दी, वे सूली पर चढाये गए, हरिणी वेश्या ने उनको घर मे बद कर दिया, व्यन्तरी ने कपडो मे आग लगा दी लेकिन सेठ सुदर्शन मृत्यु भय से मुक्त थे, इसलिए उन्होने मृत्यु की किसी भी धमकी से डरकर अशुभ कर्म का बध नही किया।

यदि मनुष्य इसका बार-बार चितन-मनन करे तो मृत्यु का भय हट सकता है।

मनुष्य कई बार बीमार पडता है और हर बार मृत्यु भय से भयभीत होकर अशुभ कर्मो का बध करता है किन्तु उसको यह याद रखना चाहिए कि रोग असातावेदनीय कर्मो से आता है और मृत्यु का इस कर्म से कोई सबध नही है। चाहे वह कितनी ही बार बीमार पडे उसे मृत्यु आ नही सकती। मृत्यु तभी आयेगी जबकि आयु-कर्म समाप्त होगा। इसलिए रोगो के आने पर मृत्यु के भय से अशुभ चितन नही करना चाहिए। इसी प्रकार आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना शत्रु भी हमे मार नही सकता, बल्कि कभी-कभी तो शत्रु द्वारा मारने का प्रयत्न हमे लाभ पहुँचा देता है। प्रद्युम्नकुमार को मारने की देवता ने चेष्टा की किन्तु उसको लाभ हुआ। भीम को मारने की दुर्योधन ने कोशिश की किन्तु भीम को लाभ ही हुआ। यदि आयु-कर्म के समाप्त हुए बिना कोई किसी को मार सकता तो बहुत से निर्दयी लोग भले आदमियो को जीने ही नही देते।

रोग, शत्रु, चोर, पशु, पक्षी, शरीर की कमजोरी आदि किसी के द्वारा आयु-कर्म समाप्त हुए बिना जीव मारा नही जा सकता। अत ऐसे मौको पर आर्तध्यान को छोडकर शुभ ध्यान मे लीन होना चाहिए। कुछ-कुछ ऐसा स्वाध्याय किया जा सकता है—"मौत का मै भय छोडूगा, अभय बनूगा, सिद्ध बनूगा" मनुष्य इसमे पूर्ण श्रद्धा रखकर स्वाध्याय व चितन्त-मनन करे तो अभय बनना असम्भव नही है।

(4) अराग भावना—परिवार मोह से मुक्ति

मुक्ति प्राप्त करने मे परिवार का मोह भी बहुत बाधक होता है, इस सबध मे इस पुस्तक मे आगे चितन की विशेष सामग्री दी गई है। साधारणतया यह विचार और चितन परिवार मोह को घटा सकता है—

अशुभ कर्म जब उदय मे आता
कुटुम्ब पराया है बन जाता।
अपना-अपना रह नही पाता
अपनो को ही दण्ड दिलाता।।

(5) अलोभ भावना

लोभ सब पापो का मूल है और धन के मोह मे ससार के अधिकतर मनुष्य डूबे हुए है। झूठ, कपट, ठगी, चोरी, अन्याय, अनीति, मिलावट, दूसरो का शोषण आदि करते है किन्तु धन का आना और जाना मनुष्य के हाथ मे नही है। धन के लिए मनुष्य का रोना बेकार हो जाता है। इसके लिए यह चितन किया जा सकता है–"अधिक लोभ से धन आता तो ससार मे कोई भी जीव गरीब नही रहता।" धन के बाबत सक्षेप मे छ बाते याद रखनी चाहिए–1 धन का कमाना मनुष्य के हाथ मे नही है। यह तो दान पुण्य, तप, सेवा, परोपकार आदि शुभ कर्मो के करने से आता है। 2 जाने वाले धन को कोई रोक नहीं सकता। 3 धन से सुख मिलना जरूरी नही है। 4. बिना धन के भी सातावेदनीयं कर्म से सुख मिल सकता हे। 5 धन के बिना ससार का कोई कार्य नही रुकता। उसके लिए कही से भी धन आ ही जाता है। 6 यदि किसी कार्य के करने का योग नहीं हो तो सब सुविधा होते हुए भी कार्य नही होता।

(6) अमान भावना

अहंकार भी मोक्ष प्राप्ति में बहुत बाधक है। अहकार की यह [illegible] विशेषता है कि यह मनुष्य को अपना शिकार बनाकर भी उसे अपने [illegible] का पता ही नही चलते देता। बडे-बडे ज्ञानी पुरुष भी इसके चक्कर मे आ जाते हैं और सोचते है कि मै बहुत ज्ञानी हूँ, उस समय यह नही सोच पाते कि मेरा ऐसा सोचना अहकार है, अज्ञान है, मै ऐसा सोचता हूँ तो ज्ञानी कहॉ रहा। इसी प्रकार तपस्वी, शीलव्रतधारी, धनवान ओर परोपकार करने वाले भी अहंकार के शिकार बन जाते हैं। इस अहकार से उनके धार्मिक कार्यो के फल भी शिथिल पड जाते हैं। अहकार से मोक्ष का मार्ग रुक जाता है। बाहुबलीजी को भी इतना घोर तप करने के बाद भी अहकार छोडने से ही केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। इसके लिए सक्षेप मे इस भावना का चितन किया जा सकता है–

मान बडाई ईर्ष्या भावे
वह नर मोक्ष मे कैसे जावे।

दूसरा चितन इस प्रकार किया जा सकता है–

अह बम है, विस्फोटक है, महाघातक है।
बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।।

जीवन की भौतिक बाते

कोई भी जीव किसी भी दूसरे जीव के कर्मो के फल मे हेर-फेर नही कर सकता। उसे अपने कर्मो का दड स्वय को ही किसी-न-किसी रूप मे भोगना ही पडता है। वह बचना चाहे तो भी उसकी बुद्धि उसके कर्मो के दड से प्राय बचने नही देती। क्योकि–

बुद्धि वैसी ही बन जाती
जैसी कर्मो की गति है चाहती।

इस दृष्टि से मनुष्य के जीवन की प्राय मोटी-मोटी भौतिक घटनाओ का नियत्रण मनुष्य के कर्मो के हाथ मे होता है। कुछ लोग तो बचने की कोशिश ही नही करते किन्तु कुछ बडे-बडे मनुष्य भी बहुत कम परिवर्तन कर पाते है। ये घटनाएँ इस प्रकार है–

1 जीव की गति–वह क्या बनेगा देव या पशु या मनुष्य।

2 परिवार–जिन लागो के साथ उसे ये कर्म भोगने है, उन लोगो के परिवार मे जन्म लेना पडता है और यदि उसे परिवार आगे बदलने पडेगे तो उसका भी निर्णय कर्मानुसार निश्चित हो जाता है।

3 आयु–यह नया शरीर कितने समय तक टिकेगा।

4 कुछ छोटी-मोटी बाते–उसके साथी, उसके रहने के स्थान आदि-आदि।

5 विद्या–शिक्षा मिलेगी या कम मिलेगी या नही मिलेगी।

6 विवाह–किस परिवार मे होगा या वह अविवाहित रहेगा या दीक्षा लेगा या नही लेगा आदि-आदि।

7 धधा–व्यापारी बनेगा या कही नौकरी करेगा या मजदूरी करेगा और अपने कर्मो को किस तरह भोगेगा।

8 अमीरी-गरीबी का निर्णय–उसके उपादान मे निमित्त से जैसा जितना धन आना है वैसा और उतना ही धन आवेगा और अशुभ कर्मो के योग से जो धन जाना है वह जायेगा।

9 सुख-दु ख—उसे किस प्रकार के सुख-दु ख उसके सातावेदनीय, असातावेदनीय और अन्तरायकर्म के उदय के अनुसार मिलेगा।

10. स्थान और साथी—उसे पुद्‌गल स्पर्शना के अनुसार निश्चित स्थानों और साथियो के साथ रहना होगा।

11 रोग और बुढापा—कर्मो के अनुसार जीवन मे और बुढापे मे क्या-क्या रोग आयेगे और कब-कब आयेगे। वे उसके वेदनीय कर्म के अनुसार उसे भोगने पडेगे।

12. मृत्यु—मृत्यु कब, कैसे और कहाँ होगी। यह भी कर्मो के अनुसार नियत है।

ये बारह बाते प्राय साधारणतया उसके पूर्वकृत कर्मो के अनुसार होती है, किन्तु विशेष शुभ पुरुषार्थ करने से, दान, पुण्य, सेवा आदि से उसके पुराने अशुभ कर्मो के उदय से आये हुए कर्म शिथिल पड सकते है।

यह याद रखने की बात है कि स्वाध्याय, सेवा, ध्यान, तप, दान पुण्य और तीव्र चढते हुए परिणामो मे महान शक्ति है। इनकी साधना करने वाले मनुष्य को कभी-कभी इनसे उपार्जित होने वाले महान शुभ कर्मो का फल तुरन्त ही मिल जाता है और साधक के जीवन मे भारी शुभ परिवर्तन हो सकता है। अत कर्मो मे बहुत ही शक्ति है इसलिए मनुष्य को हमेशा शुभ कर्म ही करने चाहिए और अशुभ किए है तो उसका पश्चात्ताप करना चाहिए।

मोह छोडूंगा सिद्ध बनूगा

मरुदेवी माता	मोह
मुनि गजसुकुमाल	दु खानुभूति
जम्बूस्वामी	सुखानुभूति
बाहुबलीजी	अहकार

1 मरुदेवी माता ने मोह छोडा, मोह छोडे वे सिद्ध बने। उन सिद्ध को नमस्कार है, मैं मोह छोडूगा, सिद्ध बनूगा।

2 मुनि गजसुकुमाल देह कष्ट मे नही रोए, वे सिद्ध बन गए। किसी को दोष नही दिया, वे क्रोध से बचे रहे। क्रोध नहीं किया [illegible]

वने, सव सिद्धो को नमस्कार है। मै किसी को दोष नहीं दूगा, क्रोध नही करूगा, मे दु ख मे नही रोऊगा, मै सिद्ध बनूगा।

3 जम्बू स्वामी भौतिक सुख मे नही फूले। नही फूले वे सिद्ध बने। सव सिद्धो को नमस्कार है। मै सुख मे नही फूलूगा, मै सिद्ध बनूगा।

4 वाहुबलीजी ने अह छोडा, अह छोडा वे सिद्ध बने, सब सिद्धो को नमस्कार है, मै अह छोडूगा, सिद्ध बनूगा।

5 अह वम है, विस्फोटक है, महाघातक है। अह छोडा वे सिद्ध बने, सब सिद्धो को नमस्कार है।

नोट–परिवार का मोह छोडना मुक्ति को देने वाला है, किन्तु जव तक परिवार मे रहे तब तक परिवार की सम्यक् सेवा करके परिवार का कर्ज चुकाना मनुष्य का परम धर्म है।

उपर्युक्त भावनाओ मे प्रत्येक भावना का दो-दो, तीन-तीन लाख बार पर्यटन अर्थात् स्वाध्याय और चितन-मनन करेगा वह किसी दिन सिद्ध पद प्राप्त करेगा।

मगल भावना

वीर नही बचा सके दो सतो को उनके कर्मो के दड से, कृष्ण नही बचा सके यादवो को, उनके कर्मो के दड से। परिवार किसी को नही बचाता, उसके कर्मो के दड से।

परिवार मोह से मुक्ति

मनुष्य के सिद्ध पद प्राप्ति मे सबसे बाधक हे परिवार मोह। इस मोह को ढीला करने का सर्वोत्तम उपाय है स्वाध्याय। अधिक स्वाध्याय करने से परिवार मोह का क्षय होता है।

एक राजा ने एक कैदी से पूछा–"तुम्हारे शरीर मे इतना वल है कि तुमने लोह की भारी बेडियो को क्षण भर मे ही तोड दिया तो फिर तुम कैद मे इतने महीने कैसे रुके रहे ?" इस पर कैदी ने कहा–"महाराज ! मुझे आपके जेल की छडो ने नही बॉध रखा था। मै परिवार मोह की बेडियो ने वधा हुआ था। मुझे भय था कि यदि मे इन वेडियो को तोडकर निकल जाऊगा तो मेरा परिवार सकट मे पड जाएगा। आप मेरी जगह उन्हे दड देगे। इसलिए जेल की छडो को तोडकर नही भागा।'

महाज्ञानी गौतम स्वामी को महावीर स्वामी ने कहा– हे गौतम ! तुमको मेरे ऊपर प्रशस्त राग है। यही तुम्हारे केवलज्ञान प्राप्ति मे बाधक है

यह राग दूर होने से तुम्हे केवलज्ञान प्राप्त होगा।"

यह राग देव, मनुष्य, पशु, पक्षी सभी मे होता है। इसका कारण यह है कि जीव अनादि अनतकाल से परिवार राग मे बंधा आ रहा है और साथ-साथ रहने से और उपादान निमित्त बनकर एक दूसरे का सहयोग देने से यह दृढ होता जाता है। इस राग को अधिक स्वाध्याय और करके चिंतन-मनन करके दूर किया जा सकता है।

यह भ्रम है कि परिवार हमारा है। यदि परिवार हमारा होता तो मृत्यु में भी तो वह बना रहता। अत इस भ्रम को दूर करने के लिए इस प्रकार का स्वाध्याय करना चाहिए–1 परिवार हमे कर्मदंड से नहीं बचा सकता। 2 परिवार इस जन्म में भी हमेशा हमारा साथी नही रहता। 3 उपादान निमित्त सबध समाप्त होते ही पारिवारिक संबध समाप्त हो जाता है। कुन्ती ने कर्ण को जन्मते ही दूर कर दिया। शकुन्तला को उसकी माता ने जन्मते ही जगल में छोड दिया–"कर्ज पुराना पडा हुआ है इसीलिए परिवार मिला है।"

उपर्युक्त तीन विचारो का इन तीन भावनाओ का वर्षो तक अनवरत स्वाध्याय करने से परिवार मोह का डोरा टूट जाता है।

परिवार का हमारे ऊपर कुछ कर्जा भी हो सकता है। उसको चुकाने के लिए परिवार की सम्यक् धार्मिक सेवा करनी चाहिए और यह भावना हमेशा भानी चाहिए कि मेरे परिवार वाले स्वस्थ हो, सुखी हो, धर्मात्मा हो, वे सिद्ध बने, परिवार की शुद्ध सेवा करनी चाहिए। इससे परिवार के प्रति घृणा पैदा नही होती। परिवार का मोह टूटने से मरुदेवी माता की तरह मनुष्य सिद्ध पद प्राप्त करता है।

आत्मा भावना भी परिवार मोह को हटाती है। अत यह भावना भायी जा सकती है कि–"मै ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा का, मुझ आत्मा के सिवाय और कुछ भी मेरा नही है। शरीर, परिवार, धन आदि मेरे नहीं। परिवार मोह छोड़ूंगा, सिद्ध बनूंगा।"

मृत्यु भय और अभय भावना

मृत्यु भय और शरीर की चिंता से मुक्त होने वाला सिद्ध पद का अधिकारी बनता है।

जब तक जीव का आयु-कर्म समाप्त नहीं होता, तब तक मृत्यु नही आ सकती, चाहे वह कई बार कई बीमारियो से एक साथ ही घिर न जावे, चाहे उसका शरीर कमजोर हो या उसको अधिक

और आराम न मिले, चाहे उसे दूध, फल और पौष्टिक पदार्थ आदि तो दूर रहे भरपेट सादा भोजन भी पूरी मात्रा मे नही मिले। आदिनाथ भगवान वाहुवलीजी एक-एक वर्ष निराहार रहे। आज के मनुष्य भी दो-दो, तीन-तीन वर्ष तक एक-एक महीने मे पॉच-पॉच पचौले का तप करते हुए भी जीवित और स्वस्थ रह जाते है।

यदि मनुष्य को परिवार का सहयोग नही मिले, सेवा करने वाला नही मिले, चाहे उसे अकेला ही रहना पडे तो भी शरीर का कुछ नही बिगडता। शत्रु द्वारा की हुई उसे मारे जाने की योजना भी सफल नही होती जव तक कि मनुष्य का आयु-कर्म समाप्त नही हो जाता। पाण्डव, भीम, प्रद्युम्नकुमार, भक्त प्रह्लाद, सेठ सुदर्शन आदि को मारने की योजनाएँ सफल नही हुई क्योकि उनका आयु-कर्म समाप्त नही हुआ था। परिवार का षड्यत्र, धन की हानि, मान की हानि और मनुष्य को मिलने वाली अनेक असफलताएँ मनुष्य को नही मार सकती जब तक आयु-कर्म समाप्त नही हो जाता।

मनुष्य को मौत के भय से बचने के लिए चितन-मनन करना चाहिए जिससे अतिम समय मे वह सद्भावनाओ के साथ मरता हुआ दुर्गति मे नही जावे और सम्भव हो तो भावना पूर्वक सथारा भी ले सके।

चितन मे प्रथम स्थान कर्म सिद्धात को देना चाहिए, असातावेदनीय और अन्तरायकर्म दोनो ही आयु-कर्म के समाप्त हुए विना मौत को नही ला सकते, मनुष्य को अपने पहाड के समान दु ख को भी रेत के समान तुच्छ मानना चाहिए। अभय भावना की साधन से दुर्भावनाओ और हिसा आदि पापो से बचा जा सकता है, इससे शरीर का मोह छूटता हैं ओर सभी चिताए दूर होती है।

"जवाहर विचार सार" मे आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने तीन बाते बताई है–प्रथम परमात्मा का ध्यान, दूसरा अपने मन मे दु खियो ओर जीव मात्र के लिए दया भावना रखना और तीसरा यथाशक्ति प्राणीमात्र की सम्यक् सेवा मे अपने शरीर को लीन रखना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि चिता और अनुकम्पा मे जमीन आसमान का अन्तर हे। जहॉ दूसरे मनुष्य पर ममता है उसके लिए चिता करना चिता ओर मोह ह किन्तु जहॉ पर दूसरे जीव को आत्मा केवल आत्मा ही समझा जाता ह उसके लिए चिता करना चिता और मोह नही वल्कि अनुकम्पा हे, चिता ज्वाला है, अनुकम्पा शीतल जल है, चिता जहर है अनुकम्पा अमृत हे जो मनुष्य को अमर, आनन्दघन और अभय बनाता हे और मोक्ष पहुँचाता ह।

पंचभिः सह गन्तव्यं, स्थांतव्यं पंचभि सह।
पंचभि सह वक्तव्य, न दु ख पचभि सह।।

अर्थात् पॉच आदमियो के साथ जाना चाहिए, पॉच आदमियो के [illegible] रहना चाहिए, पॉच आदमियों के साथ बातचीत करनी चाहिए [illegible] आदमियो के साथ से कोई दु.ख नही होता, पॉच आदमियों के [illegible] परमेश्वर की राय मानी जाती है, पॉच आदमियो की राय लेकर का [illegible] से हानि नही होती। व्यक्ति दु ख से बच जाता है और अहकार [illegible] घटता है।

अमृतवाणी

ये दो कविताएँ बच्चो को याद कराइये और कभी-कभी सुनते [illegible]

1 "सच बोलूगा सच बोलूगा,
निश्चय ही मै सच बोलूंगा।
चाहे मेरा सिर कट जावे,
झूठ कभी भी नही बोलूंगा।"

2 "चोरी से मै दूर रहूँगा,
चोरी से मै बचा रहूँगा।
माता ने चोरी सिखलाई,
बेटे को फॉसी दिलवाई।"

3. माता-पिता और बडो की सेवा करने वाला,
भाग्यवान महापुण्यवान बनता है।

4 जिस घर मे प्रेम और सहयोग रहता है उस घर मे लक्ष्मी आती [illegible] फूट व कलह से लक्ष्मी चली जाती है।

5 दान पुण्य और सेवा महान धर्म है इससे कभी-कभी इसी जन्म [illegible] और सुख की प्राप्ति हो सकती है।

6 दूसरो के प्रति दुर्भावना रखने वाला, ठगी और चोरी आदि द्वारा [illegible] को बरबाद करने वाला कभी-न-कभी स्वय दु खी व बरबाद हो [illegible]

7. संसार मे दूसरो का बुरा चाहने और बुरा करने से बढकर कोई [illegible] है और दूसरो का भला चाहने और उनका भला करने और [illegible] अनुकम्पा करने से बढकर कोई धर्म नहीं है।

हम क्या करे

मोक्षार्थी को यह समझ लेना चाहिए कि विचारो और भावनाओ मे महान शक्ति है और शुभ विचार करके हम आसानी से मोक्ष पहुँच सकते हैं। मनुष्य जितनी बार कोई विचार करता है उतनी ही बार वह शुभ या अशुभ विचारो का बध या क्षय कर लेता है।

एक मनुष्य बीस दिन तक दिन मे पॉच-पॉच बार किसी मनुष्य की हत्या करने का विचार करता है तो वह उस मनुष्य को यदि नही मारे तो भी एक सौ बार हत्या करने के विचारो से आने वाले अशुभ कर्मो का बध कर लेता है। यदि एक मनुष्य किसी दूसरे दु खी मनुष्य को सात्वना देने या धैर्य बधाने या मदद देने का विचार करता है तो यदि वह उसे मदद नही दे सके तो भी इस विचार से आने वाले शुभ कर्मो का उपार्जन करता है ओर यदि उसकी भावना अति तीव्र हो तो वह क्षणभर मे अनेक वर्षो के अशुभ कर्मो का क्षय कर लेता है और केवलज्ञान भी प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार अनेक मकान बनाने के विचारो का या हिसक कारखानो का या महाआरभ या पाप के कार्यो का विचार करता है तो वह कुछ भी नही करता हुआ भी तन्दुल मत्स्य की तरह या कालसौरिक कसाई की तरह महापाप के अशुभ कर्मो का बध कर लेता है। प्रसन्नचद्र मुनि ने क्षणभर मे सातवी नरक मे ले जाने वाले कर्मो का उपार्जन किया और विचारधारा बदलने से केवल पश्चात्ताप द्वारा उन सभी कर्मो को क्षणभर मे नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त किया।

आपको जितना अधिक-से-अधिक समय मिले उस समय मे इस भावना का स्वाध्याय अर्थात् पर्यटन और चितन करे—"सिद्ध भगवान हैं, वे अशरीरी है, वे अतिसूक्ष्म है, वे दिखाई नही देते, वे ज्ञानस्वरूप है, वे ज्ञान के भण्डार है, वे सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल अवगाहना प्राप्त करके, आनन्दघन बनकर विराजे हुए है। उनको, उन सब सिद्धो को नमस्कार हे, नमस्कार है, नमस्कार है। णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाण।

इस विचार का या भावना का हमेशा अधिकाधिक चितन करने वाला अपने पापो का क्षय करता है और वह अत समय मे यदि इसी ध्यान मे जमा रहकर मरण प्राप्त करता है तो वह इसी जन्म मे या भविष्य मे कभी-न-कभी अवश्य ही मोक्ष प्राप्त कर सकेगा।

मधु बिन्दु

1 परिवार या अपनो का कर्ज उतरा, वे अलग हुए, अलग हुए ... भावना के बार-बार चितन से मोह नष्ट होने लगता है।

2. शरीर अलग है, मै अलग हूँ, शरीर नाशवान है, मेरा नहीं है ... आत्मा हूँ, मै सिद्ध बनूंगा" इस भावना के बार-बार चितन करने से ... मोह नष्ट होता है। इसका विशेष विवरण 'ध्यान एक अनुशीलन' ... पुस्तक मे मिलेगा।

अहं से मुक्ति

"अहं को छोडो, विनय को धारो, सिद्ध बनोगे"
अहं बम है, विस्फोटक है, महाघातक है,
बचकर रहना, चोट लगेगी, उठ न सकोगे।
अकड न करना, झुककर रहना, सुख पाओगे।
रावण अकडा, कौरव अकडे, सुख नही पाये।।
भौतिक शक्ति है बहुत ही थोडी।
देह कष्ट से पता है चलता।।
कर्म दण्ड से बच नही सकता।
जो चाहता सो कर नही सकता।। टेर।। अहम् .
ज्ञान है थोडा, बहुत ही थोडा।
जीवन मे यह उतर न पाया।।
मन मे भारी अह भरा है।
ऊँचा-ऊँचा उछल रहा है।। अहम्
अह में मानव भूल है करता।
भले बुरे का ज्ञान न रहता।।
अह बुद्धि विपरीत बनाता।
बडो-बडो को अहं गिराता।। अहम् .
बडा स्वयं को नही समझता।
गुरुजनो का विनय जो करता।।
उनकी आज्ञा पालन करता।
वही किसी दिन सिद्ध है बनता।। अहम्.

मोक्ष मार्ग का पथिक

कषाय मुक्ति : ग्यारहवां भाग

1 कषाय मुक्ति

दया भावना मन मे रखता।
सेवा करता वह सिद्ध बनता।।
पश्चात्ताप से पाप है कटता।
सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता।।1।।

चोरी हत्या महापापो को।
प्रहारी ने पॉच मास मे।।
पश्चात्ताप अरु प्रभु भजन से।
काट-काट कर सिद्ध पद पाया।।2।।

क्रोधी मरकर सर्प है बनता।
अभिमानी मुर्गा है बनता।।
माया कपट से औरत बनता।
लोभी मृगा लोढा बनता।।3।।

खोट मिलाता, चोरी करता।
झूठ बोलता, धोखा देता।।
साहू बन धन लूट मचाता।
अति लोभी दुर्गति मे जाता।।4।।

आत्म ध्यान से मोह है हटता।
हिसा पाप लगने से बचता।।
दान जो देता वह सुख पाता।
विनयवान भगवान है बनता।।5।।

माता-पिता की सेवा करता।
देवलोक मे देव वह बनता।।

अह छोडता वह सिद्ध बनता।
कषाय मुक्त है सिद्ध पद पाता।।6।।

2. सिद्धों का अरूपी ध्यान

(क) "णमो सिद्धाण, णमो सिद्धाणं। सभी सिद्धो को मैं नमस्कार करता हूँ।"

सिद्धो के अरूपी ध्यान का यह बहुत ही सरल और साधारण [illegible] है। इसको इस प्रकार भी किया जा सकता है-"णमो सिद्धाण [illegible] "नमस्कार है सब सिद्धो को" या "सब सिद्धो को नमस्कार है।

इस ध्यान को करते समय जो आत्माएँ सिद्ध बनी हं उनको [illegible] करके, उनका नाम लेकर, उनके आत्म प्रदेशो को लोक के अग्र [illegible] अटल अवगाहना मे होने की कल्पना करके यह कहना चाहिए [illegible] सिद्धो को मै नमस्कार करता हूँ।' इस समय उनके अरूपी शरीर [illegible] के अग्रभाग मे होने की कल्पना करनी चाहिए। 'मैं नमस्कार करता हूँ [illegible] शब्दो को बोलते समय हाथ जोडकर, शीश झुकाकर वदन करना [illegible] जिससे मन की एकाग्रता हो सके। मन इधर-उधर नही दोडे।

(ख) इस ध्यान को करते समय जो मनुष्य सिद्ध बने ह, उन [illegible] को याद करके, उनके अरूपी होने की कल्पना करके उनको हाथ [illegible] चाहिए, तथा गुणगान करना चाहिए। सभी तीर्थकर सिद्ध बने हें। [illegible] भगवान के परिवार के प्राय सभी सदस्य सिद्ध बने है। स्कन्धका [illegible] पॉच सौ शिष्य सिद्ध बने है। दान देने वाले सुमुख गाथापति, [illegible] चन्दनबाला, शील पालने वाले विजय सेठ, विजया सेठानी, सेठ [illegible] तपस्या करने वाली काली, महाकाली, सुकाली आदि की तपस्या [illegible] करके समता विभूति गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जु[illegible] मुनि स्कन्दक आदि पश्चात्ताप करने वाले, प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्ड[illegible] आदि की मुख्य घटनाओ को याद करके इन सवको शीश [illegible] नमस्कार करना चाहिए। यह भावना रखनी चाहिए कि सभी सिद्ध [illegible] नमस्कार करता हूँ, वदन करता हूँ। इस प्रकार का सिद्धो का ध्यान [illegible] को मोक्ष का अधिकारी बनाता है। सिद्धो का ध्यान इस प्रकार भी [illegible] सकता है-"सिद्ध भगवान, सिद्ध भगवान।

आत्म द्रव्य है, अति सूक्ष्म है, अगम अगोचर अजर अमर है।
वे सर्वज्ञ है, शक्तिमान है, आनन्दघन है, निराकारा हं।।
सब सिद्धो को नमस्कार है।"

(ग) समता विभूति आचार्यश्री नानालालजी म सा सिद्धो के अरूपी ध्यान पर बहुत जोर देते है। इस ध्यान से सभी पाप नष्ट हो जाते है। जैसा कि नमस्कार मत्र मे बताया गया है। दृढ प्रहारी तो प्रभु का भजन करने से चार मोटी हत्याओ के पाप से न्यारा हो गया था। जो जैसा विचार करता हे, वह वैसा ही बन जाता है। फिर सिद्धो का ध्यान करने वाला यदि सिद्ध बन जावे तो इसमे आश्चर्य की बात ही क्या है ?

आचार्य भगवन् ने समीक्षण ध्यान के अन्दर "मै सिद्ध बनूगा" इस भावना पर बहुत जोर दिया है। इसका स्वाध्याय इस प्रकार किया जा सकता है–"मै भीतर हूँ, मै भीतर हूँ, मै सिद्ध बनूगा। सिद्ध लोक मे, सिद्ध दशा मे, अटल अवगाहना प्राप्त करूगा। आनन्दघन और अभय बनूगा।

'सब सिद्धो को मै नमस्कार करता हूँ और मैं सिद्ध बनूगा।'

सिद्धो के आठ गुणो का, पन्द्रह भेदो का, अटल अवगाहना का, अमूर्त भाव आदि का चितन करते हुए चित्त को एकाग्र करना चाहिए। इन भावनाओ का हजारो, लाखो बार जाप और चितन-मनन करना चाहिए। यह सामायिक या बिना सामायिक भी, सोते हुए या बैठे हुए, कही भी, कभी भी किया जा सकता है।

2 (क) सिद्धो के ध्यान के अलावा आत्म भावना भी केवलज्ञान प्राप्ति की साधना है। वह इस प्रकार भायी जा सकती है–

आत्मा हूँ मै, देह नही हूँ,
मै अमूर्त हूँ, चेतन हूँ।
मै अवद्य हूँ, मै अदाह्य हूँ,
अजर, अमर हूँ, शाश्वत हूँ।।
ज्योतिपुज हूँ, ज्ञान रूप हूँ,
मैं चेतन हूँ, जीवन हूँ।
निराकार हूँ, निर्विकार हूँ,
आत्मा हूँ, मै चेतन हूँ।।

(ख) शरीर अलग है, मै आत्मा अलग हूँ। शरीर नाशवान है, यह मेरा नही हे। मै आत्मा हूँ, मै सिद्ध बनूगा। मै ही मेरा हूँ, मुझ आत्मा के सिवाय मुझ आत्मा का ओर कुछ भी नही है। शरीर, परिवार धन ये मेरे नही है।

3. समीक्षण ध्यान

मोह छोडो परिवार का	सिद्धो का ध्यान और गुणगान
मैं सिद्ध बनूगा	सब सिद्ध बने

(क) आत्मा की मुक्ति कषाय छोडने से ही हो सकती है। उत्पत्ति का मूल मोह, ममत्व भावना है। मोहनीय कर्म सब कर्मों का है। इसको जीत लेने वाला निश्चय ही सिद्ध पद प्राप्त करता है। प्रकार का है परन्तु परिवार का मोह शायद सबसे अधिक प्रबल है। इसको जीतने का अचूक उपाय स्वाध्याय है।

(ख) 'मोह छोड़ूगा परिवार का' इस पाठ का कुछ उदाहरणों के चितन-मनन करना और प्रतिदिन काफी समय तक स्वाध्याय आवश्यक है। यह मोह अनादिकाल से हमारे साथ लगा हुआ है। इसको हटाने के लिए हजारो लाखो बार स्वाध्याय करना जरूरी है।

(ग) मोह मे मनुष्य तीन बातो का विचार करता है–1 परिवार है। 2 यह हमेशा मेरे साथ रहने वाला है। 3 यह हमेशा मेरी मदद ये तीनो विचार ही भ्रमात्मक है और अज्ञान से भरे हुए है। सभी अलग-अलग है। किसी का किसी के साथ स्थायी सबध नहीं है। आत्माओ का इस ससार मे स्थायी सबध होता तो वह सबध रहता, किन्तु ऐसा नही है।

दूसरा विचार है कि परिवार हमेशा मेरे साथ रहने वाला है। यह भ्रम है। जब तक साथ रहने के लिए कर्मो की स्वीकृति है ओर उपादान संबंध बना हुआ है तभी तक परिवार साथ रह सकता है। उपादान सबंध समाप्त होते ही सभी प्रकार के पारिवारिक सबध समाप्त हो कर्ण, करकण्डु, कबीर, शकुन्तला, नूरजहा आदि को जन्मते ही से अलग होना पडा। विभीषण ने रावण को मरवाया, सुग्रीव ने मरवाया। कस ने अपने पिता उग्रसेन को कैद किया। कोणिक पिता श्रेणिक को कैद किया। कौरव-पाण्डव चचेरे भाई ही थे।

तीसरा विचार है क़ि परिवार से मदद मिलती ह किन्तु सहायता कर्मो की स्वीकृति के बिना नही मिलती। असातावेदनीय कर्म उदय मे आकर परिवार को दूर हटा देते है।

जीव को नाच नचाता है उस समय यह परिवार को शत्रु बनाकर मनुष्य की हत्या तक करवा देता है।

(घ) परिवार मोह से एक भयकर हानि हो सकती है। परिवार मोह मे मरने वाला जीव महेशदत्त के माता और पिता की तरह कुतिया एव पाडा (भंस का बछडा) बन सकते है। वे बिल्ली, चूहा, कौआ आदि तिर्यच बनकर वही चक्कर लगाते है किन्तु परिवार मोह को बिलकुल छोड देने वाले मोक्ष प्राप्त कर सकते है। अत 'मोह छोडूगा परिवार का' इस भावना का लाखो करोडो बार जप और चितन-मनन करना प्रत्येक प्राणी के लिए लाभदायक है।

(ड) परिवार मोह छोडने का अर्थ यह नही है कि परिवार को छोड दिया जाय। जब तक मनुष्य परिवार मे रहता है तब तक उसे परिवार की सरल और नि स्वार्थ भाव से सम्यक् सेवा करनी चाहिए।

(च) 'मै सिद्ध बनूगा' इस भावना को जपने वाला और इस सकल्प को दृढ बनाने वाला कभी-न-कभी अवश्य ही सिद्ध बनता है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो जैसा विचार करता है वह वैसा ही बन जाता है। 'सब सिद्ध बने' इस भावना का जाप करने वाला अपनी मगल भावना से स्वय मगल रूप बन जाता है। ऐसा साधक दुर्भावनाओ से, दूसरो के प्रति अनिष्ट चितन से, द्वेष और क्रोध भाव से और अनेक प्रकार के अवगुणो से बच जाता है और वीतराग दशा प्राप्त करता है।

4 समता आचरण

परिवार मोह छोडगा सिद्ध बनूगा	रो मत दु ख दर्द मे	फूल मत सुख व मनोरजन मे	अह छोडो

(क) 'परिवार का मोह छोडूगा' महेशदत्त की माता परिवार मोह के कारण कुतिया बनी व पिता भैसा बने। नन्दन मणिहार मेढक बना। एक राजा अपनी रानियो के मोह के कारण मरकर उन रानियो के मल-मूत्र के कुण्ड मे लाल रग का कीडा बना। चक्रवर्ती की पटरानी मोह के कारण पति वियोग मे छ महीने विलाप करती हुई छठे नरक मे गई। "मैं परिवार छोडूगा व सिद्ध बनूगा।" परिवार मोह छोडने से मरुदेवी माता सिद्ध बनी।

परिवार मोह से होने वाली हानियो का और परिवार मोह छोड़ने से होने वाले लाभ का बार-बार चितन-मनन करने से परिवार मोह छूट जाता है।

(ख) परिवार मोह छोडने की जरूरत है। परिवार को या परिवार की सम्यक् सेवा को छोडने की जरूरत नही है। परिवार के स्वस्थ सुखी सिद्ध बनने की कामना करना और परिवार के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना मोक्ष प्राप्ति का उपाय है।

(ग) 'रो मत दुःख दर्द में' इस शरीर की रक्षा करना मेरे हाथ में है। इसकी रक्षा होना या विनाश होना मेरे उन कर्मो के हाथ मे है जिन्होंने अपना फल भोगने के लिए मुझे यह शरीर दिया। शरीर के कष्ट और किसी दु ख के समय दु खानुभूति, आर्तध्यान, क्रोध, द्वेष और दुर्भाव से बचने के लिए—(अ) कर्म सिद्धात (ब) आत्म भावना या आत्म... (स) समीक्षण ध्यान (द) श्री जवाहराचार्य की तीन बाते 'राम हृदय में, दया, तन सेवा मे लीन' ध्यान में रखने से मनुष्य को दु ख मे दु खानुभूति नही होती और वह समता भाव धारण करके कर्मो को काटता हुआ ... पद का अधिकारी बनता है।

कर्म सिद्धात इस प्रकार है—यह दु ख, दु ख नही है। यह मेरे कर्मों का फल है। इसे भोगना ही पडेगा। इससे आत्मा का कुछ पतन नहीं होता है। इससे आत्मा का लाभ होता है, कर्म कटते है। आत्मा मोक्ष मार्ग में बढती है। यह पुद्गल स्पर्शना है। यह टल नही सकती। मे किसी को दोष नही दूगा। तब मुझे क्रोध नही आएगा। इस प्रकार मै द्वेष भावना से बच जाऊगा। शरीर का मोह भी धीरे-धीरे नष्ट हो जाएगा। मुनि गजसुकुमाल दु.ख मे नही रोए, वे सिद्ध बने।

(घ) 'फूल मत मनोरंजन में' आत्म भावना, सिद्धो का ध्यान, अनुप्रेक्षा भावना आदि आत्मा का स्वाध्याय है। मनुष्य अपनी पाँचो इन्द्रियों के सुख के लिए मनोरजन करता हुआ भारी अशुभ कर्मो का बध करता है। ... तथा किसी दूसरे को दु:ख मे देखकर खुश होता हुआ बहुत बडे अशुभ कर्मों का बध करता है। इस बात को याद रखिए—'फूल मत भौतिक सुख, मनोरजन मे और दूसरे को दु:ख मे देखकर।' भौतिक सुखों के समय कर्म सिद्धात मे, आत्म भावना मे, समीक्षण ध्यान मे और श्री जवाहराचार्य की तीन बातो मे लीन होता हुआ सुखानुभूति से बचकर अशुभ कर्मों के बध से बच सकता है। जम्बू स्वामी भौतिक सुख मे नही फूले, वे सिद्ध बने।

(ड) 'बाहुबलीजी ने अह छोडा, वे सिद्ध बने।' अह छोडने के लिए "वडा मत समझो स्वय को–तप मे, ज्ञान मे, धन मे, दान मे और धार्मिक वातो मे।" अहकार से बहुत बडे-बडे लोगो और महात्माओ का पतन हुआ है। इससे शुभ कर्मो का फल मिलना रुक जाता है। अह छूटने से वाहुवलीजी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई। 'अह बम है, यह महा विस्फोटक है।'

(च) इन चारो भावनाओ का कोटिश चितन करने से अवश्य लाभ होगा। यह भौतिक सुख मीठे जहर के समान है, किम्पाक फल के समान है, जो देखने और खाने मे तो अच्छा लगता है किन्तु खाने वाले की मृत्यु का कारण बनता है।

5. क्रिया और भावना

मनुष्य जो भी करता है उसके मूल मे या उसे कराने वाली जो भावना होती है, उसी शुभ या अशुभ भावना के अनुसार उसे शुभ या अशुभ फल मिलता है। क्योकि बिना विचार या भावना के कोई काम नही होता। अत अशुभ विचार से किसी भी क्रिया का फल, दान या सेवा का फल भी अशुभ हो जाता है। अत साधु, परिवार या शत्रु की सेवा करने वाला या किसी को कुछ देने वाला अपनी भावना के अनुसार शुभ या अशुभ कर्म बाधता है। अत परिवार की भावना मे भी मोह छोडकर परिवार वालो को केवल आत्मा समझकर अनुकम्पा भाव से सेवा करने वाला ही कर्म निर्जरा और पुण्य का अधिकारी बन सकता है। जो व्यक्ति दुर्भावना से, अपने मन मे दु ख करता हुआ जो भी कार्य करता है वह अशुभ कर्म उपार्जित करता है। अत प्रत्येक कार्य अनुकम्पा भाव से करना चाहिए।

6. क्रिया का फल

(क) भारतवर्ष के बौद्ध भिक्षु धर्मबोधि ने चीन देश के सम्राट बुश से कहा–"राजन् ! तुम कहते हो कि मैने हजारो धार्मिक स्थान बनवाये। धर्म का खूब प्रचार किया, ग्रथ लिखवाये। धर्म पर खूब पैसा खर्च किया, लेकिन तुमने यह सब काम प्रसिद्धि की भूख, कीर्ति का लोभ होने के कारण किये। इससे तुम्हारा नाम फैला। तुम्हारे अहकार की तुष्टि हुई। इससे ज्यादा तुम्हे कुछ मिलना नही है। अहकार से खर्च किए हुए धन से मोक्ष नहीं मिलता।

(ख) साधु सुपात्र होता है फिर भी भगवान महावीर को
के बिना दिए हुए दान से पूर्ण सेठ को महापुण्य की प्राप्ति

::

दान की भावना रखने वाले जीर्ण सेठ को भगवान महावीर को दान देने का अवसर नही मिलने पर भी केवल भावना से ही पुण्य की प्राप्ति हुई।

(ग) अनुकम्पा से किए हुए काम दान, धर्म तथा सेवा आदि ... सबसे श्रेष्ठ, महापुण्य को देने वाला और मोक्ष प्राप्ति का साधन ... सकता है। अपग, बीमार, लंगडा, अधा आदि की सेवा की ... अनुकम्पा है।

(घ) दूसरो को शिक्षा देना, जीविकोपार्जन के योग्य बनाना, ... पर चलाना आदि महान सेवाएँ है। परिवार वालो का भी मोह ... निःस्वार्थ केवल आत्मा समझकर उनकी सेवा करना महापुण्य को देने ... है। परिवार मे रहता हुआ परिवार की सेवा नही करने वाला महान पा... उपार्जन करता है। जिसके ऊपर परिवार का भार है, उस भार ... निभाने वाला और परिवार को असहाय छोडने वाला अशुभ कर्म ... का उपार्जन करता है।

(ड) भौतिक कामो मे सौदा पटने पर दलाली मिलती है ... आध्यात्मिक कामो मे सौदा पटे या नही पटे, भावना के कारण दलाली मिल ही जाती है।

7. आशीर्वाद और श्राप

साधारण मनुष्यो का यह भ्रम है कि दूसरो का दिया हुआ ... और श्राप भला और बुरा कर सकता है। लेकिन आशीर्वाद या ... किसी का भला या बुरा नही हो सकता। मनुष्य के जिस भले या बुरे ... करने पर उसको श्राप या आशीर्वाद मिलता है, उस भले या बुरे ... गुप्त अदृश्य फल के कारण ही मनुष्य का भला या बुरा होता है। ... या श्राप से जिसको वह दिया जाता है उसको लाभ या हानि ... किन्तु श्राप या आशीर्वाद तो देने वाले का ही बुरा या भला कर ... बच्चो की गालियो से और अपराधियो के श्राप से अध्यापको या ... का कुछ नही बिगडता। धनवानो या शक्तिशाली पुरुषो के बल ... होकर उनको जो आशीर्वाद दिया जाता है, उस आशीर्वाद से ... जमीदारों या आतक फैलाने वाले पुरुषो का भला नहीं हो सकता।

शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ सेवा करते हुए पुण्य कमाओ। ... या इस जन्म के पुण्य से विद्या और धन आते हैं। पुण्य के बिना ... धन प्राप्त नही हो सकते। भगवान महावीर का स्पष्ट उपदेश है ...

किया स्वय का स्वय ही पाता।
पर का दिया कुछ काम न आता।।

8. दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता

जव मनुष्य अपने परिवार, पडोसी, शत्रु, भिखारी या किसी सस्था को कुछ सहयोग देता है तो उस दाता को अपनी भावना के अनुसार सुख या दुख के रूप मे उस दिए हुए (दान) का बदला अवश्य मिलता है। वह वदला, यदि जिसे दिया गया है, उससे नही मिले तो किसी अन्य निमित्त से मिल जाता है और कभी-कभी प्रकृति से या उसके अपने शुभ कर्मो की सहायता से अपने-आप ही मिल जाता है। प्रह्लाद, प्रद्युम्नकुमार, भीम, पाण्डव आदि को उनके किए हुए पुण्य के प्रभाव से सुख ही मिला तथा उनकी रक्षा हुई। सेठ सुदर्शन विना किसी रक्षक की सहायता के अर्जुनमाली के मुद्गर से वच गया। दूसरो का भला करने वाला मनुष्य अपने शुभ कर्मो के प्रभाव से करोडपति के घर जन्म लेकर या वसीयत से या गोद लेने से धनवान वन जाता है। शुभ कर्मो से मनुष्य को स्वस्थ शरीर, सहायक मित्र, ऊँचा पद व सुखी जीवन आदि भौतिक व आध्यात्मिक ऐश्वर्य मिलता है। दूसरो को दुख देने वाले तथा अशुभ कर्म करने वाले रावण को, बाली को और कौरवो को दुख ही मिला। अभय रानी, हिटलर आदि ने आत्महत्या कर ली। पापी मनुष्य अपने अशुभ कर्मो के कारण रोगी और विकलाग शरीर पाता है। वह जल मे डूब सकता है, अग्नि मे जल सकता है। वह हमेशा शत्रुओ से घिरा रहता है तथा दुख ही पाता है। इसलिए कहा गया है कि–"दिया हुआ व्यर्थ नही जाता।" उसका बदला सुख या दुख के रूप मे अवश्य मिलता है।

किसी से लिया हुआ भी मुफ्त मे नही मिलता है, उसका वदला अवश्य चुकाना पडता हे। इस बदले मे निमित्त की प्रधानता नही रहती। निमित्त के बिना भी उपादान की किस्मत मे जो लिखा होता है, वह उसे अवश्य मिलता है। जैसे कबूतर आदि पक्षियो को चुगने के लिए अनाज डाला जाता है और घर से निकाली हुई गायो को खाने के लिए घास डाला जाता है। उसका फल भी हमे अन्य रूप मे मिलता है। प्राय. दूसरे निमित्तो से और दूसरे ही रूप मे तथा कभी-कभी इसी जन्म मे और कभी भविष्य के जन्मो मे मिलता है। वे फल पाने की दृष्टि से उपादान ही वनते है। इसमे निमित्तो का विशेष महत्त्व नही रहता। उपादान ही प्रधान होता है।

अर्थात् किसी को कुछ दिया जाए तो उस दान का शुभ फल दान द
मिलता है। निमित्त चाहे कोई बने।

परिवार के संबध मे भी लोगो को यह भ्रम है कि परिवार व
दिए हुए का बदला नही मिलता। यहाँ यह बात समझ लेनी च
परिवार तो सिर्फ उपादानो या निमित्तो का ही संजोग है। परिवार मे कि
को कुछ दिया जाता है या किसी से कुछ लिया जाता है, उसका
का हिसाब स्वयं चालित कर्म पुद्गलो पर स्वयं ही अकित हो जा
उन्ही की शक्ति से बदला देने लेने का काम इस जन्म मे या अगले ज
मे पूर्ण होता है। मुनि गजसुकुमाल को, उनके सिर पर अंगारे रखे
निन्यानवे लाख जन्म या भव पहले का बदला जो कर्म पुद्गलो पर
था, वह मिला। परिवार मे हरेक सदस्य अपने-अपने कर्मो का फल
है। वहाँ मुफ्त मे लेने देने का काम तो हो ही नही सकता।

किसी कार्य के बदले सुख या दुःख मिलेगा और वह कितने
मे मिलेगा इसका निर्णय कभी भी भूल नहीं करने वाले कर्मो
तराजू पर तुलकर कर्म पुद्गलो पर अकित होता है। इसमे कभी भू
ही नही सकती। इसमे मनुष्य अपने परिवार की सहायता भी
मात्रा मे नही कर सकता। वास्तव मे तो कोई किसी को न कुछ दे
है और न कुछ ले सकता है। वह उपादान को देने मे केवल नि
बनता है। इसलिए किसी को सहायता देकर अहकार व कीर्ति
नही करनी चाहिए और परिवार को सहायता देते समय उसे
दबाव समझकर मन मे आर्तध्यान नही करना चाहिए। इससे कर्मो
फल क्षीण या नष्ट हो जाता है तथा अशुभ कर्मो का बध हो
सहायता देते समय उसे अनुकम्पा भाव रखना चाहिए आर म
विचारते रहना चाहिए कि यह मेरा अहोभाग्य है कि मुझे अनुक
परिवार की सेवा करने का मौका मिला है। इससे मे सुख, स्वर्ग
प्राप्त करने का अधिकारी बन रहा हूँ। अनुमोदना करने से शुभ
जाता है और पश्चात्ताप करने से शुभ और अशुभ दोनो ही क्षीण
हो जाते है। अहं भाव और कीर्ति का मैल पश्चात्ताप रुपी साबुन
चाहिए। हिसक भावना, कपट और आर्तध्यान का जहर दान
नहीं सम्मिलित होने देना चाहिए। शुभ कर्मो का अमृत अनुकम्पा
पात्र में सुरक्षित रखना चाहिए। यही मोक्ष का मार्ग है।

स्वास्थ्य चर्चा

स्वस्थ रहने के लिए मनुष्य को इन बातो का अवश्य ध्यान रखना चाहिए–

भोजन का प्रत्येक ग्रास (कवा) छोटा हो, उसको गिन-गिन कर बत्तीस बार चबा करके खाना चाहिए। सूर्य का प्रकाश रहते हुए (छिपने से पहले) किया हुआ भोजन लाभदायक और स्वास्थ्यप्रद होता है। अधिक चटपटा, खट्टा भोजन स्वास्थ्य खराब करता है। तली हुई चीजे जैसे–पूडी, कचोरी, पकौडी, मिठाइयॉ आदि पेट को खराब करती है। जिनको दूध से गैस बनती हो वह थोडा-थोडा करके तीन-चार बार मे दूध पीवे। जितनी भूख हो उससे ¼ (एक चौथाई) भोजन कम खाये। कभी-कभी उपवास या ऊनोदरी तप करे। यह स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। दवाइयॉ कम से कम लेनी चाहिए।

जीवनोपयोगी चर्चा

1 जे न मित्र दु ख होहि दु खारी।
तिन्ही विलोकित पातक भारी।।

जो अपने मित्रो अर्थात् परिवार के लोगो सम्बन्धियो, पडोसियो आदि के दु ख मे दु खी नही होता अर्थात् उन पर दया नही करता और उनकी तन, मन, धन से सहायता नही करता उस पुरुष को कभी सिद्ध पद प्राप्त नही हो सकता। वही मनुष्य परमात्मा बनने का अधिकारी है जो अपने शत्रु से भी बदला लेने की बात सोचना तो दूर रहा, किन्तु अपने दया भावना से, नि स्वार्थ त्याग से और सेवा से उसका भला करने की बात सोचता हे और करता है।

2 बुरा काम करते हुए यदि धन आता है तो उसे उस बुरे कर्म का फल सोचना भूल है। वह किसी पहले हुए कर्म का ही फल है। इस वर्तमान कर्म का बुरा फल आगे कभी इसके उदय मे आने पर ही होगा। इसलिए हमेशा अच्छा कर्म ही करना चाहिए।

3 आलसी मनुष्य को कोई अपने पास नही रखना चाहता। गरीबी हमेशा उसको घेरे रहती है। प्रथम मीठी बोली, दूसरा मिलनसार स्वभाव, तीसरा सत्य भाषण, चौथा ईमानदार तथा पॉचवा परिश्रम–ये पॉच गुण होने से मनुष्य ऊँचा उठता है।

4 लोभी को कुछ धन देकर, क्रोधी को हाथ जोडकर,

::

उसकी इच्छानुसार चलने देने पर और पण्डित को सत्य बोलकर अपने ... मे किया जा सकता है।

5 माता-पिता को सवेरे उठते ही प्रणाम करने से मनुष्य का ... खुलता है।

6 झूठ बोलने वालो को भविष्य के जन्मो मे बोलने वाली जीभ नही मिलती। अर्थात् वह पशु-पक्षी आदि बनता है।

7. चोरियाँ करने वाले को हाथ की जगह दो पैर मिलते है और ... चौपाया पशु बनता है।

8 कपट करने वाला मनुष्य अगले जन्म मे स्त्री बन सकता है।

9. अपने नौकर से बहुत ज्यादा काम लेने वाला अगले जन्म मे नौकर बनता है और उसको अधिक काम और कम भोजन मिलता है।

10 मांस खाने वालो को अगले जन्मो मे पशु आदि बनकर दूसरो को अपना मास खिलाना पडता है।

11 अपने दान और तप की प्रशसा और अहकार करने वाले को दान और तप से मिलने वाला फल शिथिल पड जाता है।

12 अहकार और अपने पाप का पश्चात्ताप करने से कर्म हल्के पड जाते है या नष्ट भी हो सकते है।

13 सेवा अर्थात्—अनुकम्पात्मक क्रिया मोक्ष का मार्ग है।

नियत-अनियत

भगवान महावीर का अनेकान्त सिद्धांत यह बताता है कि न तो सब बाते नियत है और न ही सब बाते अनियत है। कर्मवाद के अनुसार वर्तमान का कर्म पूर्व के कर्मो मे परिवर्तन कर सकता है। दिव्य दिवाकर ... सातवा भाग, साठ पेज मे यह लिखा है कि दान से विधाता का लेख भी झूठा पड जाता है। बडे-बडे जैन विद्वानो का कहना है कि सर्वज्ञ सभी द्रव्य की सभी पर्यायो को जानते है। इसका अर्थ यह है कि जो नियत है उनको नियत रूप में जानते है तथा जो अनियत है उनको अनियत रूप मे जानते है। दृढ प्रहारी ने चोरी और चार हत्याओ के महापापो को पश्चात्ताप से ... प्रभु भजन से क्षीण कर दिया। अनिकाचित कर्मो का अर्थ है कि वे पूर्ण रूप से नियत नही है, उन्हे बदला जा सकता है। बहुश्रुत स्वर्गीय ... समरथमलजी महाराज सा. एक मत्री पुत्र की कथा सुनाकर कहते थे कि कर्मो को बदला जा सकता है। तत्र-मंत्र, तप और दान आदि से कर्मो मे परिवर्तन होता है।

दूसरी ओर स्वर्गीय कवि श्री अमरचंदजी म सा ने जैनत्व की झॉकी नामक पुस्तक मे समवाय के पाठ मे साफ लिखा है कि चाहे कुछ भी करो, होता वही है जो नियति को स्वीकार है। श्री कानजी ऋषि ने 'क्रमबद्ध पर्याय नामक पुस्तक मे स्पष्ट लिखा है कि अगले जन्म स्थान का रिजर्वेशन (आरक्षण) हुए बिना मरना भी मनुष्य के हाथ मे नही होता। भव स्थिति पके बिना मोक्ष की प्राप्ति भी नही होती। भव्य-अभव्य द्रव्य नही हो सकता और अभव्य भव्य नही हो सकता। प्रकृति की बहुत-सी बाते सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रो की गति की तरह नियत है। वृद्धालोयणा मे लिखा है कि पुद्गल स्पर्शना टलती नही है।

एक बहेलिये (चिडीमार) ने एक पक्षी को पकडा और एक केवलज्ञानी को झूठा साबित करने के लिए पूछा कि मै इसे मारूगा या छोडूगा। तब केवलज्ञानी ने जवाब दिया कि तुम इसे मार भी सकते हो और छोड भी सकते हो। इन सब बातो से यही प्रकट होता है कि कुछ बाते नियत ओर कुछ अनियत है। हम सर्वज्ञ नही है इसलिए नियतिवाद और अनियतिवाद के झगडे को छोडकर कषाय आदि को जीतने के लिए निश्चय दृष्टि मे विश्वास रखते हुए व्यवहारवाद का पालन करना चाहिए। इससे हमे दया भावना आदि की वृद्धि मे सहायता मिलती है और हम कर्म काटकर मोक्ष मार्ग पर चल सकते है।

पाप का पश्चात्ताप

किसी से झूठ बोलकर, धोखा देकर, चोरी करके या दबाव आदि से धन या कोई चीज लेना बहुत बडा पाप है। इस प्रकार लिया हुआ धन या चीज प्राय अपने साथ धोखेबाज के घर या घर से अधिक धन किसी न किसी रूप मे लेकर निकल जाता है। धोखा देने वाले को धोखे से ली हुई चीज या उसकी कीमत असली मालिक को पश्चात्ताप करते हुए लौटा देनी चाहिए। यदि लौटाई नही जा सके तो उसके फल रूप मे दृढ प्रहारी ओर अर्जुनमाली की तरह पश्चात्ताप करते रहना चाहिए जिससे उस किए हुए पाप का फल हल्का हो सके या नष्ट भी हो सकता है।

सत्-सकल्प

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा, ममता अरु इच्छा छोडूगा।
समता रखकर, कर्म काटकर, सिद्धो का पद प्राप्त करूगा।।
पश्चात्ताप से, सिद्ध ध्यान से, सब पापो का नाश करूगा।

झूठ, लूट से बचा रहूँगा, सच बोलूगा, दया करुगा।
काम क्रोध, मद, मोह छोडकर, आनन्दघन और अभय बनूगा।।

नोट–"सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूंगा, ममता अरु इच्छा छोडूगा" इसका दस लाख बार स्वाध्याय करने से जीव सिद्ध बन सकता है।

"भलो हो, भला हो, सबका भला हो" इस वाक्य का दस लाख बार स्वाध्याय करने से कषाय छूट सकती है।

मानव की भूल

मानव की सबसे भारी महाभयंकर भूल यह है कि वह अपने विचारों को अपनी बुद्धि को तथा स्वय अपने-आप को सर्वोपरि समझता है। अहंकार मे आकर अपनी मनमानी करता है। इससे कभी-कभी वह भारी कर्ज के कचरे में भी फस जाता है और दु ख के दल-दल मे धस जाता है। इनसे निकलना उसके लिए असभव-सा हो जाता है। जो स्वय को छोटा समझता तथा बडो का आशीर्वाद लेकर उनके वताए हुए मार्ग पर चलता है वही यथार्थवादी मानव है और वही सुखी बनता है। अहंकारी प्राय नरक के मार्ग पर जाता है लेकिन विनयवान भगवान वनता है।

मोक्ष का मार्ग

महापुरुषो ने मोक्ष प्राप्ति का एक अति सरल मार्ग वताया है। उनका कहना है कि "णमो सिद्धाण" या "सब सिद्धो को नमस्कार हो।" इन भावनाओं को जितनी बार जपोगे तथा अपने मन को, चित्त को सिद्धों के अरूपी ध्यान मे लीन रखोगे उतना ही मोक्ष के नजदीक पहुँचोगे क्योंकि सिद्धो के ध्यान से पाप कटता है और सिद्ध पद मिलता है।

मधु बिन्दु

1 परिवार का प्रत्यके सदस्य और ससार के सभी प्राणी और पिता-पुत्र, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य सभी अपना-अपना लेना देना चुकाते और अलग हो जाते है। मुफ्त मे किसी को कुछ नहीं मिलता।

2 झूठ, ठगी, चोरी, मिलावट, साहूकार बनकर लोगों को लूटना दुर्भावना–ये महापाप है जिससे मृगा लोढा जैसा शरीर मिलता है।

3 दान देना, दया करना, सेवा करना, सच वोलना–ये धार्मिक है।

ज्ञेय, हेय, उपादेय

1 कर्मो के सामने इच्छा नही चलती।

2 पुद्गल स्पर्शना अर्थात् होनहार नही टलती। किसी को दोष मत दो, क्रोध मत करो।

3 लेन-देन बाकी नही रहता।
तब परिवार अलग हो जाता।

4 दया भावना–निस्वार्थ भाव से दूसरे का भला करने का विचार–दया भावना है। भला करना सेवा है, धर्म है और यह मोक्ष का मार्ग हे।

5 लोभ और लूट–(क) धनवान बनने की इच्छा लोभ है। (ख) वेतन पाते हुए भी अपने काम के लिए जनता से और अधिक धन लेना भी लूट है। (ग) साहूकार कहलाते हुए चीजो मे मिलावट, चोरी, झूठ, कपट द्वारा या बिलकुल मुफ्त मे लोगो का धन छीनना या शोषण करना और अपनी चीज की उचित से बहुत अधिक कीमत लेना लूट है।

6 मुफ्त मे न तो कुछ आता है और न कुछ पाता है। पति-पत्नी को भी अपना-अपना कर्ज, कर्म तराजू पर तोलकर किसी-न-किसी जन्म मे चुकाना पडता है। मुफ्त मे लेना व खाना छोडो, देना व खिलाना तथा दया करना सीखो।

7 पश्चात्ताप और प्रभु भजन से पाप नष्ट होता है और मोक्ष मिलता है।

8 दूसरो की आलोचना व निन्दा करना छोडो। कम बोलो, मोन रखो।

9 अह से धर्म का फल शिथिल पड जाता है तथा पाप का फल निकाचित और भयकर हो जाता है।

10 "माता-पिता की सेवा करता।
देवलोक मे देव वह बनता।।"



कषाय व मोह छोड़ने के उपाय

कषाय मुक्ति : बारहवां भाग

कषाय और मोह सम्बन्धी विचार

1. अन्याय है या अपना कर्म दण्ड—जिस घटना को साधारण मनुष्य अपने ऊपर किया जाता हुआ अन्याय समझते है और क्रोध करते है, पूर्ण ज्ञानी मनुष्य अपने अशुभ कर्मो का फल समझकर समता रख कर निर्जरा करते है। वे सिद्ध बनते है।

2 (क) सत्संकल्प—समता विभूति श्री नानेशाचार्य म सा का मुख्य उपदेश यह है कि जीवन का लक्ष्य है सिद्धत्व प्राप्त करना। इसके लिए स्वाध्याय करने का यह सूत्र है—"सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा सिद्ध लोक मे सिद्ध दशा मे अटल अवगाहना प्राप्त करूगा, आनन्दघन और सिद्ध बनूगा।"

2. (ख) सत्संकल्प को तथा दूसरे सूत्रो को पॉच-सात लाख जपने से यह भावना रोम-रोम मे अपना घर बना लेती है और मनुष्य को अवश्य ही सफलता मिलती है।

2 (ग) इस जाप को दिन मे, रात मे, सामायिक मे या बिना सामायिक के समय भी, सोये हुए या बैठे हुए भी दुकान मे या रास्ते के समय मे, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय पर और किसी भी दशा में किया जा सकता है। इससे पुण्य की प्राप्ति और कर्मो की निर्जरा होती है।

3 (क) गंदा नाला—महापुरुषो के मनोविज्ञान के अनुसार तालाब को सुखाने के लिए उसके अन्दर गदा पानी लाने वाले नालो को बंद किये बिना वह तालाब कभी सूख नही सकता। इस रोक के लिए सूत्र है—इनमें से किसी एक का या सबका ही बार-बार हमेशा जप करना।

(ख) इसका पहला सूत्र है—"भलो हो, भला हो, सबका भला हो।" दूसरा सूत्र है—"बुरा नही हो, बुरा नही हो, किसी का भी बुरा नहीं हो।" तीसरा सूत्र है—"मै सबको क्षमा करता हूँ, सभी मेरे मित्र है, कोई शत्रु नहीं,

नही है।" चौथा सूत्र है–"मै किसी की अशुभ आलोचना, निदा या विकथा नही करूगा।"

(ग) इन ऊपर वाले सूत्रो से दुर्भावना और अशुभ कर्म आने रुक जायेगे और साधक मुफ्त मे ही तन्दुल मत्स्य या कालसौरिक कसाई बनने से बच जाएगा। यह स्व गणेशाचार्य जी की अद्वेष भावना है।

4 (क) कषाय को छोडने के लिए कुछ उपाय नीचे दिये है–प्रथम उपाय है कि मनुष्य को कषाय से प्राय पशु का जन्म मिलता है। उसे यह जाप करना चाहिए–"क्रोधी मरकर सर्प है बनता।" दूसरा सूत्र है–"अभिमानी मुर्गा है बनता।" तीसरा सूत्र है–"माया कपट से मादा (औरत) है बनता।" मल्लिनाथ भगवान ने तीर्थकर होते हुए भी मादा अर्थात् औरत रूप मे जन्म लिया था। चौथा सूत्र है–"लोभी मृगा लोढा है बनता।" मृगा लोढा के हाथ पैर नही थे, उसका जीवन बहुत दु खी था।

(ख) क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकार के अशुभ कामो से दु ख पाने वाले लोगो के जीवन की कथा सतो व साध्वियो से पूछिये और कषाय मुक्ति की भाग एक से ग्यारह तक की पुस्तको मे पढिये।

(ग) अपने अडोस-पडोस मे रहने वालो को कषाय से होने वाले दु खो से अवगत कराइये।

5 (क) मोह छोडने के लिए और अराग भावना को मजबूत बनाने के लिए यह चितन-मनन करिए। प्रथम शरीर मोह को छोडने के लिए विचार करिये कि मुनि गजसुकुमाल, मुनि मैतार्य, मुनि उदायी, मुनि अर्जुनमाली, मुनि खन्दक जिनकी चमडी उतारी गई और स्कन्धाचार्य के 500 शिष्य जिनको पालक द्वारा घाणी मे पैला गया उन्होने शरीर का मोह छोडा और वे सिद्ध बने।

(ख) अराग भावना को मजबूत बनाने और वीतरागी बनने के लिए परिवार मोह को छोडना जरूरी है। यह याद रखिए कि केवल परिवार को छोडने से या अपने शिष्यो को छोडने से मनुष्य वीतरागी नही बनता। छोडना है केवल मोह को और जब तक परिवार मे रहे तब तक परिवार को श्री जवाहराचार्य के विचारो के अनुसार परिवार को भी तिराने वाली जहाज समझकर धारिणी रानी की तरह इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करे। कूर्मा पुत्र केवली की तरह अनुकम्पा भाव से, दया भाव से परिवार की पूरी सेवा

करना आवश्यक है। परिवार मे रहना और परिवार की सेवा नहीं करना व इस सेवा को बेगार व बेकार समझना व आर्तध्यान करना महापाप है।

(ग) धन का लोभ व मोह—इस सबध मे यह चितन करना चाहिए "धन का लोभी सर्प है बनता, धन की वह रखवाली करता है।

6 (क) श्री जवाहराचार्य ने व वर्तमान श्री नानेशाचार्य ने प्रभु भजन को मोक्ष प्राप्ति का बडा साधन माना है।

(ख) "सिद्ध ध्यान से पाप है कटता। सिद्ध ध्यान से सिद्ध पद मिलता।" दृढ प्रहारी ने चोरी हत्या और महापापो को पॉच महीनो मे नष्ट किया व सिद्ध बन गये।

7 स्व श्री जवाहराचार्य की दूसरी बात मन मे दया से पाप नष्ट होते है व निर्जरा होती है। इसका अध्ययन इस प्रकार भी किया जा सकता है—आचार्य भगवन स्वस्थ हो, सुखी हो। सभी सत स्वस्थ व समतादर्शी हो, अमुक व्यक्ति मासाहार व अंडे खाना छोडे, अमुक व्यक्ति माता-पिता का आज्ञाकारी व विनयवान बने। अमुक सत का सकट दूर हो। अमुक व्यक्ति को परमात्मा सुबुद्धि दे, सुमति दे तथा सम्यक् ज्ञान दे। सभी देवता कृपा करे। अमुक व्यक्ति का भला करे।

8 श्री जवाहराचार्य की तीसरी बात—तन सेवा मे लीन तिराने वाले जहाज—साधु-साध्वी, माता-पिता, सास-ससुर, वृद्ध-विकलाग व्यक्ति, अन्धे लूले-लगडे, रोगी, अबाल व अबोध पशु-पक्षी और दु खी जीव ससार-सागर से तिराने वाली जहाज के समान हैं। इनकी अनुकम्पा भाव से सेवा करने से मनुष्य ससार सागर से तिर जाता है।

इनकी सम्यक् सेवा से पुण्य की बहुत कमाई व कर्मों की बहुत निर्जरा होती है किन्तु सेवा को बेगार समझने वाला और इस कार्य के लिए आर्तध्यान करने वाला कभी-कभी इस कार्य से अधिक पुण्य खो देता है व पाप कमा लेता है।

9 पश्चात्ताप से प्रसन्नचन्द्र मुनि, चण्डरुद्राचार्य और दृढ प्रहारी की तरह बहुत से पापों को क्षण भर मे नष्ट कर सकता है। पश्चात्ताप साबुन व पानी की तरह मनुष्य के शरीर रूपी कपडे के सब पापो को धो देता है। इसका ध्यान इस प्रकार किया जा सकता है—"मैंने अमुक व्यक्ति का ... दिया, महापाप किया। मुझे इसके लिए धिक्कार है। मै इनके ...

तप करूगा या अमुक वस्तु खाना छोडूगा। मैने भूल से या जान बूझकर अमुक व्यक्ति से इतने रुपये या सामान ठगे, मै महापापी हूँ, हो सकेगा तो उसके रुपये लौटाऊगा। मैने अमुक व्यक्ति की नौकरी छोडायी, हो सकेगा तो मै उसकी सहायता करूगा। अति लोभी को दुर्गति मे जाकर भारी दड सहना पडता है। मैने रिश्वत ली। मैने मुफ्त मे अमुक व्यक्ति का धन खाया, पाप किया। दूसरे का धन मुफ्त मे या धोखा देकर या बहुत अधिक ब्याज लेकर मैने एक प्रकार से दूसरो का खून चूसा। मै इन सबका पश्चात्ताप करूगा और करता हूँ।

10 कषाय मुक्ति ग्यारहवा भाग मे 'ज्ञेय, हेय, उपादेय' इस शीर्षक मे दस नियम दिये है उन्हे हमेशा पढिये।

11 दूसरो पर व्यवहार मे दिखते हुए अन्याय को रोकने के लिए यथाशक्ति, यथा मर्यादा, अनुकम्पा भाव से शुभ प्रयास करना हमारा परम ओर पवित्र धर्म है।

12 धन के आठ नियम–1 उपादान रूप मे आने वाला धन अवश्य आता है। 2 अशुभ कर्म से जाने वाला धन रुक नही सकता। 3 धन के बिना भी शुभ कर्मो के उदय से सुख मिलता है। 4 धन होते हुए भी सभी अशुभ कर्मो से दु ख मिलता है। 5 धन होते हुए भी योग नही हो तो काम नही बनता। 6 धन नही होते हुए भी होने वाले काम के लिए कही से धन आता है तथा वह काम अवश्य बनता है। 7 धन दान-पुण्य से ही आता है। 8 धन का लोभी सर्प बनकर उसकी रखवाली करता है।

13 कभी-कभी कर्ज चुकाने के लिए पशु का जन्म लेना पडता है।

14 आम के पेड व दान का शुभ फल बहुत समय तक मिलता है।

15 पति-पत्नी को भी अपने लेन-देन का हिसाब किसी-न-किसी रूप मे चुकाना पडता है।

सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा।
ममता अरु इच्छा छोडूगा।।
समता रखकर कर्म काट कर।
सिद्धो का पद प्राप्त करूगा।

परिवार मोह

परिवार नहीं अपना होता।
परिवार पराया है होता।।1।।
जब लेन-देन बाकी नहीं रहता।
तब परिवार अलग हो जाता।।2।।
कर्म कुटुम्ब के बदल न सकता।
कर्म दंड से बचा न सकता।।3।।
कोई हमेशा साथ न रहता।
मर कर अगले घर वह जाता।।4।।
शत्रु भी घर में जन्म है लेता।
वह अपना बदला है लेता।।5।।
सब अलग-अलग है, अलग-अलग हैं।
अलग-अलग है, अलग-अलग हैं।
अलग-अलग है, अलग-अलग है।।6।।
परिवार मोह से कुतिया बनता।
मोह छोडता, वह सिद्ध बनता।।7।।
परिवार है साथी नही मेरा।
परिवार है साथी कर्मो का।।8।।
मोह छोडूगा, सिद्ध बनूगा।
सिद्ध बनूंगा, सिद्ध बनूंगा।।9।।

नोट–कषाय मुक्ति तीसरा भाग मे सेवा धर्म, कर्म सिद्धात और ... ध्यान पर काफी सामग्री दी हुई है।

मोक्ष के पॉच मार्ग

1. दुर्भावना से बचना ही मोक्ष का प्रथम मार्ग है। इस... है–'सबका भला हो।' इस सूत्र को खूब जपना चाहिए, ... सद्भावना रोम-रोम मे रम जाए तथा जिससे पाप बचने वाले ... जीव बच जाए। तन्दुल मत्स्य कुछ भी हिसा नहीं करता ... दुर्भावना के कारण नरक में जाता है। इसका जाप इस प्रकार ... सकता है–'अमुक व्यक्ति का भला हो।'

2 दूसरा सूत्र इस प्रकार है—जीव पर अनेक दूसरे जीवो का अनेक प्रकार का ज्ञात व अज्ञात ऋण चढा हुआ है। उसे नि स्वार्थ भाव से दया, दान और सम्यक् सेवा द्वारा उतारो। मुनि गजसुकुमाल ने निन्यानवे करोड जन्मो के बाद अपना आग से जलाने वाला पाप समता-भाव से काटकर मोक्ष प्राप्त किया था। वैदिक सस्कृति मे भी बताया गया है कि जीव माता-पिता आदि का ऋणी बने बिना जन्म नही ले सकता। 'ऋणम् वई जाय मान।'

3 अपने सभी पापो को बार-बार याद करके पश्चात्ताप द्वारा तथा प्रभु भजन द्वार काट लो।

4 सिद्धो का ध्यान करो। सिद्धो के ध्यान से दृढ प्रहारी ने उसी एक जन्म मे सब हत्या के महापापो को भी काटकर प्रभु भजन से मोक्ष प्राप्त किया था।

5 'सिद्ध बनूगा, सिद्ध बनूगा' इस सकल्प को जाप द्वारा मजबूत बनाओ। इस सकल्प से सिद्ध पद प्राप्त होता है।

चितन-मनन की चार बाते

1 परिवार नही किन्तु पश्चात्ताप कर्म दड से बचा सकता है। दृढ प्रहारी ने गाय, ब्राह्मण, गर्भवती स्त्री और बालक की हत्या का पाप पश्चात्ताप और प्रभु भजन से नष्ट किया और मोक्ष गए। अर्जुनमाली ने 1141 मनुष्यो की हत्या का पाप पश्चात्ताप और समता से काटा और मोक्ष गए।

2 (क) परिवार, पिता, पुत्र आदि कोई भी कुछ भी मुफ्त मे नही देता। उसका बदला पहले या बाद मे, किसी जन्म मे तथा किसी-न-किसी रूप मे चुकाना ही पडता है।

(ख) दूसरो का धन मुफ्त मे खाने वालो को तथा चोरी या उचित से अधिक कीमत लेकर लाया हुआ धन मनुष्य को बरबाद कर देता है या उस मनुष्य को मृगा लोढा अर्थात् बिना हाथ पैर के शरीर वाला मनुष्य बनाता है। मुफ्त मे खाना छोडो। दया भाव से दूसरो का उपकार करो।

3 परिवार मोह मे मरने वाली महेशदत्त की माता कुतिया बनी, उसका पिता भैसा बना। मोह मे मरकर मनुष्य पशु भी बनता है।

4 परिवार मोह छोडने वाली मरुदेवी माता सिद्ध बनी।

मुफ्त में कुछ नहीं मिलता

संसार मे किसी भी जीव को किसी भी जीव से यहाँ तक कि ...
में भी एक दूसरे को मुफ्त में कुछ नही मिलता। उनके लेन-देन ...
हिसाब कर्मो के नियमों के अनुसार कर्मो के अरूपी बही खातों में ...
स्वयं अरूपी लेखनी के द्वारा अंकित हो जाता है और वह लेना-देना ...
रूप मे या बदले हुए रूप में कर्मो के माप-तोल के अनुसार चुकाना ...
है। इसमे छूट नही होती किन्तु वह कर्म पश्चात्ताप द्वारा नष्ट किया ...
सकता है।

कोई मनुष्य पहले, कोई बाद मे दाता और पात्र अर्थात् निमि...
उपादान या साहुकार और आसामी (कर्जदार) बनता रहता है। ...
कुछ आता है और न कुछ जाता है।

समझदार मनुष्य मोक्ष की इच्छा रखने वाला धन आने पर ...
नही और खो जाने पर रोता नही है। वह जानता है कि जितना ...
मे लिखा है उतना तो ईमानदारी से भी मिल जाएगा। इसलिए मु...
खाना छोडो। मुफ्त मे जरूरतमंदो को खिलाना सीखो। दान देना ...
चोरी, ठगी, लेन-देन आदि का बदला पहले या बाद मे लेना-देना ...
अत धन प्राप्त करने के लोभ से बचना चाहिए तथा दान, सेवा ...
से अपना अज्ञात कर्जा चुकाना चाहिए। यही धर्म और मोक्ष का मार्ग ...

मोक्ष मार्ग में रूकावटें

1 जो मनुष्य अपनी भूल को स्वीकार नहीं करता और ...
समझदार लोगो से पूछकर उसमे सुधार नही करता वह मोक्ष ...
पाता।

2 जो मनुष्य धन के लोभ में दूसरो को अनीति से लूटता है ...
नही जा पाता।

3 जो मनुष्य अपने धन, बल, बुद्धि और मान का दिखावा ...
उसकी बुद्धि का दिवाला निकल जाता है और उसका अहंकार ...
नही पहुँचने देता।

मोक्ष का दरवाजा

पश्चात्ताप से पाप कटता है तथा मोक्ष का दरवाजा खुलता है। पश्चात्ताप इस प्रकार किया जा सकता है–"अरे भाई मोहन ! मुझे क्षमा करो, मैंने बहुत पाप किए है। मैने तुम्हे ठगा है, धोखा दिया है। उसके लिए मुझे धिक्कार है। मुझे माफ करो।

बहुत दिनो तक बार-बार इस प्रकार पश्चात्ताप करने से पाप नष्ट होते हैं। दृढ प्रहारी, अर्जुनमाली आदि ने इसी प्रकार पश्चात्ताप करते हुए अपने पूर्वकृत पापो को नष्ट किया और मोक्ष पद को प्राप्त किया।

किसी चितन की पुनरावृत्ति होना भूल नही है यह स्वाध्याय तप का अग है।

भगवान महावीर के तीन सिद्धांत

1 महाहिसा से बचो और अहिसक बनो। मकान बनाने, जमीन खुदवाने, चुने आदि के भट्टे, भुजिया आदि बनवाना, बैल गाडियॉ किराये पर देना, दास-दासी का व्यापार आदि ये महाहिसा के कार्य है। कसाईखाना, पशु-वध आदि महाहिसा के कार्य है। इनसे बचो और अहिसक बनो।

2 महापरिग्रह से बचो। जीवन की आवश्यकता पूरी हो उसी मे सतोष रखो। अधिक धन, जमीन, मोटर गाडियॉ आदि मत रखो। अल्प परिग्रही बनो।

3 एकान्तवाद धर्म नही है। सब कुछ नियत नही है। मै जो सोचता हूँ या कहता हूँ या करता हूँ वही ठीक है इस एकान्तवाद को छोडो और अनेकातवादी बनो।

सब कुछ नियत नही है। मै जो करता हूँ, कहता हूँ वह गलत भी हो सकता है। दूसरो की बात सुनो, सोचो, समझो, यह अनेकातवाद है। यदि सभी कुछ नियत होता तो कर्मो के दो भेद निकाचित ओर अनिकाचित क्यो किए जाते ? सर्वज्ञ नियत को नियत रूप मे और अनियत को अनियत रूप मे देखते है।

ध्यान एक अनुशीलन

ध्यान

ध्यान, ध्यान ही है। वह ध्येय नही है। वह साध्य नहीं ... अन्तिम लक्ष्य नही है। वह ध्येय साध्य या अन्तिम लक्ष्य प्राप्ति ... है, क्रिया है, उपाय है, एक मार्ग है।

जिस प्रकार गंतव्य स्थान पर पहुँचने के अनेक मार्ग होते हैं कोई लम्बा, कोई छोटा, कोई कठिन और कोई सरल व सुगम होते ... प्रकार जीवन के लक्ष्य प्राप्ति के भी अनेकान्त सिद्धान्तानुसार ... हो सकते है। जैसे विपश्यना, त्राटक ध्यान, नासाग्र ध्यान, ... ध्यान, हठ योग, सहज योग, समीक्षण ध्यान आदि। इनमें ... अपनी-अपनी मान्यता, योग्यता एवं परिस्थिति के अनुसार किसी ... को अपना लेता है और वह भी कुछ-कुछ परिवर्तन के साथ।

भगवान महावीर के जैन आगमो मे चार ध्यान बताये गये ... अनेक भेद-उपभेद हो सकते है। इन चारो मे प्रथम दो ... रौद्रध्यान सर्वथा हेय है और अतिम दो धर्मध्यान ओर शुक्लध्यान ...

ध्यान सूत्र–जिस विषय का ध्यान करना हो उसका ... वाक्य या स्वाध्याय सूत्र बना लीजिये। कुछ सूत्र इस पुस्तक ... गये है।

स्थान–स्थान जहाँ तक हो सके शात, एकान्त ओर ... उपसर्गो से मुक्त होना चाहिए। वह शोर से दूर हो ओर मन ... आकर्षित करने वाला नही हो।

आसन–शरीर स्थिर दशा मे हो। ध्यान सीधे बेठकर, ... शरीर की कमजोरी के कारण लेटकर भी किया जा सकता है। ... व स्थिर रह सके वह सुखासन ही उचित आसन है।

समय–रात्रि का समय या सवेरे उठते ही सूर्योदय ... उषाकाल का शांत वातावरण अधिक उपयुक्त है। ध्यान निर्... प्रतिदिन किया जावे।

पुनरावृत्ति–स्वाध्याय या साधना के सूत्रों को दिन ... दोहराना चाहिये। केवल आधे घंटे धर्मध्यान ओर साढे ... रौद्रध्यान का अभ्यास साधक को कितनी सफलता देगा ...

विचारणीय बात है। अपने सूत्रो को सोते-जागते, उठते-बैठते हर समय स्मरण कीजिये। दिन मे समय निकाल कर कई बार दोहराइये।

प्रारम्भिक तैयारी–दु ख चेतना, सुख-चेतना एव आर्त-रौद्रध्यान से निवृत्ति की साधना के लिये अपने अवगुणो की सूची बनाइये। इनके सबध मे गहरा अध्ययन एव चितन मनन कीजिये। इन अवगुणो को दूर करने के लिये कुछ सक्षिप्त छोटे वाक्य या सूत्र बना लीजिये। उन सूत्रो को कुछ महीनो तक बार-बार दोहराते रहने और जीवन मे उतारने से आत्मा निर्विकार बन सकेगी।

साधना का प्रारम्भ–मन बहुत चचल है। मन को वश मे करने के लिये कई प्रकार के ध्यान किये जाते है। किन्तु आत्म-शुद्धि के लिये साधना करने वाले प्राणी को प्रारम्भ से ही किसी एक दुर्गुण-निवृत्ति की साधना के लिये अच्छा यह रहेगा कि प्रारम्भ से ही उस दुर्गुण के विरोधी भाव का अध्ययन, चितन, ध्यान, जप, स्वाध्याय एव बार-बार स्मरण किया जावे और पूर्ण सजग रहकर जीवन की प्रत्येक छोटी या बडी सभी घटनाओ मे उस दुर्गुण से बचा जावे।

सर्वप्रथम क्रोध निवृत्ति हेतु समता के किसी सूत्र का ध्यान करना प्रारम्भ किया जावे। इसका एक सूत्र है–"चोट, रोग या गरीवी को अपने पाप-कर्म का फल मानो। दु ख मे समता रखते हुए दु ख को पाप-कर्म काटने की दवा मानो। उसमे निमित्त बनने वाले को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो।"

कुछ दिनो या महीनो की साधना के बाद क्रोध-निवृत्ति मे सफलता मिल ही जावेगी। सफलता देरी से मिले तो भी धैर्यपूर्वक साधना मे लगे रहे।

क्रोध निवृत्ति के बाद किसी दूसरे विकार निवृत्ति की साधना प्रारम्भ कर दीजिये और उसमे सफलता मिलने के बाद किसी तीसरे अवगुण-निवृत्ति का प्रयास प्रारम्भ करे। इस प्रकार एक के बाद दूसरे की ओर दूसरे के बाद तीसरे की निवृत्ति मे लगे।

साधना मे सफलता के लिये जितनी आवश्यकता एकाग्रता की है उससे भी ज्यादा महत्त्व स्वाध्याय के सूत्रो की पुनरावृत्ति का है। "जितनी पुनरावृत्ति, उतनी ही सफलता।"

::

विकार निवृत्ति की साधना मे निम्नलिखित शब्द-चित्र द [illegible]
भी काफी सहायक होता है।

क्रोध	दु ख-चेतना	अहकार
दुर्भावना	सुख-चेतना	सग्रह
परिवार-मोह	इच्छा	विकार

इस शब्द-चित्र या मानस-चित्र को बार-बार देखने से [illegible]
पढने से, बार-बार लिखने से यह मानस पटल पर अकित हो जा[illegible]
बार-बार ऑखो के सामने आने से अवचेतन मन मे उतर कर अ[illegible]
अग बन जाता है।

आर्तध्यान और रौद्रध्यान की निवृत्ति की साधना मे धर्म[illegible]
आधी से ज्यादा साधना तो बन ही जाती है। धर्मध्यान की [illegible]
भगवान महावीर की आज्ञाओ, उनके निर्देशो का प्रतिदिन स्[illegible]
जाना आवश्यक है।

साधक पिडस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यानो का भी [illegible]
कर सकता है। इनका वर्णन जैन आगमो मे विस्तार से दिया गया [illegible]
पंचपरमेष्ठी के गुणो का चितन एव ध्यान है।

नवकार मत्र का बार-बार जप व ध्यान करना भी धर्[illegible]
साधना है। इसके लाख जप करने से तीर्थकर नाम कर्म का [illegible]
हो सकता है। ऐसा पुस्तको मे उल्लेख है।

ध्यान का प्रथम मूल लक्ष्य विकार-निवृत्ति ही है। विकार-[illegible]
विशेष साधना की विधि और उसके लिये कुछ स्वाध्याय-सूत्र [illegible]
के अन्तिम भाग मे दिये गये है।

विकार निवृत्ति के बाद आत्म-ध्यान मे काफी सफलता मि[illegible]
आत्म-साधना के लिये प्रथम देहात्म-भेद-ज्ञान और आत्म ज्ञान [illegible]
आवश्यक है। उसके बाद आत्म-ध्यान प्रारम्भ करना ठीक है।

सब ध्यानो मे निज आत्मा का ध्यान ही प्रधान है। इससे [illegible]
अंतर्मुखता से अनासक्ति, अनासक्ति से समता, समता से [illegible]
अत मे परमात्म-पद की प्राप्ति होती है।

देहात्म-भेद-ज्ञान

देह-आत्म-भेद-ज्ञान का महत्त्व सभी धर्मो ने माना है। [illegible]
तो इसका इतना महत्त्व बताया गया है कि शिवभूति मुनि [illegible]

कुछ भी ज्ञान नही होते हुए भी केवल देहात्म-भेद-ज्ञान की अनुभूति से कि जिस प्रकार छिलके से दाल अलग होती है उसी प्रकार शरीर से आत्मा अलग है, उन्हे केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई थी।

शरीर और आत्मा दोनो ऊपर से एक ही शरीर के रूप मे दिखाई देने पर भी वास्तव मे दोनो अलग-अलग है। शरीर तो पानी, मिट्टी, आग, हवा और आकाश—इन पॉच तत्त्वो से बना है। आत्मा अति सूक्ष्म अमूर्त चेतन द्रव्य है जो अशरीरी और पूर्णत ज्ञान स्वभावी और आनन्दघन है। यह अजर, अमर, अविनाशी है, जिसका छेदन, भेदन आदि नही हो सकता।

बहुत से लोगो को शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने का पता भी नही है और जिन्होने इस विषय मे कुछ पढा या सुना है उन्हे इसका विश्वास भी जल्दी नही होता। क्योकि आत्मा प्रत्यक्ष रूप मे दिखाई नही देती और जब तक लोग किसी चीज को देख नही लेते, उसकी अनुभूति नही कर लेते या उसके पुष्ट प्रमाण नही मिल जाते, तब तक वे सहसा उस पर विश्वास नही करते।

जिस प्रकार दूध मे घी मिला हुआ रहता है किन्तु वह दिखाई नही देता उसी प्रकार शरीर मे आत्मा व्याप्त है किन्तु वह दिखाई नही देती। किसी लोहार की दुकान मे तेज आग मे खूब तपा हुआ लाल-लाल लोहे का गोला देखने वाला मनुष्य समझ जाता है कि लोहा अलग चीज है और गोले की ललाई दूसरी चीज है। उसी प्रकार चिन्तनशील ज्ञानी पुरुष समझता है कि मिट्टी की बनी हुई देह एक चीज है और इस देह को चेतना, जीवन, शक्ति आदि देने वाली आत्मा दूसरी चीज है। वह शरीर मे होने वाली अनेक शारीरिक एव मानसिक क्रियाओ के चितन-मनन द्वारा शरीर और आत्मा के अलग-अलग होने की अनुभूति करने लगता है।

जिस प्रकार तिलो मे तेल, वनस्पति मे शहद, फूलो मे सुगन्ध, काष्ठ मे अग्नि, दूध मे घी मिला हुआ है उसी प्रकार इस जड भौतिक देह मे आत्म-प्रदेश मिले हुए है। कुछ भौतिक पदार्थो की मिलावट को तो अलग करके देखा जा सकता है किन्तु शरीर से आत्मा को पृथक् करके इन भौतिक ऑखो से नही देखा जा सकता। आत्मा के अस्तित्व की तो केवल अनूभूति ही की जा सकती है। शरीर के अन्दर से आत्मा के निकल जाने पर शरीर की क्रियाऍ बद हो जाती है। उसका हिलना-डुलना, बोलना, देखना आदि सब समाप्त हो जाते है और वह निर्जीव देह जला दी जाती है या गाड दी जाती है।

आत्मा की अमरता के कारण ही प्राणी संसार मे बार-बार ... हैं और अपने पिछले किए हुए पाप या पुण्य का फल अगले जन्म ... या सुख के रूप मे भोगते है। वर्तमान काल मे पाप करने वाले ... का अत्यन्त समृद्धिशाली होना और दूसरे पुण्य करने वाले ... सड-सड कर जीवन बिताना आत्मा की अमरता और उस प्राणी ... लेकर पूर्व जन्मों के कर्म फल भोगने के ही प्रमाण है।

कुछ लोग कहते है कि यदि आत्मा अमर होती और स्वर्ग-नरक ... तो हमारे पूर्वजो मे से कोई तो कभी हमारे पास आकर हम ... देता। इसके उत्तर मे ज्ञानी पुरुषो का कहना है कि देवलोक इतना ... और सुखद है और मनुष्य-लोक उसकी तुलना मे इतना दुर्गन्धमय ... दु.खद है कि देवलोक के देवता यहाँ आना नहीं चाहते। फिर भी ... देव आकर अपनो की सुधि लेते है। सभी धर्म ग्रन्थो मे ऐसे उल्लेख ... है कि देवता अपने पूर्व जन्म के राग-द्वेष से जुडे हुए प्राणियो की ... है। जैन कथाओं मे शालिभद्रजी को उनके पिता द्वारा देवलोक से ... सम्पत्ति के बराबर भेजे जाने का वर्णन आया है। और नरक से ... यहाँ आने नही दिया जाता।

ऐसी घटनाएँ भी घटी है जिनमे एक प्राणी ने अपने पूर्व ... परिवार के लोगों को अच्छी तरह पहचान लिया है और उस जन्म ... घटनाओं का भी परिचय दिया है। ये सब बातें आत्मा के ... उसकी अमरता की और उसके पुनर्जन्म की सत्यता को प्रमाणित ... किसी प्राणी का विकलाग, लूला, लंगडा, अंधा होकर जन्म लेना ... आत्मा के पूर्व मे होने का ही प्रमाण है।

किसी केवलज्ञान प्राप्त व्यक्ति का आयुष्य जब पूर्ण ... और उसके कुछ कर्म शेष रह जाते हैं तो वह समुद्घात ... केवली सुमद्घात कहते है। इसमे वह आत्मा स्वय का ...

ऐसे अवसर पर उस आत्मा के प्रदेशो का कुछ भाग ... और शेष भाग बाहर आकाश तक फैल जाता है। इससे शरीर ... भिन्न होना प्रमाणित होता है।

आत्मा-ज्ञान

आत्मा अति सूक्ष्म, अमूर्त, अशरीरी, ज्ञान-स्वभावी ... ससार की किसी भी वस्तु से इसका सादृश्य नहीं है। ...

अद्भुत ज्योति है। किन्तु अग्नि, दीपक, बिजली आदि की ज्योति की भॉति इसको मानकर आत्म-ध्यान करना सही ध्यान नही है। वह आत्मा ध्यान नही है। ऐसा ध्यान तो मात्र पुद्गल का ध्यान नही है।

आत्मा अरूपी चेतन द्रव्य है। इसका लाल, पीला, सफेद आदि कोई रग नहीं है। आत्म ध्यान करते समय किसी रग का ध्यान करना जड पुद्गल का ध्यान ही है।

आत्मा अमूर्त है, अरूपी है। इसके कोई शब्द रूप, रस, गध, स्पर्श नही है। यह चर्म-चक्षुओ से नही देखा जा सकता। ससार के किसी भौतिक पदार्थ से इसकी उपमा नही दी जा सकती। इसको केवल, ज्ञान द्वारा ही जाना जा सकता है।

आत्मा के ध्यान करने के सबध मे इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि जिस प्रकार सिद्धो का ध्यान उनके गुणो के माध्यम से ही किया जा सकता है उसी प्रकार आत्मा का ध्यान भी आत्मा के गुणो के माध्यम से ही किया जा सकता है। आत्मा मे चेतना, ज्ञान, सवेदनशीलता, शक्ति आदि है। उन्ही के ध्यान से आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

आत्मा के स्वरूप का, उसकी शक्ति का यथार्थ ज्ञान ही आत्म-दर्शन के नाम से पुकारा जाता है।

मन सूक्ष्म होते हुए भी पुद्गल है। वह अमूर्त, सूक्ष्म चेतन आत्मा को नही देख सकता। महात्मा विनयचदजी ने कहा है–

अनत जिनेश्वर नित नमू, अद्भुत ज्योति अलेख।
ना कहिये ना देखिये, जाके रूप न रेख।।
सूक्ष्म थी सूक्ष्म प्रभु, चिदानन्द चिद् रूप।
पवन शब्द आकाश थी, सूक्ष्म ज्ञान स्वरूप।।

असल मे दीर्घकाल के आत्म-ध्यान के अभ्यास से आत्मा स्वय ही स्वय को जान व पहचान सकती है।

आत्मा के ध्यान मे मुख्य रूप से तीन बातो की साधना करनी चाहिये। प्रथम, शरीर अलग है और मै (आत्मा) अलग हूँ। दूसरी, यह शरीर मेरा नही है। तीसरी, इस शरीर मे जो चेतना है वही मै (आत्मा) हूँ।

आत्म ध्यान की विधि

1 आप सीधे खडे होकर या सीधे बेठकर या सीधे लेटकर, अपने शरीर को देखकर सोचिये–"यह शरीर मै नही हूँ। यह शरीर अलग है, म

अलग हूँ।" फिर शरीर के किसी भाग को छू कर उसमे [illegible]
की अनुभूति करते हुए सोचिये–"इस शरीर मे यह जो सूक्ष्म [illegible]
मैं (आत्मा) हूँ।" कुछ समय तक इस चेतना की एकाग्रता [illegible]
करते हुए चिंतन करते रहिये–"यह जो सूक्ष्म चेतना है वही मै [illegible]

मनोविज्ञान बताता है कि मनुष्य जिस विचार को बार-बार [illegible]
है वह विचार उसके मन मे स्थायी रूप से जम जाता है। [illegible]
संस्कार बन जाता है। वह अवचेतन मन मे उतर जाता है और [illegible]
जीवन मे आचरण का अग बन जाता है।

प्रारम्भ में देहात्म-भेद मे श्रद्धा नहीं होने वाले व्यक्ति [illegible]
साधना मे कुछ महीनो तक लगे रहे तो मनोवैज्ञानिक नियम [illegible]
उनमें श्रद्धा उत्पन्न हो जावेगी।

इसी प्रकार इस मानव देह मे व्याप्त सवेदनशीलता, शक्ति [illegible]
अन्य गुणों की अनुभूति द्वारा आत्मा को अर्थात् स्वय को [illegible]
पहिचाने। स्वय के स्वरूप एवं शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करे [illegible]
धीरे-धीरे देहासक्ति घटे और आत्मा का विकास हो सके।

जिस प्रकार गुणो के चिंतन से सिद्धो का रूपातीत ध्यान [illegible]
है उसी प्रकार ज्ञान, सुख, अगुरुलघुत्व अपने शरीर प्रमाण [illegible]
आदि के चिंतन द्वारा आत्मा का ध्यान किया जा सकता है।

स्वय को कर्म मुक्त मानकर, कल्पना द्वारा लोक के अग्रभाग [illegible]
मानकर, सिद्धो की भॉति स्वय का भी सिद्ध रूप मे ध्यान [illegible]
है।

2. कल्पना कीजिये कि आपके सामने आपका कोई [illegible]
मनुष्य बैठा है। आप उसके शरीर मे व्याप्त, किन्तु [illegible]
उसकी आत्मा की कल्पना कीजिये। चिंतन कीजिये-- [illegible]
है, सवेदना है, शक्ति है, ज्ञान है, जीवन है, वही [illegible]
इस प्राणी की आत्मा और सिद्धो की आत्मा समान है। [illegible]
यह भी सिद्ध बन सकेगा।" आप उसके शरीर का, [illegible]
नही करे। किन्तु उसके आत्म तत्त्व का चिंतन करे। [illegible]
प्रथम देहात्म भेद श्रद्धा बढेगी। दूसरे, उससे [illegible]
इस चिंतन मे दोनो का ही लाभ होगा।

यहाँ इस बात का ध्यान रखे कि पुरुष, [illegible]
स्त्रियाँ, स्त्रियो के शरीर मे आत्मा के अस्तित्व [illegible]

3 पशु-पक्षियो के शरीर मे आत्म तत्त्व का चितन करने से उनके प्रति आप मे दया भाव की उत्पत्ति भी सम्भव हो सकेगी। कीडो-मकोडो मे आत्म तत्त्व का चितन करने वाला व्यक्ति अनेक प्राणियो की अनावश्यक हिसा से वच सकेगा।

4 पृथ्वीकाय, जलकाय, वनस्पतिकाय, अग्निकाय एव वायुकाय मे भी आत्म तत्त्व का विचार करने वाला व्यक्ति इनकी अनावश्यक हिसा से वच सकेगा।

5 आत्म-ध्यान इस प्रकार भी किया जा सकता है–"इस शरीर मे सवेदनशीला है वही मै (आत्मा) हूँ।"

6 इस शरीर मे जो क्रिया-शक्ति है वही मै हूँ।

7 इस शरीर का सचालक मै ही हूँ।

8 इस शरीर मे जो जीवन है वही मै हूँ। मेरे बिना यह निर्जीव, निष्क्रिय, बेकार हो जाता है।

9 जो सब कुछ जानता है, जो ज्ञान-स्वभावी हे, चितन के साथ-साथ जिसमे ज्ञान प्रकट होता रहता है वही ज्ञान का भडार मै हूँ।

10 जो स्वय का ध्यान करते हुए स्वय मे लीन होकर आध्यात्मिक आनन्द की अनुभूति प्राप्त करता वही मे (आत्मा) हूँ।

11 आत्मा हूँ, आत्मा हूँ, देह से मे भिन्न हूँ।
कर्म मुक्त होने पर, मै सिद्ध हूँ, मै सिद्ध हूँ।

विकार-निवृत्ति की साधना

आत्म ध्यान की भॉति कषाय या विकार निवृत्ति की साधना भी आत्मा पर आये हुए विकारो को हटाने के लिये अत्यावश्यक है। इसमे 1 अपने अवगुणो की सूची बनाई जावे। 2 उनके लिये पश्चात्ताप किया जावे। 3 किये हुए पापो के लिए प्रायश्चित लिया जावे। जैसे कुछ समय के लिये मीठा या नमक छोडना, तप करना, दान देना आदि। 4 उन विकारो के वारे मे विस्तृत ज्ञान प्राप्त किया जावे। जेसे उस विकार के प्रकार, कारण, कार्य, हानि, उसके त्याग से लाभ कुछ उदाहरण हे। उनसे निवृत्त होने के उपाय सोचे जावे। 6 निवृत्ति की साधना की जावे।

इस साधना मे स्वाध्याय का प्रमुख स्थान हे। हमारे अन्दर साधारणतया जो अवगुण पाये जाते है उनमे से कुछ से निवृत्ति पाने के लिये कुछ सूत्र यहॉ दिये गये हैं जिनका नित्य दिन मे कई बार चितन व स्वाध्याय किया जावे।

1. क्रोध—चोट, रोग, गरीबी और कष्ट को अपने पाप-कर्मों का फल मानो। दु ख मे समता रखते हुए दु.ख को पाप-कर्म काटने की दवा व उसमे निमित्त बनने वाले प्राणी को पाप-कर्म काटने की दवा देने वाला डॉक्टर मानो। इससे दु ख चेतना और क्रोध से बचो।

2 दुर्भावना—दूसरों को दु ख देने का विचार करने वाला और दूसरों को दु ख मे देखकर खुश होने वाला और केवल दुर्भावना के बल पर भयंकर नरक गति के कर्मो का बंध करता है। दुर्भावना की निवृत्ति के लिए हमेशा दस-बीस मिनट इस सूत्र को दोहराया जावे—"सबका भला हो, सबका भला हो, सबका भला हो।"

3 परिवार-मोह—किसी प्राणी को उसके पाप-कर्म-फल-भोग से तीर्थंकर भी नही बचा सकते। परिवार बेचारा क्या करे ?

4. सुख चेतना—भौतिक सुख और काम वासना सुख नहीं, सुखाभास है। सभी शारीरिक सुख प्रारम्भ से अंत तक दु खों से भरे हैं।

"खणमेत सोक्खा, बहुकाल दुक्खा।"

"थोडे समय का सुख, बहुत समय का दु ख।"

5. इच्छा—यदि पुण्य का उदय है तो इच्छा के बिना भी सुखों की वर्षा होने लगती है। यदि पाप का उदय है तो इच्छा करने व कठोर पुरुषार्थ करने पर भी सुख नही मिलता। फिर इच्छा-निरोध करके कर्म क्यो नही काटते ?

6 अह—एक प्राणी को भी तुम उसके पाप-कर्म-फल-भोग से नहीं बचा सकते। फिर शक्ति का अहकार क्यो करते हो ?

अपने निकाचित कर्मो को तीर्थंकर भी उन्हे भोगे बिना कठोर तप से भी नही काट सकते। तुम अपनी शक्ति का अहकार क्यो करते हो ? विनाशकाल मे तुम्हारी ही बुद्धि तुम्हारा विनाश कर देती है। फिर तुम अहकार क्यो करते हो ?

7. सग्रह—धन, सम्पत्ति, परिग्रह आदि का सग्रह मत करो। दान, पुण्य, परमार्थ, धर्मार्थ मे दो। जो दान मे दोगे वही तुम्हारा साथ और पर-भव मे तुम्हे मिलेगा।

मरते समय यदि किसी से मोह-ममता रह गई तो मरने के बाद बिच्छु, छिपकली, कुत्ता, बिल्ली, चूहा, कोवा, भूत, प्रेत आदि बन

मडराते रहोगे ओर दु ख पावोगे। दान दो, दान दो, दान दो, सग्रह मत करो, दान दो।

8 विकथा—दूसरे लोगो की बातो की अनावश्यक चर्चा, उनके दोषो का कथन, श्रवण, दर्शन, चिंतन, दुनिया भर को स्वार्थ प्रेरित, स्वार्थभरी, पक्षपातपूर्ण गन्दी राजनीति आदि की बातो के सच्चे-झूठे समाचार, लेख, भाषण एव आलोचनाओ को पढना और उनके सबध मे राग-द्वेषात्मक विचारो मे पडना विकथा अर्थात् व्यर्थ की कथा है। यह भाव हिसा है, अनर्थ दण्ड है, प्रमाद है, असत्य आचरण हे। इससे बचने का साधारण उपाय हे—मोन ओर मित-भाषण (कम बोलना) और वास्तविक अचूक उपाय हे सत्सगति, सत्साहित्य का पढना, स्वाध्याय, आत्म-चितन, आत्म-ध्यान एव निस्वार्थ निष्काम शुद्ध पर-सेवा मे लगे रहना। विकथा भयकर मानसिक रोग है, इससे बचिये, बचिये, बचिये।

मुनि गजसुकुमाल आदि के गुणो का चितन कथन विकथा नही है। यह गुणानुराग हे, प्रमोद भावना हे, कर्मो की निर्जरा हे ओर धर्मध्यान है।

9 शील-पालन—सेठ सुदर्शन की शील रक्षा की ओर विजय सेठ ओर विजया सेठानी के अखडित शील-पालन की कथा का श्रवण कथन, अध्ययन, अनुमोदन एव ध्यान करने से उत्पन्न हाने वाली शील तरगो से दृढ बनी शील-भावना को ससार की कोई भी शक्ति खडित करने मे समर्थ नही हे।

10 "शील, शील, शील' की ध्वनि से, जप से, ध्यान से शील के पुद्गल हमारे पास एकत्रित होकर हमे शील पालन मे दृढ बनाते हे।

11 "समता, समता, समता' की ध्वनि जप व ध्यान से समता के सूक्ष्म पुद्गल आकर हमे समता पालन मे दृढ बनाते हे।

12 सत्य—साधारण मनुष्य से देवता मे देवता स तपस्वी मे, तपस्वी से सत्यवादी मे अधिक शक्ति होती हे। सत्य मे हजार हाथियो का बल होता हे। सत्यवादी की देवता भी सहायता करते हे।

13 देहासक्ति हटाने का सूत्र—यह शरीर मेरा नही ह। यह नाशवान है। यह रोगो का घर हे। यह दु खो की खान ह।

14 परिवार मोह हटाने का सूत्र—जब पुण्य तुम्हारे पास नही परिवार तुम्हारा क्या करे ?

अटल सत्य

इस ससार का कोई भी मनुष्य निश्चयपूर्वक [illegible]
कि जो कुछ होना है वह अनादिकाल से नियत है। [illegible]
है तो उस नियत काम के हो जाने के बाद [illegible]
नही। अनेको घटनाएँ नियत नही है। वे [illegible]
मे घटती रहती है तथा संसार को बढाने [illegible]
रहता है। वास्तव में मनुष्य को व्यवह[illegible]
ससार है और यही अनुकम्पा की [illegible]

मेरी लिखी हुई कषाय-मुक्ति [illegible]
प्रभावना आदि के रूप मे बँटवाने [illegible] है।

— [illegible]